



॥ श्रीहरिः ॥

८३२

# सूक्तिसुधाकर

(सानुवाद)

३३६  
धर्म

प्रकाशक—

गीताप्रेस, गोरखपुर

३

१९०० ई. कायदा अधिनियम ३१  
द्वारा १९०० ई. कायदा

१  
२  
३  
४  
५  
६  
७  
८  
९  
१०  
११  
१२  
१३  
१४  
१५  
१६  
१७  
१८  
१९  
२०  
२१  
२२  
२३  
२४  
२५  
२६  
२७  
२८  
२९  
३०  
३१  
३२  
३३  
३४  
३५  
३६  
३७  
३८  
३९  
४०  
४१  
४२  
४३  
४४  
४५  
४६  
४७  
४८  
४९  
५०  
५१  
५२  
५३  
५४  
५५  
५६  
५७  
५८  
५९  
६०  
६१  
६२  
६३  
६४  
६५  
६६  
६७  
६८  
६९  
७०  
७१  
७२  
७३  
७४  
७५  
७६  
७७  
७८  
७९  
८०  
८१  
८२  
८३  
८४  
८५  
८६  
८७  
८८  
८९  
९०  
९१  
९२  
९३  
९४  
९५  
९६  
९७  
९८  
९९  
१००

२१

२१  
२१

२१

२१

श्रीहरिः

## विषय-सूची

विषय			पृष्ठ-संख्या
	प्रथमोद्घास		
१-ब्रह्मसूक्ति	...	...	१
	द्वितीयोद्घास		
२-श्रीशिवसूक्ति	...	...	४
	तृतीयोद्घास		
३-श्रीविष्णुसूक्ति	...	...	११
४-श्रीलक्ष्मीसूक्ति	...	...	४४
	चतुर्थोद्घास		
५-श्रीरामसूक्ति	...	...	४६
६-श्रीसीतासूक्ति	...	...	५७
७-श्रीहनुमत्सूक्ति	...	...	५७
	पञ्चमोद्घास		
८-श्रीकृष्णसूक्ति	...	...	६०
९-श्रीनन्दादिगोपसूक्ति	...	...	११३
१०-श्रीयशोदासूक्ति	...	...	११४
११-श्रीराधासूक्ति	...	...	११५
१२-श्रीब्रजाङ्गनासूक्ति	...	...	१२०
१३-श्रीमुरलीसूक्ति	...	...	१२३
१४-श्रीवृन्दावनसूक्ति	...	...	१२५
	षष्ठोद्घास		
१५-श्रीहरिहरसूक्ति	...	...	१२६
१६-सूर्यसूक्ति	...	...	१२७

२६-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
<b>नवमोऽङ्कः</b>			
२७-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
२८-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
२९-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
<b>दशमोऽङ्कः</b>			
३०-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
३१-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
<b>एकादशोऽङ्कः</b>			
३२-श्रीगणेशपूजा	...	...	...
उपसंहार	...	...	...
अकारादि श्लोकानुक्रमणिका	...	...	...अ

ओहरिः

## चित्र-सूची

	( चहुंरंगा )	१
पानयोगी धुव	( " )	४०
लका नृत्य	( " )	६१
की मधुर गोद	( " )	११४
यधा-भक्ति	( " )	१९३
पाममयी-संसार	( " )	२१३











नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय

ॐ श्रीगणेशाय नमः ॐ

# सुक्तिमुखावलि



## प्रथमोऽङ्कः

( गद्यमूर्तिः )

मन्वन्तं मन्वपरं प्रियत्वं मन्वद् यानि निहितं च मन्वे ।

मन्वन्तं मन्वमृतमन्वनेत्रं मन्वान्महं रशं अरुणं प्रवशाः ॥१॥

( श्रीमद्भागवते १० । १ । २९ )

नमस्ते मने ते जगन्कारणाय नमस्ते चिते सर्वलोकप्रदाय ।

नमोऽर्द्धगणेशाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे प्यायिने प्रायगाय ॥२॥

( शतशतसप्तत्युक्तेषु )

नमः शिवाय नमः है, जो नमः शिवाय, शिवो ब्रह्मदेव नमः नमः  
( नमः ) शिवाय, नमः है ब्रह्मदेवाय शिवो ब्रह्मदेवो नमः नमः ( नमः )  
है शिवो है नमः नमः शिवो नमः है, नमः नमः नमः  
नमः नमः नमः नमः नमः है ॥ १ ॥ है शिवो । नमः नमः  
नमः शिवो नमः नमः नमः नमः है, नमः नमः नमः  
नमः नमः नमः नमः नमः है, नमः नमः नमः नमः  
नमः नमः है, नमः नमः नमः नमः नमः है ॥ २ ॥



जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतथार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्  
 तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्पूरयः ।  
 तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा  
 धाञ्जा स्नेन सदा निरस्तकुड्कं सत्यं परं धीमहि (भा० १।१।१)  
 ब्रह्मा दक्षः कुबेरो यमवरुणमरुद्बृहच्चन्द्रेन्द्ररुद्राः  
 शैला नद्यः समुद्रा ग्रहगणमनुजा दैत्यगन्धर्वनागाः ।  
 द्वीपा नक्षत्रतारा रविबसुमुनयो ज्योम भूरश्विनौ च  
 संलीना यस्य सर्वेषुपि स भगवान् पातु नो विश्वरूपः ॥८॥  
 अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां  
 मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम् ।  
 घडिः शीतलतां हिमं दहनतामापाति यस्येच्छया  
 लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने देवाय तस्मै नमः ॥९॥

अन्वय-स्वतिरेकसे जो जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण सिद्ध है, सर्वज्ञ है, स्वप्रकाश है, जिन्होंने आदिपुरुष ब्रह्माको वेदोपदेश दिया, जिनको जाननेमें विद्वान् भी मोहित हो रहे हैं, जिनके सकाशसे पृथ्वी, जल और तेज-मय संसार सरय-सा दीख पड़ता है, ऐसे अपने तेजसे अज्ञानको नाश करने-वाले परमार्थ-सत्य परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं ॥ ७ ॥ जिस विश्वरूप भगवान्के शरीरमें—ब्रह्मा, दक्ष, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, चन्द्र, इन्द्र, शिव, पर्यंत, नदी, समुद्र, प्रद, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, नाग, द्वीप, नक्षत्र, तारा, सूर्य, बसु, मुनि, आकाश, पृथ्वी और अश्विनीकुमार आदि सभी लीन हैं, वे हमारा कल्याण करें ॥ ८ ॥ जिसकी इच्छा-मात्रसे समुद्र स्थलरूप और स्थल समुद्ररूप हो सकता है, धूलिकण पर्यंतसदृश और मेरुपर्यंत धूलिके तृणरूपमें परिणत हो सकता है दादक हो .

## द्वितीयोच्छ्वास



( श्रीशिवसूक्तिः )

जय जय हे शिव दर्पकदाहक दैत्यविघातक भूतपते  
दशमुखनायक शायकदायक कालमयानक भक्तगते ।  
त्रिभुवनकारकधारकमारक संसृतिकारक धीरमते  
हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्षविधायक योगरते ॥ १ ॥\*

शिशिरकिरणधारी शैलवालाविहारी

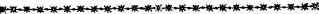
भवजलनिधितारी योगिहृत्यन्नचारी ।

शमनजभयहारी प्रेतभूमिप्रचारी

कृपयतु मायि देवः कोऽपि संहारकारी ॥ २ ॥\*

हे मदनदाहक! दैत्यकदन! भूतनाय! हे दशशीश-स्वामिन् ! हे [अर्जुनको] घनुष देनेवाले ! हे कालको भी भयभीत करनेवाले ! हे मर्गोंके आभय ! हे त्रिकोर्ककी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले ! हे अगदूरचयिता धीरधी मशंदय ! हे हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्ष-प्रदायक योगनरायण शंकर ! आपको जय हो ! जय हो ॥१॥ जो चन्द्र-कलाको घाएण किये हैं, पावनों-रमण हैं, संसारसमुद्रसे पार करनेवाले हैं, योगियोंके हृदयरूप कनकमें विहार करनेवाले हैं, मृत्यु-भवको दूर

• श्रीपूर्णचन्द्रश्लोकरत्नाकरः ।



यः शङ्करोऽपि प्रणयं करोति स्थाणुस्तथा यः परपूरुषोऽपि ।  
उमागृहीतोऽप्यनुमागृहीतः पायादपायात्स हि नः स्वयम्भूः । ३।

( श्रीजयनारायणतर्कप्रज्ञाननस्य कणादसूत्रविभूतेः )

मूर्द्धप्रोद्भासिगङ्गेश्वणगिरितनयादुःखनिःश्वासपात-  
स्फायन्मालिन्यरेखाच्छिविबि गरलं राजते यस्य कण्ठे ।  
सौम्यं कारुण्यसिन्धुः सुरवरमुनिमिः स्तूयमानो वरेण्यो  
नित्यं पायादपायात्सततशिवकरः शङ्करः किङ्करं माम् । ४।

( श्रीताराकुमारस्य शिवशतकात् )

किं सुप्तोऽसि किमाकुलोऽसि जगतः सृष्टस्य रक्षाविधौ  
किं वा निष्करुणोऽसि नूनमथवा क्षीबः स्वतन्त्रोऽसि किम् ।

करनेवाले तथा इमशानभूमिमें विचरनेवाले हैं; वे कोई सृष्टिसंहारकारी देव  
मुझपर कृपा करें ॥ २॥ जो मुक्तिदाता होकर भी प्रेम करता है, जो परमपुरुष  
होनेपर भी स्थाणु ( निष्क्रिय ) है, जो उमासे गृहीत होकर भी अनुमा  
(अनुमान या उमाभिन्न) से गृहीत होता है, यही स्वयम्भू शकर हमारी मृत्युसे  
रक्षा करें ॥ ३ ॥ मल्लकपर सुशोभित हुई गंगार्जीको देखकर पार्वतीजीका  
शोकोच्छ्वास पढ़नेके कारण बढ़े हुए, मालिन्यकी श्यामल रेखाके समान  
मानों जिनके कण्ठमें गरल-चिह्न शोभित हो रहा है, बढ़े-बढ़े देवता  
और मुनि जिनकी स्तुति करते हैं, जो पूजनीय तथा सदैव कल्याण  
करनेवाले हैं वे दयासागर शंकर मुझ दासको नाशसे बचावें ॥ ४ ॥ आपको  
क्या हो गया ? क्या आप सो गये ? क्या आप अपने बनाये हुए जगत्की  
रक्षाके काममें व्यस्त हैं ? क्या विश्कुल ही निष्करण बन बैठे—  
दयाको विश्कुल ही तिलाञ्जलि दे दी ! क्या ( न्याय-अन्यायकी )

किं वा मादृशनिःशरण्यकृपणामाग्यैर्जडो ज्यागति  
स्वामिन्यस्य शृणोपि मे विलपितं यन्नोचरं यच्छसि ॥५॥

( श्रीजगद्गुरुमहाराज श्रुतिमुग्धाश्रयी )

करे धृतव्यग्रकुरङ्गचालं तृतीयनेत्रोदयभव्यमालम् ।

पदारविन्दप्रणतार्तिकालं कपालमालं शरणं ब्रजामः ॥ ६ ॥

( श्रीभक्तिभानन्दकवेः घनात्मनश्चर्मपिबपात् )

कुन्दइन्दुदरगौरमुन्दरम् अम्बिकापतिमर्माष्टसिद्धिदम् ।

कारुणीककलकञ्जलोचनं नैमि शङ्करमनङ्गमोचनम् ॥ ७ ॥

( श्रीमुग्धादासस्य रामचरितमानसात् )

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पुणेंन्दुमानन्ददं

वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यधधनध्वान्तापहं तापहम् ।

कुछ भी परवा न करके उन्मत्त अथवा स्वतन्त्र बन गये ? या मेरे सदृश निःशरण जनके अभाग्यसे आपकी थाणी स्तम्भित हो गयी !—आप जड़वत् हो गये ? हे स्वामिन् ! मेरा विलाप फिर आप क्यों नहीं सुनते और क्यों मेरी बातोंका उत्तर नहीं देते ? ॥ ५ ॥

जिनके हाथमें चकित मृगशावक है, तीसरे नेत्रके उदयसे भालदेय भव्य हो रहा है, जो शरणागतके दुःखहारी हैं, ऐसे मुण्डमालाधारी शंकरकी हम शरण लेते हैं ॥ ६ ॥ कुन्द-फूल, चन्द्र और शंखके समान गौरवर्ण एवं सुन्दर, पार्वतीके पति, मनोवाञ्छित देनेवाले, करुणासे भरे सुन्दर कमल-से नेत्रोंवाले और कामदेवके नादाक शंकरको नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥ धर्म-वृक्षके मूल, विवेक-सिन्धुको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्य-कमलको प्रफुल्लित करनेवाले और पापतापके घनान्धकारको धुँधले, सूर्य, अज्ञानके बादलोंको उड़ा देनेवाले पवनरूप,

मोहाम्मोघरपूगपाटनविधौ श्यासं भवं शङ्करं  
 वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूप्रियम् ॥८॥  
 कदा द्वैतं पश्यन्नखिलमपि सत्यं शिवमयं  
 महावाक्यार्थानामवगतसमभ्यासवशतः ।  
 गतद्वैताभावः शिव शिव शिवेत्येव विलपन्  
 मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ॥९॥  
 ज्ञाता यत्र न कश्चिदस्ति विपमे तत्र प्रहर्तुं पथि  
 द्रोग्धारो यदि जाग्रति प्रतिविधिः कस्तत्र शक्यक्रियः ।  
 यत्र त्वं करुणार्णयस्त्रिभुवनत्राणप्रवीणः प्रभु-  
 स्तत्रापि प्रहरन्ति चेत् परिभवः कस्यैव गर्हाविहः ॥१०॥†  
 अज्ञानान्धमवान्धवं कवलितं रक्षोभिरक्षाभिधैः  
 क्षिप्तं मोहमदान्धकूपकुहरे दुर्हृद्भिराम्यन्तरैः ।

कल्याण करनेवाले, संसारके कारण, ब्रह्माके पुत्र, कलंकके मिटानेवाले  
 और श्रीरामके प्यारे शिवजीकी वन्दना करता हूँ ॥ ८ ॥ महावाक्योंके  
 तात्पर्योंके अभ्यासद्वारा, सारे संसारको सत्य और शिवरूप समझता  
 हुआ, अद्वैतत्वज्ञाता होकर शिव-शिव-शिव इस प्रकार रटता हुआ मुनि,  
 किस समय गुरुदीक्षासे अज्ञानरहित होकर, व्यामोहमें न फँसेगा ? ॥९॥  
 जिस भयङ्कर मार्गमें कोई रक्षक नहीं, उसमें यदि शत्रु सतानेकी तैयार  
 हों, तो वहाँ उनका क्या प्रतिकार किया जा सकता है ? पर जहाँ  
 पर आप-जैसे दयासिन्धु त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें कुशल स्व-  
 विराजमान हैं, वहाँपर यदि वे ( काम, क्रोधादि शत्रु ) प्रहार करें  
 यह किसकी निन्दा और अपमान है ? ॥ १० ॥ मैं अज्ञानसे अन्धा  
 हूँ, बन्धुविहीन हूँ, इन्द्रियरूप राक्षसोंसे भक्षित हो रहा हूँ, अपने



क्रन्दन्तं शरणागतं गतधृतिं सर्वापदामास्पदं  
मा मा भूश्च महेश पेनलदृशा सत्रारामाश्वासय ॥११॥

( श्रीजगद्धरमहेश्वर्य शुनितुमुमाप्रती )

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्  
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम् ।  
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन  
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेप्यामि दिवसान् ॥१२॥

( महेश्वरैवात्पदातकात् श्लो० ८७ )

कदा वाराणस्यां विमलतटिनीतीरपुलिने  
चरन्तं भूतेशं गणपतिमवान्यादिसहितम् ।  
अये शम्भो स्वामिन् मधुरडमरूवादन विभो  
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेप्यामि दिवसान् १३ (भिक्षुकस्य)

शत्रुओंद्वारा मोह और मदरूप अन्धकूपमें डाल दिया गया हूँ; ऐसे आपत्तिग्रस्त, अधीर, शरणागत और रोते हुए मुझको, हे महेश्वर ! मत भुलाओ, शीघ्र ही अपनी सुकोमल कृपादृष्टिसे मुझ भयभीतको ढाँढस बँधाओ ॥ ११ ॥ काशीपुरीमें देवनदी श्रीगंगाजीके तटपर निवास करता हुआ, कौपीनमात्र धारण किये, अपने मस्तकपर अञ्जलि बाँध करके, 'हे गौरीनाथ ! त्रिपुरारि त्रिनयन शम्भो !! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहते हुए, मैं अपने दिनोंको क्षणके समान कब बिताऊँगा ? ॥ १२ ॥ काशीजीमें श्रीगंगाजीके परम पवित्र तीरपर, गौरी और गणेश आदिसहित घूमते हुए भगवान् भूतनाथको 'हे शम्भो ! हे स्वामिन् ! हे मधुर-मधुर डमरू बजानेवाले सर्वव्यापक प्रभो ! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहते हुए अपने दिनोंको क्षणके समान कब बिताऊँगा ? ॥ १३ ॥ कल्पान्त ही जिनकी दुर्ललित लीला है, जो दक्षयज्ञको विध्वंस

कल्पान्तकूरकेलिः क्रतुकदनकरः कुन्दकर्पूरकान्तिः  
 क्रीडन्कैलासकूटे कलितकुमुदिनीकामुकः कान्तकायः ।  
 कङ्कालक्रीडनोत्कः कलितकलकलः कालकालीकलत्रः  
 कालिन्दीकालकण्ठः कलयतु कुशलं कोऽपि कापालिकः कौ । १४ ।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने  
 सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ।  
 भवामोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्तवचसा  
 कदा स्वामानन्दोद्भ्रतवहुलवाप्याप्लुतदृशः ॥ १५ ॥  
 ( भर्तृहरैर्वैराग्यशतकात् श्लोक ८५ )

यस्ते ददाति स्वमस्य वरं ददासि  
 यो वा मदं वहति तस्य दमं विधत्से ।

करनेवाले हैं, जिनके शरीरकी कुन्द या कर्पूरकी-सी कान्ति है, जो कैलासपर्वतके शिखरपर क्रीडा कर रहे हैं, चन्द्रकलाको धारण करनेवाले हैं, कान्तिमय शरीरधारी हैं, कङ्कालोत्से क्रीडा करनेमें उत्सुक हैं, कल-कलध्वनि करनेवाले, कालरूप और कालीकान्त हैं तथा कालिन्दी ( यमुनाजी ) के समान जिनका श्यामल कण्ठ है; वे कोई कपाल-मालाधारी कापालिक इस पृथिवीतलपर हमारी कुशल करें ॥ १४ ॥ निःशब्द रात्रिके समय चाह चन्द्रिकासे धोये हुए श्रीजाह्नवीके घवल-तटपर मुख-पूर्वक बैठे हुए, सांसारिक सुखोंसे सन्तप्त होकर दीनवर्णीते 'शिव ! शिव !! शिव !!!'—ऐसा करते हुए आनन्दोद्भ्रत प्रचुर प्रेमाधुओंसे भरे नेत्र कब भरेंगे ? ॥ १५ ॥ ( हे शङ्कर ! ) जो तुम्हें स्व देता ( स्तुति करता ) है, उसे तुम ( स्वका उलट ) वर देते हो; जो ( मूर्ख आपके सम्मुख ) मद प्रकट करता है, उसकी खबर आप दम ( दण्ड, मदका



इत्यक्षरद्वयविपर्ययकेलिशील

किं नाम कुर्वति नमो न मनः करोपि ॥१६॥

( श्रीजगद्धरभद्रस्य स्तुतिकुसुमाञ्जली )

( श्रीपार्वतीसूक्तिः )

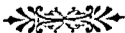
अहो पापादापामरमनधिगत्यापि शरणं  
सरन्तं त्वत्पादाम्बुरुहमभिवीक्ष्याग्रहिणि माम् ।

न तच्चित्रं यद्भागभिपतसि पातुं त्रिनयने  
विचित्रं त्वेतद् यत्त्रिदशपरिवारं त्रपयसे ॥१७॥

( श्रीमदुमापतिशर्मद्विवेदस्य कविपतेः शिवास्तुती )



उलटा दम ) से लेते हैं: इस प्रकार अक्षरद्वयको उलट-फेर करनेका खेल आपको बहुत ही पसंद है ! तो फिर मेरे नमः कहनेपर,  
( मेरी तरफ नमःका उलटा ) अपना मन क्यों नहीं फेरते ? ॥ १६ ॥  
हे भक्तोंके उद्धारार्थं आप्रष्ट रत्ननेवाली त्रिनयना पार्वती देवी !  
अधिक पापके कारण [ बड़े-बड़े देवताओंसे लेकर ] नीचतकके यहाँ भी  
त्रिने आश्रय नहीं मिला, उसी मुझ पापीको अपने चरणारविन्दकी ओर  
आते देगकर जो तुम सुरम्न मेरी रक्षाके लिये झीड़ पड़ती हो, यह  
कोई आश्रय नहीं है, आश्रयकी बात तो यह है कि मेरा उद्धार  
करके तुम समस्त देवपरिवारको लज्जित कर रही हो [ क्योंकि ये लोग  
मेरी रक्षामे मुँह मोड़ चुके थे ] ! ॥ १७ ॥



ॐ

## तृतीयोऽङ्कः



( श्रीविष्णुसूक्तिः )

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।

प्रसन्नवदनं ध्यायेन् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥२॥

( श्रीमद्भा० ६ । ११ । २५ )

स्वच्छ वस्त्रधारी, चन्द्रभाके समान शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, प्रसन्न-  
वदन विष्णुका सर्व विघ्नोपशान्तिके लिये ध्यान करे ॥ १ ॥  
हे समदर्शिन् ! आपको छोड़कर मुझे न तो स्वर्गकी, न ब्रह्म-  
लोककी, न सार्वभौम-साम्राज्यकी, न पृथिवीपतित्वकी, न योग-  
सिद्धियोंकी और न जन्ममरणसे छूटनेकी ही इच्छा है ॥ २ ॥

\*\*\*\*\*

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।  
प्रियं प्रियेव व्युपितं विपण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदक्षते स्वाम् ॥३॥

(श्रीमद्भा० ६ । ११ । २६)

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मि-

न्नस्मन्मनोरथपथः सकलः समेति ।

स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्

पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य ॥ ४ ॥\*

तत्त्वेन यस्य महिमार्णवशीकराणुः

शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः ।

कर्तुं

तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय

मह्यं नमोऽस्तु फवये निरपत्रपाय ॥ ५ ॥\*

बिना पक्षियोंवाले पक्षिशायक जिस प्रकार अपनी माताके लिये उत्सुक रहते हैं, भूखे बछड़े जैसे दूधके लिये व्याकुल रहते हैं तथा विरहिणी स्त्री जैसे व्यथित होकर अपने प्रवासी पतिकी वाट देखती है; हे कमलनयन ! मेरा मन भी उसी प्रकार आपके दर्शनोंके लिये लालायित हो रहा है ॥ ३ ॥ कमलनयन भगवान् विष्णुके जो शरणारविन्द मेरे मस्तकपर तथा वेदोंके शिरपर मुशोभित होते हैं और जिनमें मेरे मनोरथोंके सभी मार्ग मिलते हैं तथा जो मेरे कुलधन और कुलदेवता हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी महिमारूप समुद्रके छोटे-से-छोटे जलकणका भी मान बतलानेकी शिव और ब्रह्मा आदि देवता भी समर्थ नहीं हैं, उन्हींकी महिमाका स्तवन करनेके लिये उद्यत हुए मुझ निलंज कविको नमस्कार है ! ( भला मैं उनकी महिमा क्या जानूँ ! ) ॥ ५ ॥

यद्वा श्रमावधि यथामति वाप्यशक्तः

स्ताम्येवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः ।

वेदाश्चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः

को मज्जतोरणुकुलाचलयोर्विशेषः ॥ ६ ॥†

किञ्चैप शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्यः

स्तोतापि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण ।

तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धे-

रित्युद्यमोऽयमुचितो मम चान्जनेत्र ॥ ७ ॥†

नावेक्षसे यदि ततो भुवनान्यमूनि

नालं प्रभो भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः ।

मथवा, असमर्थ होनेपर भी अपने परिश्रम और बुद्धिके अनुसार मैं स्तुति करूँगा ही, क्योंकि सदा स्तुति करनेवाले वेद और ब्रह्मा आदि देवता भी भ्रम और बुद्धिके अनुसार ही स्तुति करते हैं, (पूरी-पूरी स्तुति उनसे भी नहीं हो पाती, फिर मुझसे उनमें कोई विशेषता नहीं) भला, महाशामरके बीच झूठे हुए परमाणु और कुल-सर्वतोमि क्या अन्तर है ? ॥ ६ ॥ हे कमलनयन भगवन् ! कोई भी स्तुति करनेवाला अपनी शक्तिकी अधिकतासे तुम्हारी दयाका पात्र नहीं होता, बल्कि स्तुति करते-करते जर थक जाता है, तो उसकी थकावटके कारण आप उसपर दया करते हैं ! ऐसी दशामे ब्रह्मा आदि तो अधिक शक्तिमान् होनेके कारण जल्दी नहीं थक सकते, पर मैं तो मन्दबुद्धि हूँ, मेरा धीप ही थक जाना अधिक सम्भव है, अतः ब्रह्मादिसे पहले मैं ही आपका कृपापात्र बनूँगा !—इसलिये स्तुति करनेका यह मेरा उद्योग उचित ही है ॥७॥ हे भगवन् ! यदि आप इन लोकोंकी ओर दृष्टि न डालें तो इनकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती, फिर प्रवृत्ति तो हो ही कैसे सकती है ?

अज्ञानपक्षा इव मानरं गगाः मन्यं गगा वग्गनराः क्षुधार्ताः ।  
 प्रियं प्रियं च ध्युषितं विषण्णामनोऽरविन्द्राय दिदृधते स्वाम् ॥३॥  
 ( श्रीमद्भागवत ६ । ११ । २९ )

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्यु च भानि यस्मि-  
 श्मन्मनोरथपथः गकलः गमेति ।  
 स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदेवतं तन्  
 पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य ॥ ४ ॥  
 तत्त्वेन यस्य महिमार्णवग्रीकराशुः  
 शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः ।  
 कर्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय  
 मद्यं नमोऽस्तु कथये निरपत्रपाय ॥ ५ ॥

बिना पद्मोंवाले पक्षिशावक जिस प्रकार अपनी माताके लिये उत्सुक रहते हैं, भूले बल्लहे जैसे दूधके लिये व्याकुल रहते हैं तथा विरहिणी स्त्री जैसे व्यथित होकर अपने प्रयासी पतिकी बाट देखती है; हे कमलनयन ! मेरा मन भी उसी प्रकार आपके दर्शनोंके लिये लालायित हो रहा है ॥ ३ ॥ कमलनयन भगवान् विष्णुके जो चरणारविन्द मेरे मग्नकपर तथा वेदोंके शिरपर सुशोभित होते हैं और जिनमें मेरे मनोरथोंके सभी मार्ग मिलते हैं तथा जो मेरे कुलधन और कुलदेवता हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी महिमारूप समुद्रके छोटे-से-छोटे जलकणका भी मान बतलानेको शिव और ब्रह्मा आदि देवता भी समर्थ नहीं हैं, उन्हींकी महिमाका स्तवन करनेके लिये उद्यत हुए मुझ निर्दोष कविको नमस्कार है । ( भला मैं उन्हीं

यद्वा श्रमावधि यथामति वाप्यशक्तः

स्तांम्येवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः ।

वेदाश्चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः

को मञ्जतोरणुकुलाचलयोर्विशेषः ॥ ६ ॥†

किञ्चैप शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्यः

स्तोतापि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण ।

तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धे-

रित्युद्यमोऽयमुचितो मम चान्जनेत्र ॥ ७ ॥†

नावेक्षसे यदि ततो भुवनान्यमृनि

नालं प्रभो भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः ।

अथवा, असमर्थ होनेपर भी अपने परिश्रम और बुद्धिके अनुसार मैं स्तुति करूँगा ही, क्योंकि सदा स्तुति करनेवाले वेद और ब्रह्मा आदि देवता भी श्रम और बुद्धिके अनुसार ही स्तुति करते हैं, (पूरी-पूरी स्तुति उनसे भी नहीं हो पाती, फिर मुझसे उनमें कोई विशेषता नहीं) भला, महासागरके बीच हूबते हुए परमाणु और कुल-पर्वतोंमें क्या अन्तर है ! ॥ ६ ॥ हे कमलनयन भगवन् ! कोई भी स्तुति करनेवाला अपनी शक्तिकी अधिकतासे तुम्हारी दयाका पात्र नहीं होता, बल्कि स्तुति करते-करते अब थक जाता है, तो उसकी थकावटके कारण आप उसपर दया करते हैं ! ऐसी दशामे ब्रह्मा आदि तो अधिक शक्तिमान् होनेके कारण जल्दी नहीं थक सकते, पर मैं तो मन्दबुद्धि हूँ, मेरा श्रम ही थक जाना अधिक सम्भव है, अतः ब्रह्मादिसे पहले मैं ही आपका कृपापात्र बनूँगा !—इसलिये स्तुति करनेका यह मेरा उद्योग उचित ही है ॥७॥ हे भगवन् ! यदि आप इन लोकोंकी ओर दृष्टि न डालें तो इनकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती, फिर प्रवृत्ति तो हो ही कैसे सकती है !



\*\*\*

अजातपक्षा इव मातरं स्वगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।  
 प्रियं प्रियेव व्युपितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥३॥  
 (श्रीमद्रा० ६ । ११ । २६)

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मि-  
 न्नसन्मनोरथपथः सकलः समेति ।  
 स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्  
 पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य ॥ ४ ॥\*  
 तत्त्वेन यस्य महिभार्णवशीकराणुः  
 शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः ।  
 कर्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय  
 मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय ॥ ५ ॥\*

बिना पक्षीवाले पक्षिशायक जिस प्रकार अपनी माताके लिये उत्सुक रहते हैं, भूले बछड़े जैसे दूधके लिये व्याकुल रहते हैं तथा विरहिणी स्त्री जैसे व्यथित होकर अपने प्रवासी पतिकी बाट देखती है; हे कमलनयन! मेरा मन भी उसी प्रकार आपके दर्शनोंके लिये लालायित हो रहा है ॥ ३ ॥ कमलनयन भगवान् विष्णुके जो चरणारविन्द मेरे मन्मथपर तथा वेदोंके शिरपर मुशोभित होते हैं और जिनमें मेरे मनोरथोंके सभी मार्ग मिलते हैं तथा जो मेरे कुलधन और कुलदेवता हैं, उनकी मैं यगदना करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी महिमारूप ममुद्रके छोटे-से-छोटे जलकणका भी मान बतलानेकी शिव और ब्रह्मा आदि देवता भी समर्थ नहीं हैं, उन्हींकी महिमाका स्तवन करनेके लिये उद्यत हुए मुझ निर्लज्ज कविको नमस्कार है। (मन्त्र में उनकी महिमा क्या जानूँ ?) ॥ ५ ॥

कोऽन्यः प्रजापशुपती परिपाति कस्य  
 पादोदकेन स शिवः स्वशिरोधृतेन ॥११॥†  
 कस्योदरे हरविरिञ्चमुखप्रपञ्चः  
 को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नामेः ।  
 क्रान्त्या निर्गार्य पुनरुद्भिरति त्वदन्यः  
 कः केन चैव परवानिति शक्यशङ्कः ॥१२॥†  
 त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्ट-  
 सुख्येन सात्त्विकतया प्रयत्न्य शास्त्रैः ।  
 प्रख्यातदेवपरमार्थविदां मर्तुश्च  
 नैशासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ॥१३॥†  
 उल्लङ्घितत्रिविधसामसमातिशायि-  
 म्भवावनं तव परिग्रहिमस्वभावम् ।

ब्रह्मा और महादेवजीका भी पालन करता हो; तथा ये प्रतिद्व महादेवजी  
 आपके अतिरिक्त अन्य किसका चरणोदक ( गंगाजल ) शिरपर धारण  
 करके, शिव ( कल्याणमय ) कहलाते हैं ! ॥ ११ ॥ भला, आपके सिखा  
 और किसके उदरमें शिव, ब्रह्मा आदि यह सारा प्रपञ्च स्थित है, कौन  
 इसकी रक्षा करता और किसकी नामिसे यह उत्पन्न होता है ! आपको  
 छोड़कर कौन इसे अपने पैरोंसे मापकर ( प्रलयकालमें ) निगल जाता  
 और पुनः [ सृष्टिकालमें ] बाहर प्रकट कर देता है; यह प्रपञ्च किसी  
 दूसरेके अर्धान है—ऐसी शक्य भी कौन कर सकता है ! ॥ १२ ॥ आमुरी  
 प्रकृतिवाले मनुष्य आपके लोकोत्तर शील, रूप, चरित्र, परम उच्चम  
 सत्त्वगुण और सात्त्विक स्वभावद्वारा, आपको प्रयत्न्य शास्त्रों तथा देवसम्बन्धी  
 परमार्थ ( रहस्य ) को जाननेवाले विख्यात पाराशरदि महर्षियोंके  
 सिद्धान्तोंसे भी, यथायत् नहीं जान सकते ॥ १३ ॥ परन्तु आपमें अनन्य  
 भावना रखनेवाले कुछ भक्तजन आपके ऐश्वर्यको—जो देश, काल और

एवं निगर्गमुहृदि त्वयि सर्वज्ञोः

म्यामिन्न चित्रमिदमाश्रितवत्मलत्वम् ॥ ८ ॥\*

स्वाभाविकानवधिकानिशयेशिवृत्वं

नारायणत्वयिन मृष्यनिर्दिक्तः कः ।

ब्रह्मा शिवः शतमवः परमः स्वराडि-

त्येतेऽपि यस्य महिमार्णवविप्रुपस्तं ॥ ९ ॥\*

कः श्रीः धियः परमसच्चममाश्रयः कः

कः पुण्डरीकनयनः पुरुषोत्तमः कः ।

कस्यापुतापुतशतककलांशकांशे

विश्वं विचित्रचिदचित्प्रविभागवृत्तम् ॥ १० ॥\*

वेदापहारगुरुपातकदैत्यपीडा-

घापद्रिमोचनमहिष्टफलप्रदानः ।

इस प्रकार समस्त प्राणियोंके स्वाभाविक मुहृद् आपमें अपने आधित-  
जनोंके ऊपर बत्सल ( सद्य ) होनेका गुण रहना आश्चर्यका बात  
नहीं है ॥ ८ ॥ हे नारायण ! कौन ऐसा वेदवेत्ता पुरुष है, जो आपके  
स्वाभाविक निरवधि और निरतिशय ऐश्वर्यका सहन न कर सकता हो ?  
क्योंकि ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और बड़े-बड़े आत्माराम मुनि भी आपकी  
महिमारूप महासागरकी छोटी बूँदोंके समान हैं ॥ ९ ॥ आपके अतिरिक्त—  
लक्ष्मीजीकी शोभा कौन है ? शुद्ध सत्त्वका आधार कौन है ? कमलदलके  
समान विशाल नेत्रोंवाला कौन है ? पुरुषोत्तम नाम किसका है ? तथा  
किसकी अनन्त करोड़ कलाओंके एकांशके भी अंशमें, यह जड़-चेतनरूप  
विचित्र संसार विभागपूर्वक स्थित है ॥ १० ॥ भगवन् ! आपको छोड़कर  
दूसरा कौन है, जो वेदोंके अपहरणसे, ब्रह्महत्यासे और दैत्योंद्वारा दिये  
गये कष्टोंसे प्राप्त हुई आपदाओंको दूर करके तथा महान् वरदान देकर

कोऽन्यः प्रजापशुपती परिपाति कस्य  
 पादोदकेन स शिवः स्वशिरोधृतेन ॥११॥†  
 कस्योदरे हरविरिञ्चमुखप्रपञ्चः  
 को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नाभेः ।  
 क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्भिरति त्वदन्यः  
 कः केन चैव परवानिति शक्यशङ्कः ॥१२॥†  
 त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्ट-  
 सत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ।  
 प्रख्यातदैवपरमार्थविदां मतैश्च  
 नैवासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति धोद्ध्युम् ॥१३॥†  
 उल्लङ्घितत्रिविधसीमसमातिशायि-  
 सम्भायनं तव परिव्रटिमस्त्रभावम् ।

ब्रह्मा और महादेवजीका भी पालन करता हो; तथा वे प्रसिद्ध महादेवजी आपके अतिरिक्त अन्य किसका चरणोदक ( गंगाजल ) शिरपर धारण करके, शिव ( कल्याणमय ) कहलाते हैं ? ॥ ११ ॥ भला, आपके सिवा और किसके उदरमें शिव, ब्रह्मा आदि मह सारा प्रपञ्च स्थित है, कौन इसकी रक्षा करता और किसकी नाभिसे यह उत्पन्न होता है ? आपको छोड़कर कौन इसे अपने पैरोंसे मापकर ( प्रलयकालमें ) निगल जाता और पुनः [ सृष्टिकालमें ] बाहर प्रकट कर देता है; यह प्रपञ्च किसी दूसरेके अर्घान है—ऐसी शंका भी कौन कर सकता है ? ॥ १२ ॥ आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य आपके लोकोत्तर शील, रूप, चरित्र, परम उत्तम सत्त्वगुण और सात्त्विक स्वभावद्वारा, आपको प्रबल शास्त्रों तथा देवसम्बन्धी परमार्थ ( रहस्य ) को जाननेवाले विख्यात पाराशरदि महर्षियोंके सिद्धान्तोंसे भी, यथावत् नहीं जान सकते ॥ १३ ॥ परन्तु आपमें अनन्य भावना रखनेवाले कुछ भक्तजन आपके ऐश्वर्यको—जो देश, काल और

मायात्रलेन भवतापि निगुह्यमानं

पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः ॥१४॥†

यदण्डमण्डान्तरगोचरञ्च यद्दशोत्तराण्यावरणानि यानि च ।  
 गुणाः प्रधानं पुरुषः परम्पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः १५†  
 वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचिर्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः ।  
 कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः †  
 उपस्युर्पर्यञ्जभ्रुवोऽपि पूरुषान् प्रकल्प्य ते ये शतमित्यनुक्रमात् ।  
 गिरस्त्वदेकैकगुणावधीप्सया सदा स्थिता नोद्यमतोऽतिशैरते †

वस्तुकी सीमासे रहित तथा अपने समान या अपनेसे अधिककी सम्भावनासे  
 पृथक् है—निरन्तर देखते हैं, यद्यपि उसे आप अपनी मायाके बलसे छिपाये  
 रखते हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! अण्ड, ब्रह्माण्डस्थित सर्ववस्तु, दश ऊपरके  
 आवरण, तीन गुण, प्रकृति, पुरुष, परम्पद और परात्पर ब्रह्म, ये सब  
 आपकी ही विभूतियाँ हैं ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! आप सबको बशमें रखने-  
 वाले, उदार, गुणवान्, सरल, पवित्र, मृदुल स्वभाववाले, दयालु, मधुर,  
 अविचल, समदर्शी, कृतज्ञ और कृतज्ञ हैं; इस प्रकार आप स्वभावहीसे  
 समस्त कल्याणमय गुणरूप अमृतके सागर हैं ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! घेदवाणी  
 आपके गुणोंमेंसे एक एकका भी अन्त लगानेकी इच्छासे प्रजापति  
 ब्रह्माके भी ऊपर-ऊपर पुरुषोंकी कल्पना करके 'ते ये शत  
 प्रजापतेरानन्दाः न एको ब्रह्मणः' इत्यादिरूपसे सदा परिगणना करती  
 रहती है, वह कभी उपयोगसे मुँह नहीं मोड़ती है [ फिर भी पता नहीं  
 पार्ती ] ॥ १७ ॥ [ हे शरभ्य ! ] आपके आधिपत्योंकी प्रगल्भी उत्पत्ति,

त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थितिप्रणाशसंसारविमोचनादयः ।  
 भवन्ति लीला विधयश्च र्षदिकास्त्रदीपगम्भीरमनोऽनुसारिणः ।  
 नमो नमो वाङ्मनसानिभूमये नमो नमो वाङ्मनमैकभूमये ।  
 नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये नमो नमोऽनन्तदर्पकसिन्धवे †  
 न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वचरणारविन्दे ।  
 अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥ †  
 न निन्दितं कर्म तदस्ति लोकं महत्तु यन्न मया व्यधायि ।  
 सोऽहं विषाकाचसरे मुकुन्द क्रन्दामि मम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे २१ †  
 निमज्जतोऽनन्तमवार्णवान्तधिराय मे कूलमिवासि लब्धः ।  
 त्वपापि लब्धं भगवन्निदानीमनुत्तमं पात्रमिदं दयापाः ॥ २२ ॥ †

स्थिति, प्रलय तथा संहारसे भक्ति—ये सब लीलायाप्र होते हैं और  
 वैदिक विधियाँ भी आपके भक्तोंके गम्भीर मनको अनुसरण करनेवाली  
 होती हैं ॥ २० ॥ मन और धार्मिके अगोचर आपको प्रणाम है, [ ऐसा  
 होते हुए भी भक्तजनके ] मन-धार्मिके एकमात्र विश्रामस्थान आपको  
 नमस्कार है; अनन्त महाविभूतियोंसे सम्पन्न और अनन्त दयाके एकमात्र  
 सागर आपको प्रणाम है, शरंवार प्रणाम है ॥ २१ ॥ मैं न धर्मनिष्ठ  
 हूँ, न आत्मशानी हूँ और न आपके चरणोंमें भक्तिमान् ही हूँ; मैं तो  
 अकिञ्चन हूँ, अनन्यगति हूँ, और शरणागत-रसक आपके चरणकमलोंकी  
 शरण आया हूँ ॥ २० ॥ संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं  
 है, जिसको हजारों बार मैंने न किया हो, ऐसा मैं अब फलभोगके  
 समयपर विवश ( अन्य साधनहीन ) होकर, हे मुकुन्द ! आपके आगे  
 शरंवार रोता—क्रन्दन करता हूँ ॥ २१ ॥ अनन्त महासागरके मीठ  
 दूधते हुए मुझको आज अति विन्म्वसे आप तटरूप होकर मिले हैं,  
 और हे भगवन् ! आपको भी आज यह दयाका अनुपम पात्र मिला है !

† सामान्यनगरश्लोकात् श्लो० २१, २४, २५, २६, २७

अभूतपूर्वं मम भावि किं वा गर्वं गहं मे महर्जं हि दुःखम्  
 किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां परामर्शो नाय न तेऽनुग्रहः ॥२३॥  
 निरामकस्यापि न तावदूर्तमहं महेश हातुं तत्र पादपङ्कजम्  
 रुषा निरस्मोर्जपि शिशुः स्तनन्धयां न जातु मातुशरणां जिहामति  
 तवाभृतम्यन्दिनि पादपङ्कजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति  
 श्यितंऽरविन्दं मकरन्दनिर्मरे मधुघ्नतो नेशुरकं० हि वीक्षतं २५  
 त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापिकेनचियथातया वापि सकृत्कृतोऽर्धा  
 तदवमुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णानि न जातु हीयते  
 उदीर्णमंसारदवाशुशुधाणि क्षणेन निर्वाप्य परां च निर्धृतिम्

॥ २२ ॥ [ अब इस समय यदि आप मेरा दुःख दूर नहीं करते तो ] मेरे  
 लिये तो यह कोई नयी बात नहीं है, मैं तो सब सदन कर लूँगा, क्योंकि  
 दुःख तो मेरे साथ ही उत्पन्न हुआ है; किन्तु आपके मामने शरणागतका  
 परामर्श होना आपके योग्य नहीं है—आपको शोभा नहीं देता ॥ २३ ॥  
 हे महेश्वर ! आप त्याग देंगे तो भी मैं आपके चरणकमलोंके परित्याग  
 करनेका साहस नहीं कर सकता; क्रोधदश गोदीमें अलग किया हुआ भी  
 दूध पीनेवाला शिशु, अपनी माताके चरणोंको कभी नहीं छोड़ना चाहता  
 ॥ २४ ॥ जो पुरुष आपके अमृतवर्षी चरणकमलोंमें दत्तचित्त है, वह  
 किसी और पदार्थकी इच्छा कैसे कर सकता है ? मधुसे भरे हुए पङ्कजपर  
 बैठा हुआ भ्रमर, ईशुरक ( तालमखानेके पुष्प अथवा ईस्के रस )  
 की ओर नव दृष्टिपात करता है ॥ २५ ॥ आपके चरणोंके उद्देश्यसे, किसी  
 भी समयमें, किसीने भी, जैसे-तैसे एक बार भी हाथ जोड़ दिया, तो वह  
 ( नमस्कार ) उसके समस्त पापोंको हर लेता है, पुण्यराशिकी पुष्टि करता  
 है और उसका फिर कभी नाश नहीं होता ॥ २६ ॥ आपके युगल चरण-  
 रूपी अरुण कमलके अनुरागसे उत्पन्न हुए अमृत-सिन्धु ( गंगाजी ) का

† श्रीमालवन्दारस्तोत्रात् श्री० २८, २९, ३०, ३१

• 'नेशुरकं' इति पाठान्तरम् ।

प्रयच्छति त्वधरणाम्बुजद्वयानुरागामृतसिन्धुशीकरः ॥†  
 विलानविक्रान्तपराधरालयं नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम् ।  
 धनं मदीयं तव पादपङ्कजं कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा ॥†  
 कदा पुनः शहरस्याङ्ककल्पकष्वजारविन्दाद्भुशवज्जलान्छनम् ।  
 श्रिविक्रम त्वधरणाम्बुजद्वयं मदीयमूर्द्धानमलङ्करिष्यति २९†  
 विराजमानोज्ज्वलपीतवासुमं सितातसीमूनसमामलच्छविम् ।  
 निमग्ननाभिं तनुमप्यमुन्नतं विशालवक्षःस्थलशोभिलक्षणम् ॥†  
 चकासतं ज्याकिणकर्मणः शुभैश्चतुर्भिराजानुविलम्बिभिर्भुजैः ।  
 प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषणश्लघालकावन्धविमर्दगंसिभिः ३१†

जन्मकण वक्षु हुए सखार-दायामिकी क्षणमात्रमं शान्त बरके परमानन्द देता है ॥ २७ ॥ लीलाभावमे ही पर अपर सर लोकोको (वामनरूपमें) नागनेवाले और प्रणवकी पीदाको हरनेमें ही अपना प्रत्येक क्षण लगानेवाले मेरे परमधन आपके पादपङ्कजको, जेयोसे मैं कर प्रयत्न देखूँगा ? ॥ २८ ॥ हे वामन ! शङ्ख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अङ्कुश, वज्र आदि शुभ चिह्नोवाले आपके चरखयुगल, मेरे मन्त्रको कव अलङ्कृत करेंगे ! ॥ २९ ॥ जिनके अङ्गोपर निर्मल पीताम्बर शोभा पा रहा है, जिनकी अमल इयामल कान्ति प्रफुलित अनमी-पुष्पके समान सुन्दर है, जिनका देह ऊँचा, नाभि गम्भीर, कटिदेश ( कमर ) सूक्ष्म और विशाल वक्षःस्थल धीवत्सचिह्ने सुशोभित हो रहा है [ ऐसे आपकी मैं कव अपनी सेवाद्वारा प्रसन्न करूँगा ! ] ॥ ३० ॥ जो प्रियतमा लक्ष्मीके शिरोभूषण, कमलदलादि कर्णभूषणों तथा सिधिल अन्क-बन्धके विमर्दकी सूचना देनेवाले हैं, [ अति कोमल होते हुए भी ] शार्ङ्गधनुषकी प्रयत्नाके चिह्नोसे कठोर हो गये हैं, ऐसे आजानुलम्बी सुन्दर चार भुजदण्डोसे सुशोभित होनेवाले आरको [ मैं कव प्रसन्न कर सकूँगा ? ] ॥ ३१ ॥



\*\*\*\*\*

उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डलालकावलीधनुषकम्बुकन्धरम् ।  
 मुखश्रिया न्यक्तपूर्णनिर्मलामृतांशुविम्बाम्बुरुहोज्ज्वलश्रियम्†  
 प्रबुद्धमुग्धाम्बुजचारुलोचनं सविभ्रमभ्रूलतमुज्ज्वलाधरम् ।  
 शुचिसितं कोमलगण्डमुन्नसं ललाटपर्यन्तविलम्बितालकम् ॥†  
 स्फुरत्किरीटाङ्गदहारकण्ठिकामणीन्द्रकाञ्चीगुणनूपुरादिभिः ।  
 रथाङ्गशङ्खासिगदाधनुर्वरैर्लसत्तुलसा वनमालयोज्ज्वलम् ॥†  
 चकर्य यस्या भवनं भुजान्तरं तव श्रियं धाम यदीयजन्मभूः ।  
 जगत्समग्रं यदपाङ्गसंश्रयं यदर्धमम्भोधिरमन्ध्यबन्धि च ॥†  
 स्ववैश्वरूप्येण सदानुभूतयाप्यपूर्ववद्विस्मयमादधानया ।  
 गुणेनरूपेण विलासचेष्टितैः सदा तवैवोचितया तव श्रिया ३६†

उन्नत और पुष्ट कन्धोंपर लटकते हुए कुण्डल तथा अलकोसे जिनकी शंसलसटश ( उन्नत ) मीवा मनोहर मांशुम होती है; जो अपने मुखकी शोभासे निर्मल पूर्णचन्द्रविम्ब तथा श्वेत कमलकी कान्तिको तिरस्कृत कर रहे हैं, खिले हुए सुन्दर पद्मके समान जिनके मनोहर नेत्र हैं, विलासमयी भौंहें हैं, अमल अघर हं, मधुर मुसकान है, कोमल कपोल, ऊँची नासिका और भालदेशमें लटकी हुई अलकें हैं [ ऐसे आपको मैं क्या आनन्दित करूँगा ? ] ॥ ३२-३३ ॥ प्रकाशमान किरीट, मुन्नरन्द, हार, कण्ठी, जदाऊ रत्नोंकी किङ्किणी और नूपुर आदि आभूषणोंसे, शङ्ख, चक्र, गदा, राट्ट और धनुष आदि दिव्य आयुधोंसे तथा तुलसीमयी वनमालासे आप मुसोमित हैं ॥ ३४ ॥ आपने अपनी भुजाओंका मध्यभाग ( हृदय ) ही जिसके लिये नियास-मन्दिर बनाया, त्रिमकी जन्मभूमि ( धीरसागर ) ही आपका प्रिय वासस्थान है, सारा संसार त्रिमके कटाशोकें आश्रित है तथा त्रिमके लिये आपने समुद्रका मग्नन और बर्षन किया, जो विधम्पमे आपके द्वारा सदा अनुभूत होनेपर भी मृतन-भी विम्पव उत्पन्न करती है, जो रूप, गुण और विद्याम-चेष्टाओंके

† श्रीवाचकशरस्तोत्रम् को० ३०, ३६, ३९, ४०, ४१

तया सहासीनमनन्तभोगिनि प्रकृष्टविज्ञानबलैकधामनि ।  
 फणामणित्रातमयूखमण्डलप्रकाशमानोदरदिव्यधामनि ३७†  
 निवासशय्यासनपादुकांशुकोषधानवर्पातपवारणादिभिः ।  
 शरीरभेदैस्तत्र शेषतां गर्तैर्यथोचितं शेष इतीरिते जनैः । ३८†  
 दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः ।  
 उपस्थितं तेन पुरो गुरुत्मता त्वदङ्घ्रिसंमर्दकिणाङ्कशोभिना †  
 त्वदीयभुक्तोज्झितशेषभोजिना त्वया निसृष्टात्मभरेण यद्यथा ।  
 प्रियेण सेनापतिना निवेदितं तथानुजानन्तमुदारवीक्षणैः ४०†  
 हताखिलङ्केशमलैः स्वभावतस्त्वदानुकूल्यैकरसैस्तथोचितैः ।

द्वारा केवल आपके ही योग्य है ॥ ३५-३६ ॥ उस लक्ष्मीजीके साथ आप अनन्त फणोंसे विशिष्ट शेषनागकी शय्यापर विराजमान रहते हैं, जो कि समयानुसार निवास, शय्या, आसन, पादुका, बख, तकिया और शीत-वर्पादिनिवारक छत्रादिरूप नाना शरीरभेदोंके द्वारा आपके शेषत्व (अङ्गभाव) को प्राप्त होनेके कारण लोगोंसे 'शेष' कहे जाते हैं और फणोंकी मणियोंके किरण-जालसे अपना उदररूप दिव्य-धाम प्रकाशित किये रहते हैं तथा जो उत्तम ज्ञान और बलके एकमात्र आभय हैं ॥ ३७-३८ ॥ वेदत्रयी जिनका स्वरूप है, जो [ अकेले ही समय-समयपर ] आपके दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, वितान (चाँदनी) और चँवरका काम देते हैं, सवारीके समय आपके पैरोंकी रगड़से बने हुए चिह्नद्वारा जिनका अंग मुशोभित है वे गरुडजी आपके सामने हाथ जोड़कर स्वदे हैं ॥ ३९ ॥ जो सदा आपकी प्रसादीमात्रको ही भोजन करनेवाले हैं तथा जिनपर आपने अपना सारा भार रख छोड़ा है ऐसे प्रिय सेनापति (तथा प्रधान मन्त्री विष्वक्सेनजी) के निवेदनका आप अपनी उदार दृष्टिसे अनुमोदन करते हैं ॥ ४० ॥ स्वभावसे ही जिनके ह्रैररूप मल नष्ट हो चुके हैं तथा आपकी अनुकूलता ही जिनके लिये एकमात्र रस है ऐसे

गृहीततत्तत्परिचारसाधनैर्निषेव्यमाणं सचिवैर्यथोचितम् ॥†  
 अपूर्वनानारसमात्रनिर्भरप्रबुद्धया मुग्धविदग्धलीलया ।  
 क्षणाणुवतिक्षमपरादिकालया प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ॥†  
 अचिन्त्यदिव्याद्भुतनित्यर्यावनस्वभावलावण्यमयामृतोदधिम् ।  
 श्रियः श्रियं भक्तजनैकजीवितं समर्थमापत्सखमार्थिकल्पकम् †  
 भवन्तमेवानुचरधिरन्तरं प्रशान्तनिदृशपमनोरथान्तरः ।  
 कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्†  
 धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं  
 परमपुरुष योऽहं योगिवर्याग्रगण्यः ।

सचिवगण आपके योग्य छत्र, पत्नी एवं चामरादि यथोचित उपचारोंको लेकर आपकी सेवा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ जो निल-नूतन नाना प्रकारके [ शृङ्गारादि ] रसों तथा [ विलासादि ] भावोंसे परिपूर्ण एवं विकसित हैं और जिनमें ब्रह्मादिकोंकी आयु भी क्षणमात्र कालके अणुभागके समान बीत जाती है ऐसी चातुर्यपूर्ण मोहिनी लीलाओंसे अपनी महारानी लक्ष्मीजीको आनन्दित करते हुए, आप विशाल बाहुओंसे युक्त होकर शोभा पा रहे हैं ॥ ४२ ॥ जो अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत और नित्य-यौवनयुक्त ( सदा योऽशवर्षीय ) हैं, स्वभावसे ही लावण्यमय अमृतके समुद्र हैं, लक्ष्मीजीकी भी शोभा हैं, भक्तजनोंके मुख्य-जीवनरूप हैं, समर्थ हैं, आपत्तिकालके सखा हैं और याचकजनोंके लिये कल्पवृक्ष हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे एक आपका ही निरन्तर अनुसरण करता हुआ अन्य सब मनोरथोंसे सर्वथा रहित और आपका ही ऐकान्तिक नित्य-दास होकर मैं इस जीवनको सनाथ मानता हुआ क्या आपको सन्तुष्ट करूँगा ? ॥ ४४ ॥ हे परम पुरुष ! मुझ अपवित्र, अविनीत, निर्दय और निर्लज्जको धिक्कार है, जो स्वेच्छाचारी होकर भी मैं मुख्य-मुख्य योगीश्वरों तथा ब्रह्मा, शिव और

विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं

तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः ॥४५॥†

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीममवार्षवोदरे ।

अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥ ४६ ॥†

अविवेकघनान्घदिङ्मुखे बहुधा सन्ततदुःखवर्षिणि ।

भगवन् भवदुर्दिने पथः स्वलितं मामवलोकयाच्युत ॥४७॥†

न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।

यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः ॥ ४८ ॥†

तदहं त्वदृते न नाथवान्मदृते त्वं दयनीयवान्न च ।

विधिनिर्मितमेतदन्वयं भगवन् पालय मा स जीहपः ॥४९॥†

वपुरादिषु योजपि कोऽपि वा गुणतोऽस्मानि यथातथाविधः ।

सनकादिके ध्यानमें भी न आ सकनेवाले आपके दुर्लभ परिजन-भावकी कामना करता हूँ ॥ ४५ ॥ हे हरे ! हजारों अपराध करनेवाले, भयङ्कर संसार-समुद्रमें पड़े हुए और निराश्रय मुझ शरणागतको आप केवल अपनी कृपासे ही अधीन कर लीजिये ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! हे अन्तुत !! त्रिभने अविवेकरूपी सादलोंद्वारा दिवाओंको अन्धकाराच्छन्न कर दिया है और जिसके कारण निरन्तर दुःखरूपी वृष्टि हो रही है उस संसाररूपी दुर्दिनमें मार्गसे गिरे हुए मेरी ओर आप निहार लीजिये ॥ ४७ ॥ हे नाथ ! इस मेरे एकमात्र विज्ञापनको आप पहले सुन लीजिये, यह सही बात नहीं है, सत्य ही है—यदि आप मुझपर दया नहीं करेंगे, तो फिर आपको दयापात्र मिलना कठिन ही है ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे बिना मैं नाथवान् नहीं हूँ और मुझ दीनके बिना आप दीनदयालु नहीं हो सकते; इसलिये विधि-निर्मित इस सम्बन्धको आप निभाइये ! इसका त्याग न होने दीजिये ॥ ४९ ॥ हे नाथ ! शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदिमें मैं जो कोई भी होऊँ, गुणके अनुसार [ भला-बुरा ] जैसा

† श्रीभागवतकारलोकाद को० ५०, ५१, ५२, ५३, ५४

गृहीततत्तत्परिचारसाधनैर्निपेव्यमाणं सचिवैर्यथोचितम् ॥१॥  
 अपूर्वनानारसमावनिर्भरप्रबुद्धया मुग्धविदग्धलीलया ।  
 क्षणाणुवत्क्षिप्तपरादिकालया प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ॥२॥  
 अचिन्त्यदिव्याद्भुतनित्ययौवनस्वभावलावण्यमयामृतोदधिम् ।  
 श्रियः श्रियं भक्तजनैकजीवितं समर्थमापत्सखमर्थिकल्पकम् ॥३॥  
 भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरं प्रशान्तनिश्चेषमनोरथान्तरः ।  
 कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम् ॥४॥  
 धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलजं  
 परमपुरुष योऽहं योगिवर्याग्रगर्ण्यः ।

सचिवगण आपके योग्य छत्र, पंखा एवं चामरादि यथोचित उपचारोंको लेकर आपकी सेवा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ जो नित्य-नूतन नाना प्रकारके [ शृङ्गासादि ] रसों तथा [ विलासादि ] भावोंसे परिपूर्ण एवं विकसित हैं और जिनमें ब्रह्मादिकोंकी आयु भी क्षणमात्र कालके अणुभागके समान बीत जाती है ऐसी चतुर्यपूर्ण मोहिनी लीलाओंसे अपनी महारानी लक्ष्मीजीको आनन्दित करते हुए, आप विशाल बाहुओंसे युक्त होकर शोभा पा रहे हैं ॥ ४२ ॥ जो अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत और नित्य-यौवनयुक्त ( सदा षोडशवर्षीय ) हैं, स्वभावसे ही लावण्यमय अमृतके समुद्र हैं, लक्ष्मीजीकी भी शोभा हैं, भक्तजनोंके मुल्य-जीवनरूप हैं, समर्थ हैं, आपत्तिकालके सखा हैं और याचकजनोंके लिये कल्पवृक्ष हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे एक आपका ही निरन्तर अनुसरण करता हुआ अन्य सब मनोरथोंसे सर्वथा रहित और आपका ही ऐकान्तिक नित्य-दास होकर मैं इस जीवनको सनाथ मानता हुआ कब आपको सन्तुष्ट करूँगा ! ॥ ४४ ॥ हे परम पुरुष ! मुझ अपवित्र, अविनीत, निर्दय और निलजको धिकार है, जो स्वेच्छाचारी होकर भी मैं मुल्य-मुख्य योगीश्वरों तथा ब्रह्मा, शिव और

विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं

तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः ॥४५॥†

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवाणवोदरे ।

अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥४६॥†

अविवेकधनान्धदिङ्मुखे बहुधा सन्ततदुःखवर्षिणि ।

भगवन् भवदुर्दिने पथः स्वलितं मामवलोकयाच्युत ॥४७॥†

न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।

यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः ॥४८॥†

तदहं त्वदृते न नाथवान्मदृते त्वं दयनीयवान्न च ।

विधिनिर्मितमेतदन्वयं भगवन् पालय मा स्म जीह्वपः ॥४९॥†

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽस्तानि यथातथाविधः ।

सनकादिके ध्यानमें भी न आ सकनेवाले आपके दुर्लभ परिजन-भावकी कामना करता हूँ ॥४५॥ हे हरे ! हजारों अपराध करनेवाले, भयङ्कर संसार-समुद्रमें पड़े हुए और निराश्रय मुझ शरणागतको आप केवल अपनी कृपासे ही अधीन कर लीजिये ॥४६॥ हे भगवन् ! हे अन्वुत !! जितने अविवेकरूपी बादलोंद्वारा दिशाओंकी अन्धकाराच्छन्न कर दिया है और जिसके कारण निरन्तर दुःखरूपी वृष्टि हो रही है उस संसाररूपी दुर्दिनमें मार्गसे गिरे हुए मेरी ओर आप निहार लीजिये ॥४७॥ हे नाथ ! इस मेरे एकमात्र विज्ञापनको आप पहले सुन लीजिये, यद् झूठी बात नहीं है, सत्य ही है—यदि आप मुझपर दया नहीं करेंगे, तो फिर आपको दयापात्र मिलना कठिन ही है ॥४८॥ हे भगवन् ! तुम्हारे बिना मैं नाथवान् नहीं हूँ और मुझ दीनके बिना आप दीनदयालु नहीं हो सकते; इसलिये विधि-निर्मित इस सम्बन्धको आप निभारये ! इसका स्थान न होने दीजिये ॥४९॥ हे नाथ ! शरीर, हृदिय, मन, प्राण, बुद्धि आदिमें मैं जो कोई भी होऊँ, गुणके अनुसार [ भगवन्-

गृहीततत्परिचारसाधनैर्निपेव्यमाणं सचिवैर्यथोचितम् ॥†  
 अपूर्वनानारसभावनिर्भरप्रसुद्धया मृगधविदग्धलीलया ।  
 क्षणाणुवत्क्षिप्तपरादिकालया प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ॥†  
 अचिन्त्यदिव्याद्भुतनित्ययौवनस्वभावलावण्यमयामृतोदधिम् ।  
 श्रियः श्रियं भक्तजनैकजीवितं समर्थमापत्सखमधिकल्पकम् †  
 भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरं प्रशान्तनिश्शेषमनोरथान्तरः ।  
 कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्†  
 धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं  
 परमपुरुष योऽहं योगिवर्याग्रगर्ण्यः ।

सचिवगण आपके योग्य छत्र, पंखा एवं चामरादि यथोचित उपचारोंको लेकर आपकी सेवा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ जो नित्य-नूतन नाना प्रकारके [ शृङ्गारादि ] रसों तथा [ विलासादि ] भावोंसे परिपूर्ण एवं विकसित हैं और जिनमें ब्रह्मादिकोंकी आयु भी क्षणमात्र कालके अणुभागके समान बीत जाती है ऐसी चातुर्यपूर्ण मोहिनी लीलाओंसे अपनी महारानी लक्ष्मीजीको आनन्दित करते हुए, आप विशाल बाहुओंसे युक्त होकर शोभा पा रहे हैं ॥ ४२ ॥ जो अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत और नित्य-यौवनयुक्त ( सदा षोडशवर्षीय ) हैं, स्वभावसे ही लावण्यमय अमृतके समुद्र हैं, लक्ष्मीजीकी भी शोभा है, भक्तजनोंके मुख्य-जीवनरूप हैं, समर्थ हैं, आपत्तिकालके सखा हैं और याचकजनोंके लिये कल्पवृक्ष हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे एक आपका ही निरन्तर अनुसरण करता हुआ अन्य सब मनोरथोंसे सर्वथा रहित और आपका ही ऐकान्तिक नित्य-दास होकर मैं इस जीवनको सनाथ मानता हुआ कब आपको सन्तुष्ट करूँगा ? ॥ ४४ ॥ हे परम पुरुष ! मुझ अपवित्र, अविनीत, निर्दय और निलज्जको धिक्कार है, जो स्वेच्छाचारी होकर भी मैं मुख्य-मुख्य योगीश्वरों तथा ब्रह्मा, शिव और

विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं

तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः ॥४५॥†

पराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्षावोदरे ।

गतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥४६॥†

विवेकधनान्धदिङ्मुखे बहुधा सन्ततदुःखवर्षिणि ।

भगवन् भवदुर्दिने पथः स्वलितं मामवलोकयाच्युत ॥४७॥†

मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।

दि मे न दयिष्यसे ततो दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः ॥४८॥†

दहं त्वदृते न नाथवान्मदृते त्वं दयनीयवान्न च ।

विधिनिर्मितमेतदन्ययं भगवन् पालय मा स जीह्वपः ॥४९॥†

पुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथातथाविधः ।

नकादिके ध्यानमें भी न आ सकनेवाले आपके दुर्लभ परिजन-भावकी

पमना करता हूँ ॥४५॥ हे हरे ! हजारों अपराध करनेवाले, भयङ्कर

सार-समुद्रमें पड़े हुए और निराश्रय मुझ शरणागतको आप केवल

पानी कृपासे ही अर्पण कर लीजिये ॥४६॥ हे भगवन् ! हे अच्युत !!

मने अविबेकरूपी बादलोंद्वारा दिशाओंको अन्धकारच्छन्न कर दिया

और जिसके कारण निरन्तर दुःखरूपी वृष्टि हो रही है उस सवाररूपी

दिनमें मार्गसे गिरे हुए मेरी ओर आप निहार लीजिये ॥४७॥ हे

नाथ ! इस मेरे एकमात्र विशापनको आप पहले सुन लीजिये, यह शब्दी

त नहीं है, नाथ ही है—यदि आप मुझपर दया नहीं करेंगे, तो फिर

आपको दयापात्र मिलना कठिन ही है ॥४८॥ हे भगवन् ! तुम्हारे बिना

नाथवान् नहीं हूँ और मुझ दीनके बिना आप दीनदवाह नहीं हो

सकते; इन्हींसे विधि निर्मित इस सम्बन्धको आप निमारये ! एकात्म्य

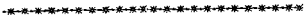
होने लीजिये ॥४९॥ हे नाथ ! शरीर, इन्द्रिय, मन, ज्ञान और

† श्रीभागवत-सारसंग्रह को० ५०.



तदयं तव पादपद्मयोरहमद्यैव मया समर्पितः ॥ ५० ॥  
 मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव ।  
 नियतस्यमिति प्रयुद्धधीरथवा किन्तु समर्पयामि ते ॥ ५१ ॥  
 अवबोधितवानिमां यथा मयि नित्यां भवदीयतां स्यमम् ।  
 कृपर्यवमनन्यभोग्यतां भगवन् मक्तिमपि प्रयच्छ मे ॥ ५२ ॥  
 तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्रपि कीटजन्म मे ।  
 इतरावसथेषु मा स भूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ॥ ५३ ॥  
 सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमशुक्तिसुक्तिभिः ।  
 महात्मभिर्मां बलोक्यतां नय क्षणेऽपि ते यद्विरहोऽतिदुस्सहः †  
 न देहं न प्राणान् च सुखमशेषाभिलषितं  
 न चात्मानं नान्यत्किमपि तवशेषत्वविभवात् ।

भी होऊँ, मैं तो आज ही अपनेको आपके चरण-कमलोंमें समर्पण कर  
 चुका ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! स्वयं मैं और जो कुछ भी मेरा है, वह सब  
 आपका ही नियत घन है, हे माधव ! यही मेरी बुद्धिमें आता है ऐसी  
 दशामें मैं आपको क्या समर्पण करूँ ? ॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! जिस  
 प्रकार आपने मुझे अपनी नियतियत भवदीयता (मैं आपका हूँ इस भाव)  
 को स्वयं जनाया, इसी तरह कृपा करके मुझे अपनी अनन्य मक्ति भी  
 दीजिये ॥ ५२ ॥ आपके दासत्व-भावका ही सुखानुभय करनेवाले  
 सज्जनोंके घरमें तो मुझे कीट-योनि भी मिले, पर इससे भिन्न तो मुझे  
 ब्रह्माकी योनि भी प्राप्त न हो [ यही मेरी प्रार्थना है ] ॥ ५३ ॥ जिन्होंने  
 आपके स्वरूपको एक बार देखनेकी इच्छासे उत्तमोत्तम भोग और मुक्तिकी  
 भी तृणवत् त्याग दिया है तथा जिनका क्षणभरका भी वियोग आपको  
 अत्यन्त असह्य है ऐसे महात्माओंके दृष्टि-पथमें मुझे डाल दीजिये ॥ ५४ ॥  
 हे नाथ ! आपको दासताके वैभवसे रहित होनेवाले देह, प्राण, सुख,  
 सर्व कामनाएँ, अपनी आत्मा तथा अन्य जो कुछ भी हो उसे क्षण-



हेर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा  
 विनाशं तत्सत्यं मधुमयन विज्ञापनमिदम् ॥५५॥†  
 न्तस्यानादिरपरिहरणीयस्य महतो  
 विहीनाचारोऽहं नृपशुरशुभस्यास्पदमपि ।  
 तसिन्धो बन्धो निरवधिकवात्सल्यजलधे  
 तव सारं सारं गुणगणमितीच्छामि गतभीः ॥५६॥†  
 नेच्छन्नप्येवं यदि पुनरितीच्छन्निव रज-  
 स्तमश्छन्नश्छन्नस्तुतिवचनमङ्गीमरचयम् ।  
 तपीत्यं रूपं वचनमवलम्ब्यापि कृपया  
 त्वमेवैवंभूतं धराणिधर मे शिक्षय मनः ॥५७॥†  
 त त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुह-  
 च्वमेव त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चासि जगताम् ।

भी नहीं सह सकता हूँ, चाहे ये सैकड़ों प्रकारसे नष्ट हो जायें;  
 धुसुदन ! यह मेरा विज्ञापन सत्य है ॥ ५५ ॥ हे दयासिन्धो ! हे  
 बन्धो !! मैं दुराचारी, नर-पशु, आदि-अन्तरहित और अपरिहरणीय  
 नृ-अशुभोंका भण्डार हूँ, तो भी हे अपारवात्सल्य सागर ! आपके  
 गणोंका स्मरण कर-करके निर्भय हो आऊँ, ऐसी इच्छा करता हूँ ॥५६॥  
 ारणीधर ! यद्यपि मैंने रजोगुण और तमोगुणसे आच्छन्न होकर,  
 त्करूपसे वस्तुतः इच्छा न रखते हुए भी, इच्छुककी भाँति, कपटपुक्त-  
 वचनोंका निर्माण किया है; तथापि मेरे ऐसे वचनोंको भी अपनाकर,  
 ही कृपा करके मेरे मनको [ सच्चे भावसे स्तुति करनेयोग्य होनेकी ]  
 ॥ ५७ ॥ हे हरे ! आप ही जगत्के पिता-माता ॐ, प्रिय पुत्र, प्यारे

† श्रीआत्मन्दारस्तोत्रात् श्लो० ६०, ६१, ६२

• त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।  
 त्वमेव मित्रा द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

त्वदीयस्त्वनुमृत्यस्तव परिजनस्त्वद्रतिरहं  
 प्रपन्नर्ध्वं सन्गदमपि तवैवामि हि मरः ॥५८॥  
 अमर्यादः क्षुद्रश्रलमतिरघुयाप्रमवभूः  
 कृतगो दुर्मानो मरपरवशो वञ्जनपरः ।  
 नृशंसः पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलघे-  
 रपारादृर्त्तीर्णस्तव परिचर्यं चरणयोः ॥५९॥  
 रघुवर गदभृस्त्वं तादृशो वायगस  
 प्रणत इति दयालुर्पथ चैद्यम्य कृष्ण ।  
 प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्ध सायुज्यदोऽभू-  
 र्वद किमपदमागस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः ॥६०॥

सुद्ध, मित्र, गुरु और गति है, मैं आपका ही सम्बन्धी, आपका दास, आपका ही परिचारक, आपको ही [ एकमात्र ] गति माननेवाला और आपकी ही शरण हूँ, इस प्रकार अब आपहीपर मेरा सारा भरोसा है ॥ ५८ ॥ भगवन् ! मैं तो मर्यादाका पालन न करनेवाला, नीति-व्यस्यमति और [ गुणोंमें भी दोष-दर्शनरूप ] अमूदाकी जन्मभूत हूँ; साथ ही कृतघ्न, दुष्ट, अभिमानी, कामी, टग, क्रूर और महापापी भला, मैं किस प्रकार इस अपार दुःख सागरसे पार होकर आप चरणोंकी परिचर्या करूँ ? ॥ ५९ ॥ हे रघुवर ! जब कि उस का [ रूपधारी जयन्त ] के ऊपर, यह सोचकर कि, 'यह मेरी शरण आया है' आप वैसे दयालु हो गये थे, और हे सुन्दर कृष्ण जो अपने प्रत्येक जन्ममें आपका अपराध करता आ रहा था; उ शिशुपालको भी जब आपने सायुज्यमुक्ति दे दी, तो अरु को ऐसा अपराध है, जो आपकी क्षमाका विषय न हो ! ॥ ६० ॥

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ तवाहमसीति च याचमानः ।

तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ॥६१॥†

( ४ संख्यात आरभ्य ६१ संख्यापर्यन्तं सर्वे श्रीमन्नानुनाचार्य-  
म्बामिप्रणीतालवन्दारस्तोत्रात् )

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः ।

विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः ॥६२॥

मधुमर्दिं महन्मञ्जु मन्द्यं मतिमदामहम् ।

मन्येऽमलमदोऽमन्दमहिम इयामलं महः ॥६३॥

( पाण्डेयरामनारायणदत्तशास्त्रिणः )

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धर्चरः कथितः पृथिव्याम् ।

अनेकजन्मार्जितपापमञ्चर्यं हरत्यशेषं स्मरतां सदैव ॥६४॥‡

हे नाथ ! एक बार भी जो आपकी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह-  
कर याचना करता है यह अपनी प्रतिज्ञाको सदा स्मरण रखनेवाले  
आपका कृपादात्र बन जाता है; परन्तु क्या आपकी यह प्रतिज्ञा एकमात्र  
मुझको ही छोड़कर प्रवृत्त होती है ! ॥६१॥ विपत्ति सघी विपत्ति नहीं  
है और सम्पत्ति भी सघी सम्पत्ति नहीं है, अथि तु विष्णुका  
विस्मरण ही विपत्ति है और नारायणका स्मरण ही सम्पत्ति है ॥६२॥  
मतिमान् महात्माओंके छन्दनीय, मधुदैत्यका मर्दन करनेवाले, महनीय,  
मनोहर और उत्कृष्ट महिमाशाली निर्मल इयामल तेजको ही मैं  
अपना आराध्यदेव मानता हूँ ॥ ६३ ॥ मनुष्योंमें नारायण नामका एक  
पुरुरविशेष है, जो संसारमें प्रसिद्ध खीर कहा जाता है, क्योंकि वह स्मरण  
करते ही अनेकों जन्मोंकी बन्धापी हुई सभी पापपण्डियोंको सदा ही दृश्य

† श्रीमन्नानुनाचार्यस्तोत्रात् श्लो० ६७

• पाण्डेयनाथशास्त्री श्लो० ४

‡ सकृदेव प्रपन्नाय नमस्सीति च याचते ।

अथ च सर्वभूतेषु ददात्येवमव मन ॥ (वा० रामा० ६।१८।२२)



ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ तवाहमस्मीति च याचमानः ।

त्वानुकम्प्यः सरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ॥६१॥†

( ४ संख्यात आरभ्य ६१ संख्यापर्यन्तं सर्वे श्रीमद्यामुनाचार्य-  
स्वामिप्रणीतालबन्धारस्तीवात् )

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः ।

विपद्विसरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः ॥६२॥

मधुमर्दि महन्मञ्जु मन्द्यं मतिमतामहम् ।

मन्येऽमलमदोऽमन्दमहिम इयामलं महः ॥६३॥

( पाण्डेयसामनारायणदत्तशास्त्रिणः )

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धर्चारः कथितः पृथिव्याम् ।

अनेकजन्मार्जितपापमञ्चयं हरत्यशेषं सरतां सदैव ॥६४॥‡

हे नाथ ! एक बार भी जो आपकी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह-

कर याचना करता है वह अपनी प्रतिज्ञाको सदा स्मरण रखनेवाले

आपका कृपापात्र बन जाता है; परन्तु क्या आपकी यह प्रतिज्ञा एकमात्र

गुणको ही छोड़कर प्रवृत्त होती है ? ॥६१॥ विपत्ति सच्ची विपत्ति नहीं

है और सम्पत्ति भी सच्ची सम्पत्ति नहीं है, अपि तु विष्णुका

विसरण ही विपत्ति है और नारायणका स्मरण ही सम्पत्ति है ॥६२॥

मतिमान् महारमाओंके बन्दनोप, मधुदेवका मर्दन करनेवाले, मङ्गीय,

मनोहर और उरकृष्ट महिमाशाली निर्मल इयामल तेजकी ही मैं

अपना आराध्यदेव मानता हूँ ॥ ६३ ॥ मनुष्योंमें नारायण नामका एक

पुराणविशेष है, जो सत्सारेमें प्रसिद्ध और कहा जाता है, क्योंकि वह स्मरण

करते ही अनेकों जन्मोंकी बन्धारी हुई सभी पापराशिको सदा ही हटाय

† आभास-द्वारस्तीवात् इत्ये० ६०

• पाण्डेयतीतावात् श्री० ४

‡ सकृदेव प्रपन्नत्वं तवास्मीति च याचते ।

कथयं सर्वभूतेभ्यो ददाभ्येतरत्नं मम ॥ (श० .

\*\*\*

मेघश्यामं पीतकौशेयवासं श्रीवत्साङ्गं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।  
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥६५॥\*

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।

तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्ददास्तु मे ॥६६॥\*

आर्ता विपण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु व्याघ्रादिषु वर्तमानाः ।

सङ्कीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ६७\*

अहं तु नारायणदासदासदासस्य दासस्य च दासदासः ।

अन्येभ्य ईशो जगतो नराणामस्मादहं चान्यतरोऽसि लोके ६८\*

ये ये हताश्वक्रधरेण राजंस्त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन ।

ते ते गता विष्णुपुरीं प्रयाताः क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः ६९\*

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव ।

जाता है ॥ ६४ ॥ नवीन मेघके समान श्यामसुन्दर, रेशमी पीताम्बरधारी,

श्रीवत्सचिह्नाङ्कित, कौस्तुभमणिसे देदीप्यमान अङ्गोवाले, पुण्यात्मा

कमलनयन और सम्पूर्ण लोकोके एकमात्र स्वामी श्रीविष्णु भगवान्को प्रणाम

करता हूँ ॥ ६५ ॥ हे इन्द्रियोंके सूत्रधार ! अपने कर्मोंके अनुसार होनेवाली

जिन-जिन योनियोंमें मैं जाऊँ, हर एकमें तुमसे मेरा अटूट प्रेम बना रहे ॥ ६६ ॥

घबराये हुए, विषादयुक्त, ढीले पड़े हुए, भयभीत हुए, भयङ्कर बाघ आदिके

चङ्गुलमें फँसे हुए मनुष्य भी 'नारायण' नाममात्रका उच्चारण करते ही दुःख-

से छूटकर सुखी हो जाते हैं ॥ ६७ ॥ मैं तो नारायणके दासोंके दासका

अनुदास और उसके भी दासानुदासका दास हूँ, मानव-जगत्के राजालोग

दूसरोंके लिये हैं, इसलिये संसारमें उनसे मैं अलग ही रहनेवाला हूँ

॥ ६८ ॥ हे राजन् ! त्रैलोक्यपति चक्रधारी जनार्दनके द्वारा जो लोग मारे गये

वे सभी विष्णुलोकको चले गये, इस देवका क्रोध भी बरकी तरह ही

कल्याणप्रद है ॥ ६९ ॥ हे माधव ! हे लोकनाथ ! मेरे जन्मका यही फल है, मेरी

त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-

भृत्यस्य भृत्य इति मां सर लोकनाथ ॥७०॥ॐ

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।

कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥७१॥ॐ

तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी गोदावरी सिन्धुसरस्वती च ।

सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः ॥७२॥ॐ

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु ब्रजाम्यहम् ।

तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥७३॥ॐ

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।

त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्भाषसर्पतु ॥७४॥ॐ

नित्योरसवस्तदा तेषां नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलम् ।

येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनं हरिः ॥७५॥ॐ

प्रार्थनासे मुझपर होनेवाली दया भी यही है कि, आप मुझे अपन भृत्यका भृत्य, उसके सेवकका सेवक और उसके दासका दासानुदासरूपसे याद रखें ॥ ७० ॥ हे यज्ञोंके स्वामी ! अन्युत, गोविन्द, माधव, अनन्त, केशव, कृष्ण, विष्णु, हृषीकेश ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ७१ ॥ गङ्गा, यमुना, त्रिवेणी, गोदावरी, सिन्धु, सरस्वती और अन्य सभी तीर्थ यहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान्की उदार कथा होती रहती है ॥ ७२ ॥ हे नाथ ! जिन-जिन हजारों योनियोंमें जाऊँ हर एकमें तुम्हारी अचल भक्ति मुझे प्राप्त हो ॥ ७३ ॥ मूढ़ लोगोंकी जिस प्रकार विषयोंमें नित्य प्रीति बनी रहती है, उसी प्रकार तुम्हारा वारंवार स्मरण करते हुए मेरे हृदयमें भी यही प्रीति हो ॥ ७४ ॥ जबसे जिनके हृदयमें मङ्गलधाम हरि बसने लगते हैं, तभीसे उनके लिये नित्य उत्सव है, नित्य लक्ष्मी और नित्य मङ्गल है ॥ ७५ ॥

● श्रीपारमहर्षीतायाम् श्री० १४, २९ (वि० पु० २।२३), ३८,

४१-४२ (विष्णु० २।२०।१८-१९), ४४



\*\*\*

नमामि नारायणपादपङ्कजं करोमि नारायणपूजनं सदा ।  
वदामि नारायणनाम निर्मलं स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम् ७६\*  
नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी ।  
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम् ॥७७॥\*  
आलोडय सर्वशास्त्राणि विचार्यैवं पुनः पुनः ।  
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥७८॥\*  
आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।  
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥७९॥\*  
( ६४ संख्यात आरभ्य ७९ संख्यापर्यन्तं श्रीपाण्डवगीतायाम् )  
श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति  
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।  
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-  
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ॥८०॥  
( मुकुन्दमालायाम् श्लो० २ )

मैं नारायणके चरणारविन्द्रांका नमस्कार करता हूँ, नारायणहीकी नित्य पूजा करता हूँ, नारायणके निर्मल नामका उच्चारण करता हूँ और नारायणके अव्यय तत्त्वका स्मरण करता हूँ ॥ ७६ ॥ नारायणरूप मन्त्रके रहते हुए और वाणीके स्वयंश रहते हुए भी, लोग नरकमें गिरते हैं— यह बड़ा आश्चर्य है ! ॥ ७७ ॥ सभी शास्त्रोंका मन्थन करके, तदनुसार वारंवार विचार करके, यही सार निकला है कि—सदैव नारायणहीका ध्यान करना चाहिये ॥ ७८ ॥ जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल अन्तमें समुद्रमें ही जा मिलता है, उसी प्रकार सभी देवोंके प्रति किया हुआ नमस्कार भगवान् केशवके ही पास जा पहुँचता है ॥ ७९ ॥ हे मुकुन्द ! मुझे ऐसा बनाइये कि मैं—हे रमानाथ ! हे वरदाता ! दयापरायण, भक्त-प्रेमी, आवागमनको सुद्धानेमें चतुर, नाथ, शेषशायी, जगदाधार !—इस

नाहं चन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः

कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम् ।

रम्या रामा मृदुतनुलता नन्दने नापि रन्तुं

भावे भावे हृदयमवने भावयेयं भवन्तम् ॥८१॥†

नास्या धर्मं न वसुनिचये नैव कामोपभोगे

यद्यद्भव्यं भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम् ।

एतत्प्राथम्यं मम बहु मतं जन्मजन्मान्तरेऽपि

त्वत्पादाम्भोरुद्दयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥८२॥†

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।

अवधीरितशारदारविन्दी चरणां ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥८३॥†

भवजलाधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं

कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम् ।

प्रकार निरन्तर बोलता रहूँ ॥ ८० ॥ हे हरे ! मैं आपके चरणयुगलमें इस्तित्वे जगत्कार नहीं करता हूँ कि मेरे इन्द्र ( जीनोष्णादि ) नाश हों, कुम्भीपाकादि बड़े-बड़े नरकोंमें बचा रहूँ, और नन्दनवनमें कोमलार्द्रा अक्षराओंके साथ रमण करूँ; अपि तु इस्तित्वे कि मैं सदा हृदय मन्दिरमें आपकी ही भावना करता रहूँ ॥ ८१ ॥ हे भगवन् ! मैं धर्म, धन-संपद और कामभोगकी आशा नहीं रखता, पूर्व कर्मानुसार जो कुछ होना हो सो हो जाय, पर मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरीमें भी आपके चरणारविन्द-युगलमें मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे ॥ ८२ ॥ हे नरकनाशक ! मैं स्वर्ग, पृथ्वी वा नरकमें ही क्यों न रहूँ, किन्तु शरणाधीन कमलको तिरस्कृत करनेवाले आपके चरण-युगलकी मते समय भी याद करता रहूँ ॥ ८३ ॥ हे मन ! मैं इस अयाद और दुःख भवसागरको कैसे पार करूँगा !—इस चिन्तामें कातर मन हो ।

† श्रीसुबुन्दरगणेशाय श्लो० १, ७, ८

सरसिजदृशि देवे तावको भक्तिरेका

नरकमिदि निपण्णा तारयिप्यत्यवश्यम् ॥८४॥†

तृष्णातोये मदनपवनोद्भूतमोहोर्मिमाले

दारावर्ते तनयसहजग्राहसद्वाकुले च ।

संसारारूपे महति जलर्या मजतां नस्त्रिधामन्

पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिभावं प्रदेहि ॥८५॥†

पृथ्वीरेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिङ्गो लघु-

स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः ।

क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा

दृष्टा यत्र स तावको विजयते श्रीपादधूलीकणः ॥८६॥†

आम्नायाम्भसनान्यरण्यरुदितं वेदघतान्यन्वाहं

मेदश्छेदफलानि पूर्वविधयः सर्वं हुतं भस्मनि ।

क्योंकि कमललोचन देवमें जो तुम्हारी ऐकान्तिकी भक्ति बनी हुई है वह तुम्हें अवश्य ही पार पहुँचावेगी ॥ ८४ ॥ हे सर्वभ्यापी ! हे वरदाता ! तृष्णारूपी जल, कामरूपी आँधीसे उठी हुई मोहमयी सरङ्गमाला, स्त्रीरूप भँवर और भार्द-पुत्ररूपी ग्राहोँसे भरे हुए इस संसाररूपी महान् समुद्रमें डूबते हुए हमलोगोंको अपने चरणारविन्दकी भक्ति दीजिये ॥ ८५ ॥ जिसमें सारी पृथ्वी परमाणुरूप, जल छींटिके समान, तेज तुच्छ चिनगारीके सदृश, वायु मन्द निःश्वासमात्र, आकाश क्षुद्र सुराखके सदृश और शिव-ब्रह्मादि देवता तुच्छ कीड़ेके समान दीख पड़ते हैं, ऐसे आपके श्रीचरण-रेणुके कणकी बलिहारी है ॥ ८६ ॥ जिस भगवान्के चरण-बुगलोंका स्मरण किये बिना वेदाम्बास अरण्यरोदन, व्रत शरीर-शोषणमात्र, कर्मकाण्ड भस्ममें दी हुई आहुतिके समान और

तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-  
 द्वन्द्वाम्मोहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः ॥८७॥†  
 भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां  
 सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ।  
 विषमविषयतोये मञ्जतामष्टवानां  
 भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥८८॥†  
 आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम नारायणानन्त निरामयेति ।  
 वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिद्दहो जनानां व्यवसनानि मोक्षे ८९†  
 क्षीरसागरतरङ्गसीकरासारतारकितचारुमूर्तये ।  
 भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुचिद्विपे नमः ॥९०॥†

तीर्थस्नान गजस्नानके समान ही निरर्थक रह जाते हैं, ऐसे नारायणदेवकी चलिहारी है ॥ ८७ ॥ जो संसारसागरमें गिरे हुए हैं, [ सुख-दुःखादि ] द्वन्द्वरूपी वायुसे आहत हो रहे हैं, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिके पालन-पोषणके मारसे आर्त्त हैं और विषयरूपों विषम ज उदाशिमैं विना नौकाके डूब रहे हैं उन पुत्रोंके लिये एकमात्र जहाजरूप भगवान् विष्णु ही शरण ही ॥ ८८ ॥ आश्चर्य है कि लोगोंको मोक्षकी ओर आनेमें बाधाएँ उपस्थित होती हैं, जो कि बोलनेमें समर्थ होनेपर भी कोई आनन्द, गोविन्द, मुकुन्द, राम, नारायण, अन्त, निरामय—इस प्रकार नहीं पुकारते ॥ ८९ ॥ क्षीरसागरकी तरङ्गोंके छींटोंकी रसगिरे जिनकी श्यामल मूर्ति ताराभोंसे आवृत हुई-नी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है तथा जो शेषनागके शरीररूपों शम्पाधर शयन करते हैं, उन मधुसूदन भगवान्

† श्रीकृष्णकौण्डिन्य शास्त्री विरचितानां मुकुन्दमालायां पृष्ठो० १०, ११, १२, ११ ।

\*\*\*\*\*

प्रमो वेङ्कटेश प्रभा भूयसी ते तमः संछिनत्ति प्रदेशे क्षये ।  
अहो मे हृदद्रेर्गुहागूढमन्धन्तमो नैति नायं किमेतन्निदानम् ॥९१॥

( स्वामिनोऽनन्ताचार्यस्य वेङ्कटेशप्रमाणोवात् )

कदा शृङ्गैः स्फीते मुनिगणपरीते हिमनगं  
द्रुमावीते शीते सुरमधुरगीते प्रतिवसन् ।  
क्वचिद्दयानासक्तो विषयसुविविक्तो भवहर  
स्मरंस्ते पादाब्जं जनिहर समेध्यामि विलयम् ॥९२॥

( स्वामिब्रह्मानन्दस्य विष्णुमहिम्नः श्लोकात् )

यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं  
हित्वाखिलं कलिमलं भुवनं पुनाति ।  
दग्ध्वा ममाघमखिलं करुणेश्चनेन  
दग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥९३॥  
( स्वामिब्रह्मानन्दस्य दीनबन्धुश्लोकात् )

माघवको नमस्कार हो ॥ ९० ॥ हे वेङ्कटेश्वर स्वामिन् ! आपकी प्रचुर  
मात्रामे कैचे हुई प्रभा सारे संसारके अन्धकारका नाश करती है; किन्तु  
आश्चर्य है कि मेरे हृदयाचलकी गुहामे छिपा हुआ अन्धकार नष्ट नहीं  
होता है, इसका क्या कारण है ? ॥ ९१ ॥ हे संसारतापहारिन् ! हे  
पुनर्जन्मसे छुड़ानेवाले ! [ ऊँची-ऊँची ] चोटियोंसे बड़े प्रतीत  
होनेवाले, वृक्षोंसे घिरे हुए, देवोंके मधुर संगीतसे सुशोभित और मुनिगणोंसे  
सेवित ठण्डे हिमालयमें निवास करता हुआ कहीं विषयोंसे विरक्त और  
ध्यानमें मग्न होकर, आपके चरणारविन्दोंका स्मरण करता हुआ मैं क्या  
तन्मय हो जाऊँगा ? ॥ ९२ ॥ जिनके नाम-कीर्तनमें तत्पर चाण्डाल भी अपने  
समस्त कलिमलका नाश करके संपूर्ण संसारको निश्चय हो पवित्र कर देता है,  
ये दीनबन्धु हमारे सभी पापोंको अपनी दया-दृष्टिसे भस्म करके, मेरी

सर्ववेदमयी गीता सर्वधर्ममयी मनुः ।

सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयी हरिः ॥ ९४ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।

आर्द्रा मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते ॥ (महाभारते १८।६।९३)

नेदं नभोमण्डलमभ्युराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः ।

नाथं शशी कुण्डलितः कशीन्द्रो नाथं कलङ्कः शयितो मुरारिः ९४

(चौरकथिविल्लहणस्य)

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे ।

चदिस्तरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्तते ९७ (गुरुकीमुचाम्)

कदा प्रेमोद्गारः पुलकिततनुः साभ्रनयनः

सर्मुचैः प्रीत्या शिथिलहृदयो गद्गदगिरा ।

अये श्रीमन् विष्णो रघुवर चदत्तंस नृहरे

प्रसीदत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ९८ ॥

औंसीके सामने प्रकट ही ॥ ९२ ॥ गीता सर्ववेदमयी है, मनुस्मृति

सर्वधर्ममयी है, गङ्गा सर्वतीर्थमयी है और भगवान् हरि सर्वदेवमय है

॥ ९४ ॥ वेद, रामायण, पुराण और महाभारत—इन सभीके आदि,

मध्य और अन्तमें सब जगह भगवान् हीका गुणावुवाद है ॥ ९५ ॥ यह

आकाश नहीं, समुद्र है; ये तारागण नहीं, समुद्र-वेनके कण हैं; यह

चन्द्रमण्डल नहीं, कुण्डलाकार बैठे हुए शेषशो है और (चन्द्रविम्बमें)

ये धम्बे नहीं, सोवे हुए विष्णु ही हैं ॥ ९६ ॥ अरे ! उठ क्षेम-धाम

हरिका नाम भज, [क्षण-क्षणमें] बाहर निकलनेवाले आसुर बया

विधातु है ! ॥ ९७ ॥ प्रेमोद्गारसे पुलकिततनू, सभ्रनयन और

प्रेमसे शिथिलहृदय होकर गद्गद शायीगे, 'हे श्रीमन् विष्णो ! हे

रघुवर ! हे चदुषंघभूषण ! हे नृसिंह ! प्रसन्न होकर'—ऐसा उलझने

करना हुआ, मैं धरने दिनोंको क्षणके समान रूप बिताऊँगा ! ॥ ९८ ॥

तपन्तु तार्पः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् ।  
 यजन्तु यार्गवियदन्तु पादैर्हरिं विना नैव मूर्तिं तरन्ति (भीष्मस्य)  
 अमिमानं सुरापानं गौरवं रौरवं ममम् ।  
 प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा प्रथं त्यक्त्वा हरिं मजेन् ॥१००॥  
 संसारसागरं घोरमनन्तं ह्येधमाजनम् ।  
 त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः (महापुरुषविद्यायाम्)  
 न ते रूपं न चाकारो नापुधानि न चास्पदम् ।  
 तथापि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे (महापुरुषविद्यायाम्)  
 किं पाद्यं पदपङ्कजे समुचितं यत्रोद्भवा जाह्नवी  
 किं वाध्यं मुनिपूजिते शिरसि ते भक्त्याहृतं साम्प्रतम् ।  
 किं पुष्पं त्वयि शोभनं ब्रजपते सत्पारिजातार्चिते  
 किं स्तोत्रं गुणमागरे त्वयि हरे केनाचयेत्त्वां नरः ॥१०३॥

चाहे कोई तप करे, पर्वतोंसे गिरे, तीर्थोंमें भ्रमण करे, शास्त्र पढ़े, यज्ञ-  
 यशादि करे अथवा तर्क-वितर्कोंद्वारा विवाद करे, परन्तु श्रीहरि (की कृपा)  
 के बिना कोई भी मृत्युको नहीं पार कर सकता ॥ १९ ॥ अमिमान  
 मद्यपानके समान है, गौरव (वदुष्पन) रौरवनरकके तुल्य है और  
 प्रतिष्ठा (मान-बड़ाई) सूकर-विष्ठाके सदृश है; अतः इन तीनोंको  
 त्यागकर हरिका भजन करे ॥ १०० ॥ शानीजन आपकी ही शरण  
 लेकर, इस अपार दुःखमय भयङ्कर संसार-सागरसे पार हो जाते हैं  
 ॥ १०१ ॥ यस्तुतः आपका कोई रूप, आकार, आयुष और स्थान  
 नहीं है, तो भी भक्तोंके लिये आप पुरुषरूपमें प्रकट होते हैं ॥ १०२ ॥  
 जिन चरणोंसे पुण्यसलिला भागीरथीका उद्भव हुआ है, उनको पाद्यरूपसे  
 क्या देना उचित है ? जिस आपके मस्तकका मुनिजनोंने पूजन किया है,  
 अब उसपर भक्तिपूर्वक अर्घ्य किसका दें ? और हे मजराज ! कल्पतरुके  
 सुन्दर पुष्पोंसे पूजित आपको पुष्पाञ्जलि किसकी दें ? तथा हे गुणोंके  
 सागर हरे ! आपका स्तवन भी कैसे करें ? तो फिर कहिये, मनुष्य आपका



माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ।  
 बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥ (चाणक्यनीतिः)  
 केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः  
 केचिद् वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः ।  
 व्याप्तो वदत्यखिलवेदविशेषविज्ञो  
 नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः । १०५। (भीष्मस्य व्रजविहागान्)  
 त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।  
 त्वमेव विश्वा द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ १०६ ॥

(शण्डवगीतायाम् २८)

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं  
 विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।  
 लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिमिर्ध्यानगम्यं  
 वन्दे विष्णुं भवभयहर्त्रं सर्वलोककनाथम् ॥ १०७ ॥

पूजन किस प्रकार करे ! ॥ १०१ ॥ मेरी माता श्रीलक्ष्मीजी है, पिता विष्णु भगवान् हैं, बन्धुजन भगवद्भक्त हैं और सम्पूर्ण त्रिभुवन मेरा स्वदेश है ॥ १०४ ॥ कोई तो धनहीन मनुष्यको नीच कहते हैं और कोई गुणहीनको नीच बतलाते हैं; किन्तु सम्पूर्ण वैदिक विशेष काला भीवेदव्यासजी तो हरिस्मरणहीन पुरुषको ही नीच कहते हैं ॥ १०५ ॥ हे देवदेव ! तुम ही मेरी माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही बन्धु हो, तुम ही सखा हो, तुम ही विश्वा हो, तुम ही धन हो और तुम ही मेरे सर्वत्व हो ॥ १०६ ॥ सर्वलोकोंके एकमात्र स्वामी भवभयहारी भगवान् विष्णुकी वन्दना करता हूँ, जो शान्तस्वरूप हैं, तोयघायी हैं, कमलनाभ और सुरेश्वर हैं, जो विश्वके आधार, आकाशके समान त्रिलोक मेघवर्ण और सुन्दर शरीरवाले हैं तथा जो लक्ष्मीजीके आनन्द-बर्षक, कमलनयन और योगिपरीके द्वारा प्यानसम्पद हैं ॥ १०७ ॥



सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।  
 सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥  
 जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।  
 ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥१०९॥  
 ( ब्रह्माण्डपुराणे विष्णुपञ्चस्तोत्रात् )

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्यन्ति दिव्यैः सर्वै-  
 र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।  
 ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो  
 यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥११०॥†  
 केचित्क्षदेहान्तर्हृदयावकाशेऽप्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।  
 चतुर्भुजं कञ्जरयाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥१११॥†

उन चतुर्भुज भगवान् विष्णुको मैं शिरसे प्रणाम करता हूँ, जो शङ्ख-चक्र  
 धारण किये हैं, किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित हैं, पीताम्बर ओढ़े हुए  
 हैं, सुन्दर कमल-से जिनके नेत्र हैं और जिनके यशःस्थलमें धनमाला-  
 सहित कौस्तुभमणिकी अनूठी शोभा है ॥ १०८ ॥ जलमें, स्थलमें,  
 पर्वतशिखरीमें और ज्वालामालाओंमें सर्वत्र विष्णु विराजमान हैं, समस्त  
 जगत् विष्णुमय है ॥ १०९ ॥ ब्रह्मा, यरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्रण  
 जिनका दिव्य मोक्षोंसे स्तवन करते हैं, सामगान करनेवाले लोग  
 अद्भुत, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंसे जिनका गान करते हैं,  
 ध्यानमग्न एवं तन्मीनचित्तसे योगी जिनका ध्यानात्कार करते हैं और  
 जिनका पारसुर और अमुर कोई भी नहीं पाते उन भगवान्को नमस्कार  
 है ॥ ११० ॥ कोई-कोई अपने देशके भीतर विष्णाकाशमें विराजमान  
 प्रादेशमात्र ( विष्णुमयके ) चतुर्भुज पुरुषको, जो शङ्ख, चक्र, गदा और  
 पद्म धारण किये हुए हैं, धारणाद्वारा स्मरण करते हैं ॥ १११ ॥

प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिङ्कल्कपिशङ्गवाससम् ।  
 लसन्महारत्नद्विरप्मयाङ्गदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकण्डलम् ११२ ।  
 उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ।  
 श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाञ्चितम्  
 विभूषितं मेखलयाङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।  
 स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ।  
 अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूमङ्गसंस्त्रितभूर्यनुग्रहम् ।  
 ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयावतिष्ठते ११५ ।  
 प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ।  
 सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥११६॥

जो प्रसन्नवदन है, कमलके समान विशाललोचन है, कदम्बकेसरके सहस्र  
 पीताम्बर ओढ़े हुए हैं, जिनके रत्नसञ्चित स्वर्णमय भुजवन्द सुशोभित  
 हैं तथा बहुमूल्य रत्नमय किरीट और कुण्डल देदीप्पमान हो रहे हैं,  
 जिनके चरण-कमलोंको योगीश्वरोंने अपने हृदयरूप सिले हुए कमल-  
 कोषमें स्थापित कर रखा है, जो भीवत्सचिह्नको धारण किये रहते हैं,  
 कौस्तुभमणिले जिनकी मीठा सुशोभित हो रही है और जो अमन्द  
 वान्तिमयी वनमालासे सुशोभित होते हैं ॥ ११२-११३ ॥ जो मेखला  
 अङ्गुलीय ( अँगूठी ), महामूल्य नूपुर और कङ्कणादिसे विभूषित हैं,  
 अत्यन्त चिकने, स्वच्छ, घुघराले, काले-काले बालोंसे जिनका मन्द  
 मुसकानमुत मधुर मुख शोभा पा रहा है ॥ ११४ ॥ उदार लीलामय  
 मुसकान और चितवनके द्वारा उत्पन्न भ्रूमङ्गीले जिनका भार  
 अनुग्रह सूचित हो रहा है, ऐसे ध्यानमय प्रभुको तत्तक देखते रहन  
 चाहिये, जबतक धारणाके द्वारा चित्त स्थिर न हो ॥ ११५ ॥ जो सद  
 कृपा करनेको उद्यत रहते हैं, प्रसन्नमुख और प्रसन्नवदन हैं  
 जिनकी नासिका, भौंहें और कपोल अतिसुन्दर हैं और समस्त देवताओं

तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोद्देशगाधरम् ।  
 प्रणताश्रमणं नृमणं शरण्यं करुणार्णवम् ॥११७॥  
 श्रीशरणाङ्गं धनश्यामं पुरुषं धनमालिनम् ।  
 शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥११८॥  
 किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवनमालिनम् ।  
 कौस्तुभामरणप्रोबं पीतकौशेयवासमम् ॥११९॥  
 काञ्चीकलापपर्यस्तं लमत्काञ्चननूपुरम् ।  
 दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥१२०॥  
 पद्म्यां नगमणिश्रेण्या विलमद्म्यां समर्चिताम् ।  
 हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥१२१॥  
 सधमानमभिभ्यायंत्सानुरागावलोकनम् ।  
 नियतेनैकभूतेन मनमा वरदर्पमम् ॥१२२॥

जो मनोहर है ॥ ११६ ॥ जो तरुण है, कमनीयकनेवर है, जिनके ओष्ठ, अघर और नेत्र अरुण हैं, जो शीश छुटानेवालोंको आश्रय देनेवाले हैं, मनुष्योंके शरणदाता और करुणाके सागर हैं ॥ ११७ ॥ जिनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सच्छिद्र है, जो धनश्याम हैं, परमपुरुष हैं, धनमालाधारी हैं, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मयुक्त जिनकी चार भुजाएँ हैं ॥ ११८ ॥ जिन्होंने किरीट, कुण्डल, केयूर, वनमाला, गलेमें कौस्तुभ-मणिरूप आभूषण तथा रेशमी पीताम्बर धारण कर रखा है ॥ ११९ ॥ जो काञ्चीकलाप ( करघनी ) से परिवेष्टित हैं और जिनके सुवर्णमय नूपुर सुशोभित हैं तथा जो अतिशय दर्शनीय, शान्त, मनोरम एवं नयनानन्द-वर्धन हैं ॥ १२० ॥ जो नखरूप मणिमालासे शोभायमान चरणोंद्वारा अपनी पूजा करनेवाले भक्तोंके हृदय-पुण्डरीकके स्थानको आक्रान्त-कर उनके चित्तमें विराजमान हैं ॥ १२१ ॥ उन अनुराग भरी दृष्टिवाले, हंसमुख, वरदायक भगवान्का संयमपूर्वक एकाग्रचित्तसे ध्यान



ध्यानयोगी ध्रुव



महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् ।  
 कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरध्रुवम् ॥१२३॥ऽ  
 श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् ।  
 विद्रुमाधरभासेपच्छोणायितसुधासितम् ॥१२४॥ऽ  
 पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् ।  
 श्वासैजद्रलिसंविश्रनिम्ननाभिदलोदरम् ॥१२५॥ऽ  
 चार्चङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ।  
 मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥१२६॥ऽ  
 भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ।  
 दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ १२७॥\*

॥ १२२ ॥ जो महान् मरकतमणिके समान श्यामवर्ण है, जिनका लके समान मुख शोभायमान है, जिनकी ग्रीवा शङ्खके समान, मुखल विशाल और नासिका तथा भीहें सुन्दर हैं । जो वासुसे हिलती अलकोसे सुशोभित है, जिनके शङ्खसदृश कानोंमें दाडिमके फूल हैं, उनके समान अरुण अघरोकी कान्तिसे जिनकी सुधामयी मुसकान कुल लिमा-सी लिये हुए है ॥ १२३-१२४॥ कमलके भीतरी भागके समान अरुण के नेत्रोंके कोने हैं, जिनके हास्य और अवलोकन अति हृदयहारी है र श्वास लेते समय जिनका धियलीमुक्त तथा नीची नाभिवाला उदरदेश पायमान हो रहा है ॥ १२५ ॥ ऐसे बालरूप भगवान्को सुन्दर हुलियोंवाले दोनों हाथोंसे अपने चरणकमलको खींचकर, मुत्तमें र पीते हुए देखकर द्विजवर मार्कण्डेयको बड़ा आश्चर्य हुआ! ॥ १२६ ॥

\*\*\*\*\*

तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च सर्वव्यो भगवान् नृणाम् ॥ १२८ ॥ \*

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।

लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः १२९\*

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।

क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः १३०\*

किरातहृणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः स्वशादयः ।

येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुष्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः\*

ग्राह्यस्ते गजेन्द्रे रुदति सरभसं ताक्ष्यमारुह्य धावन्

व्याघूर्णन् माल्यभूपावसनपरिकरो मेघगम्भीरघोषः ।

अतः हे राजन्! भगवान् हरि मनुष्योंके द्वारा सर्वथा सर्वत्र सर्वदा भवणीय, कीर्तनीय और स्मरणीय हैं ॥ १२८ ॥ उस कल्याणकीर्ति भगवान्को नमस्कार है, जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, भवण और पूजन लोकके उत्कट पापोंका भी शीघ्र ध्वंस कर देता है ॥ १२९ ॥ जिनको अपर्ण किये बिना मङ्गलमय तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी और मन्त्रवेत्ता किसी मुत्तको नहीं प्राप्त कर सकते, उन कल्याणकीर्ति भगवान्को नमस्कार है ॥ १३० ॥ किरात, हृण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्का, यवन और स्वशा तथा अन्य पापीजन भी जिनके आभयने डरते हो जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है ॥ १३१ ॥ ग्राह्ये प्रसा होकर गजेन्द्रके रोनेपर हाथोंमें चक्र, शर, तलवार, अमय, शङ्ख, चाप, माल और कौमोदकी गदा धारण करके मेघकी सी गम्भीर गर्जना करते हुए जो गवहपर चढ़कर घाँसतासे दौड़ पड़े और उस समय उतावलीके

आविभ्राणो रथाङ्गं शरमसिमभयं शङ्खधारी सखेटौ  
हस्तैः कौमोदकीमप्यवतु हरिरसावहसां संहतेर्नः ॥१३२॥  
नक्राक्रान्ते करीन्द्रे मुकुलितनयने मूलमूलेति खिन्ने  
नाहं नाहं न चाहं न च भवति पुनर्मादृशस्त्वादृशेषु ।  
इत्येवं त्यक्तहस्ते सपदि सुरगणे भावशून्ये समस्ते  
मूलं यत्प्रादुरासीत्स दिशतु भगवान् मङ्गलं सन्तर्तनः ॥१३३॥  
यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो  
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।  
अर्हन्निश्चय जैनशासनरताः कर्मेति भीर्मासकाः  
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥१३४॥

( इनुमचाटकात् )

यत्र निर्लिप्तभावेन संसारे वर्तते गृही ।

धर्मं चरति निष्कामं तत्रैव रमते हरिः ॥१३५॥ (साधुकुमारस्य )

कारण जिनके हार, भूषण, कमरबन्द आदि तितर-वितर हो गये थे, वे भगवान् विष्णु हमारी पापसमूहसे रक्षा करें ॥ १३२ ॥ जब गजेन्द्र ब्राह्मे द्वारा आक्रान्त हो आँखें भीचकर दुखी हो 'दे विश्वके मूलाधार ! [ मेरी रक्षा करो ]' इस प्रकार पुकारने लगा, उस समय 'तुम्हारे-जैसे महाविपन्नोकी रक्षा करनेकी मैं नहीं ! मैं भी नहीं !! और मैं रक्ष नहीं समर्थ हूँ' ऐसा कहकर सहसा सब देवता हाथ छुड़ाकर भावशून्य हो गये तब जो सर्वमूलाधार प्रकट हुआ वह ही हमारा निरन्तर मङ्गल करे ॥ १३३ ॥ शैव जिसकी शिवरूपसे उपासना करते हैं, वेदान्ती ब्रह्मरूपसे, बौद्ध बुद्धरूपसे और प्रमाण-कुशल नैयायिक जिसको कर्त्ता मानकर पूजते हैं, जैन जिन अर्हत् और भीर्मासक कर्म बतलाते हैं, वह त्रैलोक्याधिपति भगवान् तुमको वाञ्छित फल प्रदान करे ॥ १३४ ॥ जहाँ रहस्य पुरुष संसार निर्लिप्तभापसे रहता हुआ धर्माचरण करता है, वही श्रीहरि विद



शोकं शोकहर्तं यीक्ष्य हाहाकारसमाकुलम् ।  
 शोकं भज रे चैतन्मद्विष्णोः परमं पदम् १३६ (श्रीःताराकुमार्य  
 णो जल्पः शिल्पं मकलमपि मुद्राविरचना  
 तिः प्रादक्षिण्यक्रमणमदनान्याहुतविधिः ।  
 णामः मंचेशः मकलमिदमारमार्षणविधा  
 पर्यापगोपस्तव भवतु यन्मं विलगितम् ॥ (श्रीःशङ्करानार्यस्य)

(श्रुतिलक्ष्मणसूक्तिः)

धृत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मरुलप्रशृत्यै  
 र्त्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणाध्यायै ।  
 शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै  
 पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥१३८॥  
 (स्वा० शङ्करानार्यस्य कनकधारास्तवात्)

करते है ॥ १३६ ॥ हे चित्त ! इस लोककी शोकसन्तप्त और हाहाकारसे  
 व्याकुल देखकर, भगवान् विष्णुके उस शोकहीन परमपदको भज ॥ १३६ ॥  
 हे भगवन् ! मेरा बोलना आपका जप हो, सब प्रकारकी शिल्प (शायकी  
 कारीगरी) मुद्रा रचना हो, चलना-पिरना प्रदक्षिणा हो, भोजन करना  
 हवनक्रिया हो और शयन करना प्रणाम हो: इस प्रकार मेरी सभी  
 चेष्टाएँ आत्मार्पणविधिमें आपकी पूजारूप ही हों ॥ १३७ ॥

—ॐ—

यथादि शुभ कर्मोंके फलको प्रकट करनेवाली श्रुतिरूपिणी, सुन्दर गुणों-  
 की आभयभूत रतिरूपिणी, कमलवाहिनी शक्तिरूपिणी और पुरुषोत्तम  
 विष्णुकी प्रियतमा पुष्टिरूपिणी लक्ष्मीको बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥१३८॥

मम न भजनमक्तिः पादयोस्ते न रक्ति-  
 नं च विषयविरक्तिर्घ्यानयोगे न शक्तिः ।

इति मनसि सदाई चिन्तयन्नाद्यशक्ते  
 रुचिरवचनपुष्परचनं संचिनोमि ॥१३९॥

( रवार्मिनः शङ्कराचार्येण भगवतीमानसूत्रानुशान् )

मरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।  
 भगवति हरिवल्लभे मनोहे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद महाम् ( भक्ति-  
 विष्णुपत्नी धर्मा देवी माधवी माधवप्रियाम् ।  
 त्रिष्णुप्रियमखीं देवीं नमाम्यप्युत्तमाम् १४१ ( भक्त्यान् )  
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।  
 शरण्ये श्यम्यके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ( मार्कण्डेयपुराण )



दे आदिघण्टे । मङ्गले न आपदा भजन दे, न भक्ति दे, न  
 भावके चालोमे प्रेम दे, न विषयमे योत्सव दे और न ध्यानकी शक्ति ही  
 दे—मनमें यह सोचकर मैं महा मगुर वचनकी पुष्पोंमे ही आपकी  
 पूजा करता हूँ ॥ १३९ ॥ कमल ही जिनके निवासस्थान है, जिनकीने  
 हाथोंमे कमल चरण चिदा है, जो आपका उगडकल बन्ध और मङ्ग-  
 लमादिमे सुदोभित है, देवी दे विष्णुकी ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली  
 सुन्दरी भगवति हरिनिवे ! तुम मेरे सर्व प्रणव होओ ॥ १४० ॥ त्रिष्णुकी पत्नी,  
 लक्ष्मी, माधव प्रिया, विष्णुकी मित्रलक्ष्मी और अश्विनीकी प्रेयसी  
 भगवती माधवीको मङ्गलवार करता हूँ ॥ १४१ ॥ सर्व मङ्गल-कारियोंको  
 मङ्गलकर बनानेवाली, हरिनाथमयी, सर्वकामनाओंकी पूर्ण करनेवाली,  
 मङ्गलकरणी रत्न करनेवाली, चिन्तेकरणी, योगिनी, दे नारायण-  
 र्चन ! आपकी मङ्गलवार है ॥ १४२ ॥



ॐ

## चतुर्थोऽङ्कः



( श्रीरामसूक्तिः )

सर्वाधिपत्यं समरे गभीरं सत्यं चिदानन्दमयस्वरूपम् ।  
सत्यं शिवं शान्तिमयं शरण्यं सनातनं राममहं भजामि ॥ १ ॥  
( सनत्कुमारसंहितायां रामस्तवराजस्तोत्रात् )

वन्दे शारदपूर्णचन्द्रवदनं वन्दे कृपाम्भोनिधिं  
वन्दे शम्भुपिनाकखण्डनकरं वन्दे स्वभक्तप्रियम् ।  
वन्दे लक्ष्मणसंयुतं रघुवरं भूपालचूडामणिं  
वन्दे ब्रह्म परात्परं गुणमयं श्रेयस्करं श्लाघ्यतम् ॥ २ ॥  
( पं० श्रीजयदेवस्य रामगीतगोविन्दात् )

सबके स्वामी, युद्धकुशल, सर्वाधिपत्यरूप, सर्वदा सत्य,  
कल्याणमूर्ति, शान्तिमय, शरणागतवासाल एवं सनातन रामको मैं भजता हूँ  
॥ १ ॥ जिनका शारदकालीन चन्द्रके समान मुख-रुमठ है, जो दया-  
सागर, शिवके धनुषको तोड़नेवाले, अपने भक्तोंके प्यारे, राजाओंके  
शिरोमणि, परब्रह्मस्वरूप, महान्-सै-महान्, त्रिगुणमय और कल्याण  
करनेवाले हैं: लक्ष्मणके सहित उन सनातन पुत्रप श्रीरघुनाथकी मैं

वने चरामो वसु चाहरामो नदीं तरामो न भयं सरामः ।  
इति ब्रुवन्तोऽपि वने किराता मुक्तिं गता रामपदानुपज्ञात् ॥३॥

चिदाकारो घाता परमसुखदः पावनतनु-  
र्मुनीन्द्रैर्योगीन्द्रैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता ।

सदा सेव्यः पूर्णो जनकतनयाङ्गः सुरगुरु  
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ४ ॥  
( कवेरमरदासस्य रामचन्द्राष्टकश्लोकात् )

श्रीरामतो मध्यमतोदि यो न धीरोऽनिशं वश्यवतीयराद्वा ।  
द्वारावती वश्यवशं निरोधी नयोदितो मध्यमतोऽमरा श्रीः ॥ ५ ॥  
( देवशपण्डितवृष्यस्य रामकृष्णविलोमकाव्यात् )

आसुरं कुलमनादरणीयं चित्तमेतदमलीकरणीयम् ।

शारम्भार वन्दना करता हूँ ॥२॥ वने चरामः ( वनमें विचरण करते हैं )  
वस्वाहरामः ( पपिकोंके घनको नष्टकर ले आते हैं ), नदी तरामः ( नदीको  
तेरकर भाग जाते हैं ), न भयं सरामः ( हमें किसी भयकी याद भी  
नहीं रहती )—इस प्रकार वनमें चारते करते हुए किरात लोग भी  
मुखसे शारम्भार रामशब्दका उच्चारण हो जानेसे मुक्तिपदको प्राप्त हो  
गये ॥ ३ ॥ बड़े-बड़े मुनियों, योगिराजों, यतिवरों, देवेश्वरों और  
हनुमान्जीके सदा सेव्य, विश्वरूप, लोकपालक, परमानन्ददाता,  
पवित्र शरीरवाले, पूर्णस्वरूप, देवगुरु, आनकोबस्त्रम रमापति राम  
मेरे चित्तमें सदा रमण करें ॥ ४ ॥ जिसने सीतापति रामचन्द्रके अंगेर  
अपने बीचमें प्रकटित प्रपन्नको विलीन कर दिया है अथवा चित्तको  
संसारसे हटाकर द्वारिकावासी कृष्णमें निरोध कर दिया है, वही धीर है;  
क्योंकि इसीसे मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ दुष्ट जनोंकी उपेक्षा

रामधाम शरणीकरणीयं लीलयाम मन्त्रजलं तरणीयम् ॥ ६ ॥  
 अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं मनुष्यभावेन विमोहितं जगत् ।  
 चलत्प्रजसं चरणादिवर्जितः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः \*  
 यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा

मागीरधी भवविरश्चिमुत्थान्पुनाति ।

माशास्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते  
 किं षण्यते मम पुराकृतमागवेयम् ॥८॥\*

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामामिधेयं रमणीयदेहिनम् ।  
 धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्मज्जिष्ये ॥९॥\*  
 यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिमिर्विमृग्यं

यन्नाभिपङ्कजमरः कमलासनय ।

करनी चाहिये, इस चित्तको निर्मल करना चाहिये, रामके प्रभावकी शरण लेनी चाहिये। इस प्रकार अनायास ही भयसागरको पार करना चाहिये ॥६॥ [अहल्या कहती है] हे राम ! आपकी लीला विचित्र है, संसार आपको मनुष्य समझकर मोहित हो रहा है; आप पूर्ण आनन्दमय और अत्यन्त मायावी हैं; क्योंकि चरणादिसे रहित होकर भी सदा चलते रहते हैं ॥ ७ ॥ जिनके चरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र अङ्गवाली गङ्गा, शिव-ब्रह्मादिको पवित्र करती है, साक्षात् वही राम मेरी आँखोंके सामने उपस्थित हैं, इसलिये मेरे पूर्वसञ्चित सीमाग्यका क्या वर्णन किया जाय ? ॥ ८ ॥ मर्त्यलोकके अवतारोंमें मनुष्यका रूप धारण करनेवाले, सुन्दर शरीरवाले, धनुषधारी, कमलके समान विशाल नेत्रवाले, राम-नामधारी हरिका ही मैं नित्य भजन करूँगी, दूसरोंका नहीं ॥ ९ ॥ श्रुतियोंद्वारा जिनके चरण-कमलकी रज ढूँढ़ी जाती है, जिनके नाभि-कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए

ॐ श्रीरामस्तुतिः ॐ

यन्नाममारसिको भगवान्पुरारि-

स्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ॥

भक्तिभुक्तिविधापिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे  
लोकाः कामदुषाह्विपद्मयुगलं मेव ध्यमत्युत्सुकाः ।  
नानाज्ञानविशेषमन्त्रवितति त्यक्त्वा सुदूरे भृशं  
रामं श्यामवतनुं मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ।  
तव दामस्य दासानां शतमंरुयोत्तरस्य वा ।  
दामीत्वेनाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि ।

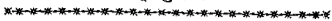
जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश-

कालाद्युपाधिरहितं धनचित्प्रकाशम्

प्रत्यक्षतोऽप्य मम गोचरमेतदेव

रूपं विमातु हृदये न परं विकारह्ये

हे, भगवान् दाहुर जिनके नाम-तावके प्रेमी है, उन श्रीरामचन्द्र  
हृदयमें भावना करती हूँ ॥१०॥ हे लोको ! भगवान् रामकी म  
ईनेवाली है, इगतिसे कामधेनुके समान उनके चरणारविन्दकी  
पूर्वक सेवा करो, हे विद्वानो ! नाना प्रकारके ज्ञान और मन्त्रोंके  
दूरी ही त्यागकर, महादेवजीके हृदयमें प्रवासित होनेवाले  
रामका चारभार भजन करो ॥ ११ ॥ [ चरिते कहा— ] हे  
तो आरके दागके दागोंमें सबहुके पीछे भी आपकी दासताका  
नहीं है; अप्ण साक्ष्यत् आपकी दासी तो हो ही कैसे सकती हूँ ?  
हे राम ! भजन देण और बाण भादिकी उपाधिसे गति  
विशवन्दपनरको कुछ लोग भते ही जाना करें, पर मेरे  
आत्र जिनका प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है आपका वही मनुजमय



त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसङ्गीतकथासु घाणी ।  
 त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम् ॥१४॥†  
 त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स भृणोतु कर्णः ।  
 त्वञ्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि ॥१५॥†  
 अहं भवन्नाम शृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।  
 मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥१६॥†

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽसदीये

सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे

कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥१७॥

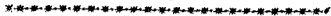
( भीतृत्सीदासस्य रामचरितमानसे ५ । २ )

हो, मैं औरकी आकाङ्क्षा नहीं करता ॥ १३ ॥ मेरी चित्तवृत्ति आपके चरण-कमलोंमें लगे, घाणी आपके नामसंकीर्तन तथा कथा-वार्तामें लगे, हाथ आपके भक्तोंकी सेवामें लगे रहें और मेरे अङ्ग आपके अङ्गोंका सङ्ग प्राप्त करें ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! मेरे नेत्र आपके स्वरूप और आपके भक्तोंकी तथा अपने गुरुदेवको देता करें, कान आपके जन्म और कर्मकी स्मृतिओंको सदा मुनें तथा पैर सदा आपके मन्दिर और तीर्थोंमें भ्रमण करें ॥ १५ ॥ [ शिवजीने कहा—हे राम ! ] मैं आपका नाम जाता हुआ वृत्तार्थ होकर, पावर्तोंके साथ सर्वदा काशीमें निवास करता हूँ और मरते हुए लोगोंको मुक्ति के लिये, आपके राम-नामरूपी तारक मन्त्रका उपदेश करता रहता हूँ ॥ १६ ॥ हे रघुनाथ ! मेरे हृदयमें दूरी अनिलाया नहीं है, मैं आरने सत्य कह रहा हूँ, क्योंकि आप सचके अन्तरात्मा हैं । हे रघुभेट ! मुझे पूर्ण भक्ति दें और मेरे चित्तको काम आदि दोषोंमें रहित कर दें ॥ १७ ॥

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुला कोमलावजमहेशयन्दिता ।  
 जानकीकरसरोजलालिताचिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनी ॥१८॥\*  
 ब्रह्मान्मोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चान्वयं  
 श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा ।  
 संसारामयभेषजं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं  
 धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् १९\*  
 नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।  
 पार्णा महासायकचारुध्वापंनमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥२०॥\*  
 सान्द्रानन्दपयोदसौमगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं  
 पार्णा वाणशरासनं कटिलसत्पुणीरभारं वरम् ।

काशलेन्द्र भगवान् रामचन्द्रजीके सुन्दर चरणरूपी कमल कोमल है, ब्रह्मा और शिव उनकी कन्दना करते हैं, जानकीजीके कर-कमलोसे उनकी सेवा होती है और मत्तोंके मनरूपी भौरें, उनपर लुभाये रहते हैं ॥ १८ ॥ जो ब्रह्मरूपी समुद्रसे उत्पन्न हुआ है, कलि-कल्मषका भ्वंस करनेवाला है, अन्वय है, तदा भीमहादेवजीके सुन्दर मुरारचन्द्रमें सुशोभित है और संसाररूपी रोगकी महौषधि है, आवन्त मधुर है, तथा श्रीजानकीजीका जीवनोपाहार है, उस राम-नामरूपी अमृतका जो निरन्तर पान करते हैं, वे मुकृतीजन धन्य हैं ॥ १९ ॥ जिनका नील कमलके समान अतिसुन्दर श्याम शरीर है, जिन्होंने वामभागमें भीसीता-जीको बिठा रखा है तथा जिनके हाथोंमें महान् धनुष और सुन्दर वाण हैं, उन रघुवंशनाथ श्रीरामको प्रणाम करता हूँ ॥ २० ॥ स्तिम्भ आनन्द-पयोदके सदृश जिनका मनोहर शरीर है, जो सुन्दर हैं, पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जिनके हाथोंमें धनुष-बाण और कमरमें सुन्दर तरकस





राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन मंशोभितं  
 सीतालक्ष्मणसंयुतं पथि गतं रामामिरामं भजे ॥२१॥\*  
 फेकीकण्ठामनीलं गुरवरविलसद्विप्रपादाञ्जचिह्नं  
 शोभाद्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।  
 पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं वन्धुना सेव्यमानं  
 नामीह्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढरामम् २२\*  
 ध्येयं सदा परिमत्रमभीष्टदोहं  
 तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरष्यम् ।  
 भृत्यार्तिहं प्रणतपाल मवाब्धिपोतं  
 वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२३॥  
 ( भाग० ११।५।३३ )

मुशोभित है, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो जटाजूट धारण किये  
 शोभायमान हैं, सीता और लक्ष्मणके सहित वन्य पथपर चल रहे हैं, उन  
 अति अभिराम रामको भजता हूँ ॥ २१ ॥ मधूरकण्ठके समान जिनका नील  
 शरीर है, जो देवेश्वर हैं, जिनके वक्षःस्थलमें विप्रवर भृगुका चरणचिह्न मुशोभित  
 है, जो शोभाशाली हैं, जिनके पीत वस्त्र हैं, कमल-जैसे नेत्र हैं, जो सदा  
 प्रसन्न हैं, जिनके करकमलोंमें धनुष और बाण हैं, जो वानरोंकी सेनासे  
 घिरे हुए और श्रीलक्ष्मणजीसे सेवित हैं; उन परमस्तुत्य पुष्पकारुढ, जानकी-  
 नाथ रघुनाथजीको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे शरणागतरक्षक महापुरुष !  
 आपके उन चरणारविन्दोंको नमस्कार है, जो सदा ध्यान करनेके योग्य,  
 अनिष्ट दूर करनेवाले एवं इच्छित फलदायक हैं, तीर्थोंके आधारस्वरूप  
 हैं, शिव-ब्रह्मादिसे वन्दित हैं, शरणागतबत्सल हैं, अपने दासोंका  
 दुःख दूर करनेवाले तथा संसारसागरके लिये नौकारूप हैं ॥ २३ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरोप्सितराज्यलक्ष्मीं  
 धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।  
 मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधाव-  
 द्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२४॥  
 ( भाग० ११।५।३४ )

पेयं पेयं श्रवणपुटकं रामनामाभिरामं  
 ध्येयं ध्येयं मनमि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।  
 जल्पजल्पन प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले  
 वीथ्यां वीथ्यामट्टति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी २५  
 ( स्कन्दपुराणे काशीखण्डे )

इदं शरीरं शतसन्धिज्वरं पतत्पद्मं परिणामि पेशलम् ।  
 किर्मापथः क्लिश्यमि मूढ दुर्मते निरामयं रामरमायनं पित् ॥२६॥  
 फल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां  
 पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रथितस्य ।

हे कामोत्तम महापुरुष ! मैं आनन्द उन चरणार्चनश्रीका नमस्कार करता हूँ, जो दुस्तर और देवताओंद्वारा बन्धित राजसन्धीकी पिताकी आज्ञामें लौहकर बनबो सके गये और शिवा सीताद्वारा इन्धित मायामृगके पीठे दीड़े ॥ २४ ॥ जानीमैं महा मन्त्रार राम-नामका भक्षण करो और मनमें महा तारक मन्त्रका ध्यान करो, इस प्रकार प्राकृतशरीरके विनाशकामें प्र-वेक श्री पुरुषके नाममें करने हुए, कोई काशी-निवासी जटाधारी (जट्टर) यहाँकी काशी-जन्मीके चकर लगा रहा है ॥ २५ ॥ वह मेकही लक्ष्मणमें जर्बगिन, परेषामी और कोमल देह अवरन मह हो करण, पित दे नूह ! हे दुर्द्वे ! औपधियोंके पकड़में क्यों पड़ा है ! निगमन राम रणावनका ही पानकर ॥ २६ ॥ जो कायालीला निधान है, बन्धितकी मदन करनेवाला है, पावनकी भी पावन बनानेवाला है, परम्बरकी प्राणिकेहिसे प्रकृतन करनेवाले सुदुष्ट पुरस्कीका पाथेय है,

विभ्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां  
 चीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥२७॥†  
 अहल्या पापाणः प्रकृतिपशुरासीन् कविचमू-  
 गुहोऽभूच्चाण्डालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।  
 अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तत्रार्चादिकरणे  
 क्रियाभिश्चाण्डालो रघुवर न मामुद्धरसि किम् ॥२८॥\*  
 नदीं तरामो वसुधां हरामो गोभिश्चरामः सुपथं सरामः ।  
 इति ब्रुवन्तः खलु रामनाम मुहुर्मुहुर्मुक्तिपदं प्रयामः ॥२९॥  
 वामे भागे ज्वनकतनया राजते यस्य नित्यं  
 भ्रातृप्रेमप्रवणहृदयो लक्ष्मणो दक्षिणे च ।

कवियोंकी याणीका जो एकमात्र विभ्रामस्थान और सत्पुरुषोंका  
 जीवनस्वरूप है; ऐसा धर्मवृक्षका बीजरूप राम-नाम आपके ऐश्वर्यका  
 साधक हो ॥ २७ ॥ हे राम! अहल्या पापाण थी, वानरसेना स्वभावसे ही पशु  
 थी और गुह चाण्डाल था; पर आपने इन तीनोंको ही अपने परमधामकी  
 प्राप्ति कराई; मैं भी अपने चित्तसे तो पापाण हूँ, आपकी पूजा-अर्चा आदि  
 करनेमें पशु हूँ और अपने कर्मोंसे चाण्डाल हूँ, तो भी हे रघुवर! आप मेरा  
 उद्धार क्यों नहीं करते? ॥ २८ ॥ ( अरण्यवासियोंने कहा- ) नदीं तरामः  
 ( हम नदी पार करते हैं ), वसुधां हरामः ( पृथ्वी जोतते हैं ), गोभिश्चरामः  
 ( गौओंके साथ चलते हैं ), सुपथं सरामः ( सुन्दर मार्गसे जाते हैं ), इस प्रकार  
 बार-बार राम-नाम लेते हुए हम मुक्तिपदपर पहुँच जाते हैं ॥ २९ ॥ जिनके  
 वाम भागमें नित्य श्रीजानकीजी विराजती हैं, दाएँ भागमें, जिनका हृदय  
 भ्रातृ-प्रेममें सना हुआ है वे, श्रीलक्ष्मणजी सुसोभित हैं और जिनके

† ईश्वरपुरिसाधिनः 'भवभूतेः' इति केचित् । \* ( रहीमकवेः )

पादाम्भोजे पवनतनयः श्रीसुखे बद्धनेत्रः  
 साक्षाद्बद्धा प्रणतवरदं रामचन्द्रं भजे तम् ॥३०॥\*  
 आर्दा रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं  
 वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।  
 बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं  
 पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहिननं चैतद्वि रामायणम् ॥३१॥†  
 कदा वा साकेते विमलसरयूतीरपुलिने  
 चरन्तं श्रीरामं जनकतनयालक्ष्मणयुतम् ।  
 अये राम स्वामिजनकतनयावल्लभ विभो  
 प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेप्यामि दिवसान् ॥३२॥

रणकुमलोंके पास पवनपुत्र श्रीहनुमान्जी भीनुरामें एकटक दृष्टि लगाये हुए बैठे हैं; उन मूर्तिमान् ब्रह्म, भक्तवरदायक रघुनायककी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३० ॥ प्रथम श्रीरामचन्द्रजीका तपोवनादिमें जाना, फिर कनक-पुत्र मारीचका मारा जाना, लटुपरान्त सीताजीका हरण, जटायुका मरण, सुग्रीवसे बार्ताव्याप, बालीका वध, समुद्रोल्लङ्घन, लङ्काका दाह और उसके पश्चात् रावण कुम्भकरणादिका मारा जाना—यस, इतनी ही रामायण है ॥ ३१ ॥ साकेतलोक ( अयोध्या ) में सरयूके किनारे कमनीय वृक्षपर, भीजानकी और लक्ष्मणजीसहित टहलते हुए भगवान् श्रीरामसे 'हे राम ! हे स्वामिन् ! हे वैदेहीवल्लभ ! हे विभो ! प्रसन्न होकर'—देना कहते हुए निमिषकी तरह दिनोंको कब बितानेका ! ॥ ३२ ॥

\* श्रीसूर्यचन्द्रस्योद्घटमाणरणः । † श्रीनरसिंहेश्वर मूर्त्तरामायणे । अथ 'दिलो करोवाराणम्', 'बालीनिग्रहणम्' 'वीररावण कसे कसे एतुवनेश्वैरद्वि रामायणम्' इति पुण्यछान्दरे पाठभेदाः ।



श्रीसीतासूक्तिः

प्यराशिरिव मैधिलप्रभो रामलोचनचकोरचन्द्रिका ।  
 पिताचिरिव रक्षसां सदा जानकी विजयतां यशोधना ॥३७॥  
 ( पाण्डेयरामनारायणदत्तशास्त्रिनः )

श्रीहनुमत्सूक्तिः

तीर्त्वा क्षारपयोनिधिं क्षणमथो गत्वा श्रियः सन्निधौ  
 दत्त्वा राघवमुद्रिकामपशुचं कृत्वा प्रविश्याटवीम् ।  
 मङ्क्त्वाऽशेषतश्चिह्नित्य बहुशो रक्षोगणांस्तत्पुरीं  
 दग्ध्वादाय मणिं रघूत्तममगाद्वीरो हनुमान्कपिः ॥३८॥\*  
 अतुलितबलधाम स्वर्णशैलाभदेहं  
 दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।  
 सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं  
 रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥३९॥†

मिथिलेशके पुण्य-पुञ्ज-सी, श्रीरामचन्द्रजीके लोचन-चकोरोंको आनन्द देनेवाली चन्द्रिका-सी और राक्षसोंके लिये जरती हुई आगकी ब्याला-सी, यशस्विनी जानकीजीकी जप हो ॥ ३७ ॥

वीर श्रेष्ठ कपिवर हनुमानजी क्षणमात्रमें ही समुद्रको लौंघ, सीताजीके पास पहुँच, उन्हें भौरामकी मुद्रिका अर्पण करके दोकरहित कर, फिर अशोकवनमें घुसकर सभी वृक्षोंको तोड़, बहुतसे राक्षसोंको मार, तथा उनकी पुरी लट्काके जला सीताजीकी चूड़ामणि ले श्रीरामजीकी सेवामें आ पहुँचे ॥ ३८ ॥ जो अतुलित बलके आगार, सुमेरुके समान शरीरवाले, दैत्यकुलत्प वनके लिये अग्निके समान, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सर्वगुणसम्पन्न, वानरोंके अधीश्वर और भौरामनायकोंके श्रेष्ठ दूत हैं, उन धीमवननन्दनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥





कारुण्यमुग्रकमलं करुणारगुरूपरितापाङ्गम् ।  
 शिवनमाशामे मञ्जलमहिमानमञ्जनाभाग्यम् ॥४४॥७  
 नवरवेरिगराविममन्नुन्नदलरिपुल्लोचनोदारम् ।  
 युगलमनिरुदितं विम्बज्वलितोष्मेकमवलम्बे ॥४५॥७  
 कृत्तर्मातारिः प्रकर्षाकृत्तरामवमपम्फलिः ।  
 सिद्धसुखकीर्तिः पुरनो मय भातु हनुमतो मूर्तिः ४६०  
 रनिकराप्यथं दानवकुलकुमुदरविकरमदयम् ।  
 रजनावनदीर्घं पवनतपःपाकपुञ्जमद्राघम् ॥४७॥७  
 न्यवनगुणम्य म्नीघ्रं याः पश्यति पञ्चरमाग्यम् ।  
 मिह निमित्तान्मोषान्मुक्त्वा धीराममक्तिभाग्यवति ७

: ४६ ॥ ४६ ॥ दान रवेरे मञ्जल शिवरा सुन्दरमय मञ्ज  
 लके मन्मते शिवके लोचन-के भवे हनु दे, शिवकी  
 मीरुषिणी दे, जोः काकराके लोचन दे, केशवराज  
 । हनुमानकीये मुले बही मन्मते दे ॥ ४४ ॥ जोः कामरेव-  
 कीन भूके है, शिवके मज्जलके मञ्जल शिवान  
 लोचन है, शिवरा हनुके मञ्जल पण्ट मौर शिवराके  
 ल भोग दे, या पवनके लोचन है, दशमय उन  
 ही दे दान लेग है ॥ ४५ ॥ शिवीके लोचनके का  
 दे लोचनके मीरुषिणी के रवेरे मूर्तिकी पण्ट शिव,  
 लकी कीर्तिः सिद्धाके मीरुषिणी दे हनुमानकीकी मूर्ति दे  
 हो ॥ ४६ ॥ जोः रजनाके लोचन है, दानवकुलकी  
 मुदकी विरलीके मञ्जल है, शिवीके लोचनकीकी मन्मते  
 है, पवनके पनी मञ्जलके लोचनके उर हनुमानकीका  
 या ॥ ४७ ॥ पण्ट पुण्ट हनुमानकीके हनु पञ्चरमाग्य  
 पण्ट कीन दे हनु लोचन दे शिव मञ्जल मञ्जल लोचनकी  
 म लोचनका मन्मते देग ॥ ४८ ॥

१. मञ्जलमुग्रकमलं करुणारगुरूपरितापाङ्गम् ।



ॐ  
पंचमोऽष्टास

-१-१०-६-

श्रीकृष्णभूषितः

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव ।  
एको मन्त्रन्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥१॥

लावण्यामृतान्यां मधुरिमलहरीपरीपाकः ।

कारुण्यानां हृदये कपटकिशोरः परिस्फुरतु ॥ २ ॥

( भीमशानन्दस्य पञ्चावलीसंग्रहात् )

श्रवसोः कुवलयमश्वोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।

वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥३॥†

शास्त्र एक गीता ही है, जिसका कि देवकीनन्दन श्रीकृष्णने गाया । देव भी एक देवकीमुत्र कृष्ण ही हैं, मन्त्र भी वस उनके नाम ही हैं और कर्म भी केवल उनकी सेवा ही है ॥ १ ॥ लावण्यमय अमृतकी बाढ़में माधुर्यकी लहरोंसे प्रकट हुआ मायाकिशोर कृष्ण सकलण पुरुषोंके हृदयमें प्रकाशमान हो ॥२॥ जो वृन्दावनकी रमणियोंके कानोंका नील-कमल, आँखोंका अञ्जन, वधःस्यन्दके लिये शन्द्रनील मणिका बना हुआ हार एवं समस्त आभूषणरूप है उस भगवान्कृष्णकी बलिहारी है ॥३॥

• ( श्रीरामानुजाचार्यस्य ) † ( कविरत्नपूरस्य ) ।





नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः

मृषु गत्रि कौतुकमकं नन्दनिकेनाङ्गणे मया दृष्टम् ।  
गोपूनिधुमराहो नृपति वेदान्तमिदान्तः ॥ ४ ॥

प्रणयपदुपिपामारीटिनानथ प्राणान्  
छगमपि कथयाहं हा कथं मान्त्वयानि ।

भ्रमहनित्रविहृष्टाः कण्ठमुक्कण्ठयाता  
ननु तत्र सुखमिन्दुं द्रष्टुमेते त्वरन्ति ॥ ५ ॥

( वाग्देवगमनभाष्यदण्डधियः )

गोपवान्शुन्दगोगशाह्नं कन्तानिपि  
राममण्डलीविहारकारिकामसुन्दरम् ।

पद्योनिप्रहृष्टादिदेवहृन्दबन्दिनं  
मौल्यगिवाहकान्तिगोहृष्टप्रमाधवे ॥ ६ ॥

( श्रीशुभाकर )

श्री गणेशाय नमः । सुख, मीमे नन्दनिकेनाङ्गणे मया दृष्टम् इति  
कौतुक देखा है। श्री कृष्णान् वेदान्तमिदान्त ( इति ) गोपूनिधे  
गरे हृष्ट इतिमे मया मया है । ॥ ४ ॥ श्री कृष्णान् सुन्दर ' देवकी  
हृष्ट विहृष्टादि विहृष्ट हृष्ट इति कन्तानि, प्राणिको, कन्तान् श्री  
देवे कन्तान् है । अथ नो ( कन्तान् कन्तान् ) कन्तान् देव  
कन्तान् हरे कन्तान् हो कन्तान् है कन्तान् ही श्री, के उच्यतेके  
श्री कन्तान् कन्तान् श्री है श्री कन्तान् कन्तान्-हरे  
देवकीके निवे कन्तान् कन्तान्-हरे उच्यते ही श्री है ॥ ५ ॥  
श्री कृष्णान् कन्तान्-हरे कन्तान् है, कन्तान्-हरे कन्तान् है, कन्तान्-हरे  
कन्तान् कन्तान्-हरे श्री कन्तान्-हरे श्री कन्तान् कृष्ण है कन्तान्  
कन्तान्-हरे श्री कन्तान्-हरे कन्तान्-हरे श्री है श्री कन्तान्-हरे  
कन्तान् कन्तान्-हरे कन्तान्-हरे कन्तान्-हरे कन्तान्-हरे श्री है ॥ ६ ॥

किं पिबन्ति मम पदरसं मुनयः सुधां विहाय ।  
 ज्ञातुमिदं शालो हरिः स्वपदं मुखे निनाय ॥ ७ ॥ (श्रीविप्रचन्द्रस्य)  
 यमुनापुलिने समुत्क्षिपन् नटवेपः कुसुमस्य कन्दुकम् ।  
 न पुनः सखि लोकयिष्यते कपटाभीरकिशोरचन्द्रमाः ॥ (शङ्करकवेः)  
 ब्रह्मन्नत्र पुरद्विपा सह पुरः पीठे निषीद क्षणं  
 तूष्णीं तिष्ठ सुरेन्द्र चाडुभिरलं वारीश दूरीभव ।  
 एते द्वारि मुहुः कथं सुरगणाः कुर्वन्ति कोलाहलं  
 हन्त द्वारवतीपतेरवसरो नाद्यापि निष्पद्यते ॥ ९ ॥  
 ये मुक्तावपि निःस्पृहाः प्रतिपदप्रोन्मीलदानन्ददां  
 यामास्थाय समस्तमस्तकमणिं कुर्वन्ति यं स्वे वशे ।

मुनिजन अमृतको भी छोड़कर मेरे चरणोंका रस बार-बार क्यों पीते हैं !—यह जाननेके लिये ही बालगोपालने अपने चरणके अँगूठेको अपने मुखमें दे रक्खा था ॥ ७ ॥ हाय ! सखि, यमुना-किनारे फूलोंकी गोंदको उछालते हुए नटवररूपधारी मायामय गोपकिशोर कृष्णचन्द्रकी यह हाँकी अब फिर देखनेको न मिलेगी ॥ ८ ॥ [ कृष्ण-मुद्रामाके प्रेमालापके समय द्वारपर उपस्थित दशानामिलापी देवगणोंसे द्वारपाल बोले—] 'हे ब्रह्मन् ! आप महादेवजीके सहित कुछ देर सामनेकी चौकीपर बैठें, हे इन्द्र ! चुप रहो, घायलूनी करना ध्यर्ष है, हे वरुण ! दूर हटो, ये देवगण द्वारपर क्यों कोलाहल कर रहे हैं !' [ तब देवगण उकनाकर बोले—] 'आः, क्या करें, द्वारकानापको धर्मीतक मिलनेकी फुरसत ही नहीं हुई' ॥ ९ ॥ मुक्तिके विषयमें भी निःस्पृह रहनेवाले जो भक्त, पद-पदपर आनन्द देनेवाली, जिस भक्तिका आभय लेकर, जिन सबके चूहामणि भक्तप्रिय भीष्मिको अपने वशमें कर लेते हैं; उन भक्त, भक्ति और भीमगवान्की मैं निरन्तर वन्दना और अभ्यर्थना करता

तान् मत्कानपि तां च मक्तिमपि तं मत्प्रियं श्रीहरिं  
 वन्दे मन्ततमययेऽनुदियमं नित्यं प्ररप्यं भजे ॥१०॥

( विष्णुपुरीश्रामिनो मक्तिरजायस्याष्टीकायाम् )

हे कृष्ण कृष्ण ममवन् मम चित्तभृङ्गो

यायात् कदापि भवतश्चरणारविन्दे ।

देहादिपुष्परितः कृपया तदानीं

वीक्ष्यस्य वामनयनेन निजं पदाब्जम् ॥११॥

पथि धावन्निद पतितो रोदिप्यम्याकरायलम्बाय ।

पतितोद्धारणमये किञ्च सरणि त्वगात्मानम् ॥१२॥

विदाय पैगुपरनं मुनीधरा ममाहिराजीवरमं पियन्ति किम् ।

इति स्रपादाभुजपानकीतुकी म गांपयालः थियमातनोतु नः १३

हे कृष्ण ममदा वारण दनेवाले उन्ही श्रीहरिं चो प्रार्थितेन भजता हूं ॥ १० ॥

हे ममवन् कृष्ण ! यदि कदापि मेम मनस्वी भ्रमर दहादि पुष्पो हो लाइ

कर भावके परलक्ष्मणे जाय, तो उत ममव कृपया अपनी बायी ओंभले

आने परलक्ष्मणको ओर लनिक देन लेना [ वामनेच पदाब्जम्

हे, हमने उमके हाथ परलक्ष्मण मंडित हो जायता थीर मन-

धमर वरों ही पैगु पर जायता ] ॥ ११ ॥ हे कृष्ण ! ममने

रोदते ममव वरों मिम वदे हो मैराव हावका मदाय लेनेके निचे

ही गई हो ! क्या तुम वीगीबा उदाय वरनेके ममव [ उनके करण

ममदनको देलकर ] अपनी इत हाथको दाद नही करत [ जैसे तुम

आके मालवा मदाय वदने ही बैने ही तुमने वंदित जी तुमदाय मदाय

जाते है ] ॥ १२ ॥ मुनीधराय अहंमणको मदायकर मेरे परलक्ष्म-

णिकपरमदायका पान करो वने गते है—पर मोबार कीदुखका

अपने ही परलक्ष्मणके अंदुटेका पान करत तुम, पर ममदाय

अयि दीनदयार्द्रं नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे ।  
हृदयं त्वदलोककातरं दपित भ्राम्यति किं करोम्यहम् ॥१४॥  
( माघवेन्द्रपुरिस्वामिनः )

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरोऽपि मे हरां  
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम् ।  
वंशीविलासाननलोकनं विना  
विभर्मि यत्प्राणपतङ्गकान् वृथा ॥१५॥\*  
न जाने सम्मुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।  
प्रयान्ति मम गात्राणि श्रोत्रतां किमु नेत्रताम् ॥१६॥\*  
प्रिय इति गोपवधूमिः शिशुरिति वृद्धैरधीश इति देवैः ।  
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभिर्देवः ॥१७॥  
नवनीरदसुन्दरनीलवपुं शितिकण्ठशिखण्डितमालशुभम् ।

हमारा कल्याण करे ॥ १३ ॥ हे दीनदयार्द्रं प्रभो ! हे मथुरानाथ ! आपका दर्शन कब होगा ? प्यारे ! आपसे दरो विना मेरे कातर हृदयमें चकर आ रहा है, उफ ! अब मैं क्या करूँ ? ॥ १४ ॥ वंशीविलसित मुखारविन्दके दर्शन विना भी यदि मैं इन प्राणपत्तिकाओंको व्यर्थ धारण करता हूँ तो यह सत्य है कि मुझमें न तो श्रीहरिके प्रति थोड़ा भी प्रेम है और न सनका कुछ भय ही है । अपना सौभाग्य प्रकट करनेके लिये ही मैं उनके लिये रोता-चिह्नाता हूँ ॥ १५ ॥ जब प्यारे मेरे सामने आकर अपनी प्यारी बातें सुनाते हैं तो मैं नहीं जानता कि मेरा शरीर श्रोत्ररूप हो जाता है या नेत्ररूप ! ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णको गोपाङ्गनाओंने प्रिय, वृद्धोंने बालक, देवताओंने स्वामी, भक्तोंने नारायण और योगियोंने ब्रह्म समझा था ॥ १७ ॥ जिनका शरीर नीले मेघके समान अतिसुन्दर नीलवर्ण है । मस्तक मयूरपिच्छसे

कमलाश्रितस्रजजननेत्रपुर्ण तुलसीदलदामसुगन्धवपुम् ।  
जगदादिगुरुं ब्रजराजसुतं प्रणमामि निरन्तरश्रीरमणम् ॥१८॥  
नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन ।  
आतपतापितभूर्मा माधव मा धाव मा धाव ॥१९॥  
पादाश्रितानां च समन्तचारं श्रीराधिकाया हृदयस्य चौरम् ।  
नीलाम्बुजश्यामलकान्तिचारं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि ॥२०॥  
बुन्दारप्ये तपनतनयातीरवानीरकुञ्जे  
गुञ्जन्मञ्जुप्रमरपटलीकाकलीकेलिभाञ्जि ।  
आभीरीणां मधुरसुरलीनादसम्भोहितानां  
मप्ये प्रीटप्रवतु सततं नन्दगोपालबालः ॥२१॥  
षनककमलमालः केतिकंमादिकालः  
समरधुविकरालः प्रेमरापीमरालः ।

गुणोक्ति है, जेव गुणन कमलबोधये बेटे हुए लखनके समान है तथा शरीर गुणसीदलकी मालाये सुगन्धित है, जगत्के आदिगुरुजन रामरमण भीमदहनदहनको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ यदि तूने नवनीत में लिखा तो ये ही लिखा, हमने क्या हुआ । परन्तु माधव । अब इस गुरुने लगी हुई भूमिपर तो तू मन भास । मन भास ॥ ॥ १९ ॥ जो अपने चरणोंके आश्रित जनका लक्ष्मण, भीर्गावहाजीका निष्ठा और श्रीकृष्णकी वचन आभाको चरानेवाण है, उस श्रीराधिकाय पुरुषको नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ श्रीकृष्णराजनमें मनोहार गुहाय करते हुए मधुरसुरकी मधुर मरालीमें गुहायमान समुद्रके वेव-निबुद्धये गुणसीदी छोटी लानने गुण हुए गोविंदके बीचमें गेलेने हुए मन्दसोच-बुमार लंबता गला बरें ॥ २१ ॥ जो गुणमंदर कमली माला धारण करते हैं, वेही और मन भासके बाव है, लक्ष्मणमें अंत



कनकहविद्रुहलप्राख्यर्हाविनूलः

सकलनिगमसारः कोऽपि लीलावतारः ।

त्रिभुवनसुखकारी शैलधारी मुरारिः

परिकलितरयाज्ञो महलं नस्तनोतु ॥३१॥

कदा वृन्दारण्ये विमलपमुनावीरपुलिने

चरन्तं गोविन्दं हलधरमुदामादिसहितम् ।

अपे कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीवादन विभो

प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिपमिष नेप्यामि दिवसान् ॥३२॥

(कृष्णन्दरिस्तोत्रात्)

नन्दनन्दनपदारविन्दयोः स्यन्दमानमकरन्दविन्दवः ।

सिन्यवः परमसौख्यसम्पदां नन्दयन्तु हृदयं ममानिशम् ॥३३॥

(कविराजमिथस्य पद्यावलीसंग्रहात्)

तत्केशोरं तच्च वक्त्रारविन्दं तत्कारुण्यं ते च लीलाकटाक्षाः ।

तत्सौन्दर्यं सा च मन्दसितश्रीः सत्यं सत्यं दुर्लभं देवतेषु ॥३४॥

(लीलाशुकस्य १ । ५५)

शुनहरे रङ्गके वस्त्र धारण करनेवाला, मनोहर भोर-मुकुटधारी, सकल शास्त्रोंका सारभूत, कोई लीलावतारी त्रिभुवनसुखदाता गिरिवरधारी चक्रभाषि मुरारी हमारा महल करे ॥ ३१ ॥ वृन्दावनमें, यमुनाजीके पावन तटपर भैया बलराम और मुदामादि सखाओंके साथ घूमते हुए गोविन्दसे 'हे कृष्ण! हे स्वामिन्! हे मधुर मुरली बजानेवाले! हे विभो! प्रसन्न होइये'- ऐसा कहते हुए कब अपने दिनोंको पलक मारनेके समान व्यतीत करूँगा ॥ ३२ ॥ प्यारे नन्ददुलारेके चरण-कमलोंसे चूती हुई मकरन्द-विन्दुएँ मानो परम सुख-सम्पदाओंकी समुद्र ही हैं, ये सदा मेरे हृदयको आनन्दित करें ॥ ३३ ॥ यह किशोरावस्था, यह मुखारविन्द, यह दयालुता, ये लीला-कटाक्ष, यह सौन्दर्य और यह मन्द शुकानकी शोभा! सचमुच, ये सब देवताओंमें भी दुर्लभ हैं ॥ ३४ ॥

हस्तमृत्क्षिप्य यातोऽसि पलात् कृष्ण किमद्भुतम् ।

हृदयाद्यदि निर्घासि पौरुषं गणयामि ते ॥३५॥

( श्रीशतसुख्य ३ / १६ )

गोपाल इति मत्वा त्वां प्रचुरक्षीरवाञ्छया ।

धिनो मातुः स्तनक्षीरमपि लब्धुं न शक्नुयाम् ॥३६॥

क्षीरमारमपहत्य शङ्कया स्वीकृतं यदि पलायनं स्वया ।

मानसे मम पनान्धताममे नन्दनन्दन कथं न लीयसे ॥३७॥

स्नाकरस्तत्र गृहं गृहिणी च पथा किं देयमग्नि मवते जगदीश्वराय

आभीरवामनयनाहृतमानगाय दक्षं मनो यदुपते कृपया गृहाण ॥

( शान्त्यानार्थाभ्युत्पत्तीमन्त्रः )

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका

प्योमाकाशखग्याम्बरान्धिमवस्त्यस्त्रीतयेऽव्यावधि ।

हे कृष्ण ! बन्धुर्वक हाथ गिटककर धरते गये, एतमे क्या बड़ी बात हुई ।  
 आरबी बीरता तो मैं तर मानूँगा जब मरे हृदयमेंसे धरने आरते ॥३५॥ तुम  
 गोपाल हो—येना जानकर मैंने गुरु दूध पीनेकी इच्छामें तुम्हारा आश्रय  
 लिया था, किन्तु अब तो मुझे मायाके मनीषा भी दूध मिष्टाना  
 अमान्य हो गया ! ( अर्थात् मैं दुष्ट हो गया ) ॥ ३६ ॥ [ मरामें  
 जिये-जिये ] जालन लेकर हरके मारे यदि आरते भागना ही स्वीकार  
 किया है तो हे नन्दनन्दन ! मरान् अन्यकारणसे मेरे मनकी बोटरीमें ही  
 बधी नदी भा लिये ! ॥ ३७ ॥ स्नाकर ( क्षीरमसृष्ट ) तो आरवा पर  
 है, मायात् स्त्रीकी आरबी स्त्री है, आरवच बटरी पर है; भाग, भागको  
 क्या दिया जाय ! किन्तु, हे बहूनाथ ! गोविंदोंने आरते नेचकराउठने  
 भागवा मय हा लिये है; एतन्ने भवना मय भागको अर्पण काय है; बहूना  
 एते जल्प करिजे ॥ ३८ ॥ हे भगवन् श्रीकृष्ण ! आरवा नटकी मूर्ति  
 को भीरवी रूप ( दोनिकीकी ) लीकार मैंने आरके लयने की है, यदि

प्रीतो यद्यसि ताः समीक्ष्य भगवन् तद् वाञ्छितं देहि मे  
 नो चेद्भूदि कदापि भानय पुनर्माभीदृशा भूमिकाम् ॥३९॥  
 ( खानखानाभीअन्दुलरहीमकवेः )

शरीरं सुरूपं ततो वै कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।  
 यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्  
 न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ न कान्तामुखे नैव विचेष्टु चित्तम्  
 यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्  
 पङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।  
 यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्  
 रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारेः  
 पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य ।

उनको देखकर आप प्रसन्न हैं तो मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिये,  
 और यदि प्रसन्न नहीं हैं तो साफ कह दीजिये कि अब फिर ऐसी कोई  
 लीला मेरे सामने मत करना \* ॥ ३९ ॥ सुन्दर शरीर हो, सुरूपा  
 स्त्री हो, सुन्दर एवं विचित्र यश हो तथा मुमेरु-तुल्य धन हो, किन्तु  
 यदि यशोदानन्दनमें मन नहीं लगा तो उन सर्वोंसे क्या लाभ है ! ॥ ४० ॥  
 भोगमें, योगमें, घोड़ोंमें, कामिनीके वदनमें अथवा धनमें, कहीं भी  
 चित्तकी आसक्ति भले ही न हो किन्तु यदि यशोदानन्दनमें मन नहीं  
 लगा तो उससे ( भी ) क्या लाभ है ! ॥ ४१ ॥ छहों अङ्गोंसहित वेद और  
 शास्त्रोंको पढ़ा हो, सुन्दर गद्य और पद्यमय काव्यरचना करता हो,  
 किन्तु यदि यशोदानन्दनमें मन नहीं लगा तो उन सभीसे क्या लाभ  
 है ! ॥ ४२ ॥ अरे चित्त ! तू निरन्तर भीकृष्णके चरणोंका स्मरण कर,

\* इस प्रार्थनामें दोनों तरहसे लाभ ही है, यदि मनोवाञ्छित वर  
 मिल गया तो भी मुक्ति होगी, और चौरासी लाख योनिदोकी लीला न करनेका  
 आदेश होगा तो भी मुक्ति ही है ।

पुत्राः कलत्रमितरे न हि ते सहायाः

सर्वे विलोक्य सखे मृगहृष्णिकामम् ॥४३॥

मन्दनन्दनपदारविन्दयोर्मन्दमन्दमनुजायतां मनः ।

मुञ्च मुञ्च विषयेषु वासनाः किञ्च किञ्च तदुदीर्यतां वचः ॥४४॥

अहङ्कार कापि प्रज शृजिन हे मा त्वमिह भू-

रभूमिर्दर्पणामहमपसर त्वं पिशुन हे ।

अये क्रोध स्थानान्तरमनुसरानन्यमनसां

त्रिलोकीनाथो नो हृदि वसतु देवो हरिरसौ ॥४५॥ ( धान्तिघतकस्य )

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते

नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत् ।

इत्यालोच्य मुद्गुर्मुद्गुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं

स्वत्पादाभ्युज्जसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥ ( भीषाणक्यस्य )

जिसेसे कि नू भवसागरके पार जा सकेगा । पुत्र, कलत्र, तथा अन्य कोई भी  
तेरे सहायक नहीं हैं, हे मित्र ! इन सबको नू मृगहृष्णिकाके मुख्य समझ ॥४३॥

भीमन्दनन्दनके चरणारविन्दोंमें धीरे धीरे मनको लगा दे, और विषयोंमें  
वासनाका तुरन्त त्याग कर दे तथा बाणोंसे धीरे-धीरे उसी ( भगवन्नाम ही )

का उच्चारण कर ॥ ४४ ॥ हे अहङ्कार ! नू कहीं चला जा, अरे पाप !  
सुखदाय, अब नू यहाँ न रहना, अरे पिशुन ! ( कूटनीति ) नू भी नूर

हो; क्योंकि अब मैं अभिमानका पात्र न रहा, हे क्रोध ! नू भी यहाँसे  
अब धीरे धीरे अपना देण डाल, आइसे हम अनन्य वित्तकालोंके

हृदयमें से भगवान् त्रिलोकीनाथ हरि ही निष्काश करें ॥ ४५ ॥ यदि  
भगवान् हरिका नाम विश्वम्भर प्रसिद्ध है तो फिर मुझे अपने जीवनकी

बना चिन्ता है ! नहीं तो ( यदि ये विश्वका पालन न करते हों ) पिशुके  
धींकररण्याय साक्षात्कें मनोसे नूप बेने निकलता ! ऐसा धारंसार सोचकर

हे पशुपते ! हे लक्ष्मीपते ! केवल आपके चरण कमलके सेवकमें ही मैं

या चिन्ता द्युधि पुत्रप्रीतिभरणव्यापारसम्भाषणे  
 या चिन्ता धनधान्यभोगयशसां लाभे सदा जायते ।  
 सा चिन्ता यदि नन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्दं दृष्यं  
 का चिन्ता यमराजमीमगदनद्वारप्रयाणे प्रभो ॥४७॥  
 जीर्णा तरिः सरिदियं च गमीरनीरा  
 नफ्राहूला यद्वति वायुरनिप्रचण्डः ।  
 तार्याः स्त्रियश्च शिशवश्च तथैव वृद्धाः  
 तत्कर्णधारसुजयोर्बलमाश्रयामः ॥ ४८ ॥

सिन्धुर्विन्दुसदो प्रयच्छति न हि स्वैरी च धाराधरः  
 सङ्कल्पेन विना ददाति न कदाप्यल्पञ्च कल्पद्रुमः ।  
 स्वच्छन्दोऽपि विद्युः सुधावितरणे राश्रिन्दिवापेक्षते  
 दाता कोऽपि न दृश्यते विनियमं श्रीकृष्णचन्द्रं विना ॥४९॥  
 ( भीषणश्यामदासस्य )

निरन्तर अपना समय बिता रहा हूँ ॥४६॥ संसारमें पुत्र-प्रीतिके भरण-सोपण,  
 व्यापार और सातचीत करनेकी जितनी चिन्ता रहती है, तथा धन-  
 धान्य, भोग और यशकी प्राप्तिके लिये जितनी चिन्ता सर्वदा होती है;  
 उतनी चिन्ता यदि क्षणभर भी नन्दनन्दनके चरणारविन्दोके विषयमें  
 हो, तो हे प्रभो! फिर यमराजके भयानक घरके द्वारतक जानेकी चिन्ता ही  
 क्यों रहे ? ॥ ४७ ॥ हमारी नौका अति जीर्ण है, मकरादिसे परिपूर्ण यह  
 नदी बड़ी गम्भीर है और अति प्रचण्ड पवन चल रहा है; स्त्री, बालक और  
 वृद्ध सबको पार करना है; इसलिये हम उस कर्णधार कृष्णके सुजवलका  
 आश्रय ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥ समुद्र तो एक बूँद भी किसीको नहीं  
 देता, मेघ भी अपने मनका है, कल्पवृक्ष विना सङ्कल्पके किसीको थोड़ा-  
 सा भी कदापि नहीं देता, चन्द्रमा (दिनमें) भी अमृतदान करनेमें स्वच्छन्द  
 है तो भी उसको राश्रिकी अपेक्षा रहती है; श्रीकृष्णचन्द्रके विना अनियमित-  
 रूपसे देनेवाला तो और कोई भी नहीं दिखायी देता ॥ ४९ ॥

तत्प्रेमभावरसभाक्तिविलासनाम-

हारेषु चेत् खलु मनः किमु कामिनीभिः ।

तल्लोकनाथपदपङ्कजभूलिमिध-

लितं वपुः किमु वृथागुरुचन्दनाद्यैः ॥५०॥

(पञ्चपुराणपातालखण्डात् अ० ८१ । ६९ )

मृद्वीका रसिता सिता समश्रिता स्कीतं च पीतं पयः

स्वर्पात्रेण सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः स्वण्डितः ।

सत्यं मूढि मदीयजीव भवता भूयो भवे आम्यता

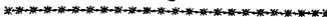
कृष्णोत्पथरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिद्व्यथितः ॥५१॥

( पण्डितराजब्रह्मसाम्प्रदायस्य—रामदाहाधरात् )

पूढानुम्बितचारुचन्द्रकचमत्कारग्रजभ्राजितं

दिव्यं मञ्जुमरन्दपङ्कजमुग्यभ्रनृत्यदिन्दीवरम् ।

भगवान्केप्रेमभाव, रस, भाक्ति, विलास और नाममात्राओंमें यदि मन लग रहा है तो फिर कामिनीयो ( के इन प्रेमादि भावों )से क्या प्रयोजन है ? उस लोकनाथकी पदपङ्कज-भूलिमें यदि शरीर भूषणित हो रहा है तो फिर स्वर्ण ही अगुरुचन्दनादिके सेवनमें क्या लाभ है ! ॥५०॥ हे मेरे जीव ! तुमने दाराका रसास्वादन किया, मिथी स्त्री और स्वादिष्ट दूध भी पीया, स्वर्णमें जानेपर तुमने अनेकों बार अमृतपान और रम्भाका अपहरण भी सुभन किया होगा. परन्तु सन्-सन््य बताओं, तुमने पुनः-पुनः मगारमें पृम्ने हुए, 'कृष्ण' नामके दो अक्षरोंमें जो माधुर्यका उद्गार है, देगा कहीं और भी देगा है ! ॥५१॥ जो शिरपर लगे हुए मुन्दर मोरपट्टकी चमक-कारा बदे हुए कामित-पुङ्गवे माणित हो रहे हैं, जिनके मधुर मकरन्दपूर्ण मुखपरचन्दर भङ्गुटीरूपी सुगम नीलकमल शृंग्य कर रहे हैं, जिनकी दिव्य



रज्यद्वेषुकमूलरोकविलसद्विम्बाधरींष्टं मुहुः  
श्रीवृन्दावनकुञ्जकेलिललितं राधाप्रियं प्रीणये ॥५२॥  
( गोस्वामिगोपालभट्टस्य कृष्णकर्णामृतटीकायाः )

वृन्दावृन्दमरन्दविन्दुनिचयस्पन्देन सन्दीपिता-  
द्गन्धाद्यस्य सनन्दनादिरमृतानन्देऽपि मन्दादरः ।  
मोक्षानन्दयुनिन्दिसेवनसुखस्वाच्छन्द्यसंदोहदं  
तद्वन्देमहि नन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्दं मुहुः ॥५३॥  
( श्रीहरिमोहनप्रामाणिकस्य कोकिलदूतात् )

वन्दे नवधनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।  
सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥५४॥  
( श्रीनारदपाञ्चरात्रे कृष्णस्तोत्रात् )

फाननं फ नयनं फ नासिका फ श्रुतिः फ च शिखेति केलितः ।  
तत्र तत्र निहिताङ्गुलीदलो वल्लवीकुलमनन्दयत्प्रभुः ॥५५॥  
( गोस्वामिरघुनाथदासस्य पञ्चावलीसंग्रहात् )

प्रभा है, जिनका विम्बाधर बंशीके छिद्रके सम्पर्कसे शोभित एवं रागयुक्त हो रहा है, ऐसे वृन्दावनके निकुञ्जोंमें लीला करते हुए सुन्दर राधा-वल्लभकी आराधना करता हूँ ॥५२॥ जिन चरणोंकी तुलसीमञ्जरीके मकरन्द-विन्दुओंकी धारासे फैलती हुई सुगन्ध पाकर सनकादिमुनि ब्रह्मानन्दको भी तुच्छ-सा समझने लगे, जो मोक्षसुखको भी तिरस्कृत करनेवाले अपने सेवन-जन्य आनन्द-सन्दोहकी स्वच्छन्दता प्रदान करता है, उन भीनन्दनन्दनके दोनों चरणारविन्दोंकी बारंबार वन्दना करता हूँ ॥ ५३ ॥ नवीन मेघके सदृश श्याम, रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाले, आनन्दमय, अर्थात् सुन्दर, शुद्धस्वरूप तथा प्रकृतिमें अतीत श्रीकृष्णचन्द्रकी वन्दना करता हूँ ॥५४॥ [ यादवगोपालसे जब गोपियों पूछती थीं— ] बताओ तो कृष्ण ! तुम्हारा मुँह कहाँ है ! आँत कहाँ है ! नाक और छोटी कहाँ है ! तब इसके उत्तरमें लीलापूर्वक उन-उन अङ्गोंपर अँगुलियों रखकर भगवान्

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां  
सकलनिगमबह्वीसत्फलं चित्सवरूपम् ।  
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा  
शृगुवर नरमात्रं तारयेत्कृष्णनाम ॥५६॥

(स्कन्दपुराणात्)

गोविन्दं गोकुलानन्दं गोपालं गोपबल्लभम् ।  
गोवर्द्धनधरं धीरं तं वन्दे गोमतीप्रियम् ॥५७॥

(बलिराजेन्द्रस्य हरिनाममालायाः)

हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते  
हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव ।  
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां  
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥५८॥

(रामानुजस्तोत्रात्)

इमां घनश्रेणिमिवोन्मुखः शिखी चकोरकः कातिकचन्द्रिकामिव  
रथाङ्गनामा तरणेरिव त्विषं कृष्णच्छविं वीक्ष्य न कः प्रमोदते ५९

गोपियोंकी आनन्दित करते थे ॥५५॥ हे शौनक ! मधुरसे भी मधुर, मङ्गलों-  
का भी मङ्गलरूप, समस्त श्रुतिलताका फलस्वरूप, चिन्मय यह कृष्णनाम  
भद्रा अथवा अनादरसे एक बार भी उच्चारण करनेपर मनुष्यमात्रका उद्धार  
कर देता है ॥५६॥ गोकुलके आनन्दस्वरूप, गौओंके पालक, गोपोंके प्रिय,  
गोवर्द्धनधारी और गोमती-प्रिय धीर श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ ॥५७॥  
हे गौओंका पालन करनेवाले, हे दयासागर, हे लक्ष्मीपते, हे कंस-विनाशक, हे  
गजेन्द्रके लिये परमकरुणामय, हे मायापते, हे बलरामानुज, हे त्रैलोक्यगुरो,  
हे कमलनयन, हे गोपियोंके स्वामी ! आप मेरी रक्षा करें; मैं आपके सिवा  
दूसरेको नहीं जानता ॥ ५८ ॥ मेघपंक्तियोंको देखकर जिस प्रकार मौर  
नाच उठता है, शम्भु के चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाका दर्शनकर जिस प्रकार  
धर्षार तिल उठता है, सूर्य-किरणोंको देखकर चक्रवा जैसे हर्षित होता  
है; उसी प्रकार कौन इस कृष्णछविको देखकर हर्षित न होगा ! ॥ ५९ ॥



रे चेतः कथयामि ते दिगमिदं वृन्दावने चारुपद्  
 वृन्दं कौंगिगर्वा नवाम्बुदनिमो बन्धुर्न कार्पस्त्वया ।  
 गौन्दर्यामृतमुद्गिरश्चिरमितः मंमोक्ष मन्दस्मित-  
 रेण त्वां तव बह्वर्माभ विषयानानु क्षयं नेष्यति ॥६०॥  
 इन्दुं फेरविणीव फोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं  
 मेघं चानकमण्डलीव मधुपधेणीव पुष्पव्रजम् ।  
 माकन्दं पिकरुन्दरीव रमणीवात्मेश्वरं प्रीणितं  
 चेतोवृत्तिरियं सदा प्रियवर त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥६१॥  
 इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम् ।  
 वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम् ॥६२॥  
 यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं  
 सञ्चिन्तयामि हृदये जगति स्फुरन्तम् ।

रे चित्त । मैं यह तेरे हितकी यात कहता हूँ कि वृन्दावनमें गौओंको चराने-  
 वाले किसी नयीन मेघके समान इयाम्बुदको मित्र न बना लेना; क्योंकि  
 वह सौन्दर्यामृत भरतानेवाले मन्दहास्यले सब प्रकार मोहित करके, इसे  
 और तेरे प्रिय विषयोंको शीघ्र ही नष्ट कर देगा ॥६०॥ जिस प्रकार बुधुदिनी  
 चन्द्रमाके लिये, चकवा-चकवीका समूह सूर्यके लिये, चातक-मण्डली  
 मेघके लिये, भ्रमरगण पुष्पोंके लिये, कोयल आस-मञ्जरीके लिये तथा सुन्दर  
 स्त्री अपने प्रवासी पतिके लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार हे प्यारे ! तुम्हारे  
 दर्शनके लिये हमारी चित्तवृत्ति उत्कण्ठित हो रही है ॥ ६१ ॥ नीलकमल-  
 दलके समान इयामर्षणवाले, लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले और प्रणत जनोंके  
 लिये कल्पवृक्षके समान, भगवान् यदुनन्दनकी मैं वन्दना करता हूँ ॥६२॥  
 जब मैं हृदयके भीतर, जगत्में प्रकाशमान, निरञ्जन, अज, पुराण ( बूढ़े )

तावद्बलात्स्फुरति इन्त हृदन्तरे मे  
गोपस्य कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्जमञ्जुः ॥६३॥

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।  
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥६४॥  
( पुष्टिमागीयस्तोत्ररत्नाकरात् )

गोविन्दं गोकुलानन्दं वेणुवादनतत्परम् ।  
राधिकारञ्जनं श्यामं वन्दे गोपालनन्दनम् ॥६५॥  
निरुद्धं वाष्पान्तः कथमपि मया गद्गदगिरा  
हिया सद्यो गूढा पथि विघटितो वेपथुरपि ।  
गिरिद्रोण्यां वेणौ ध्वनति निपुणैरिङ्कितनये  
तथाप्यूहां चक्रे मम मनसि रागः परिजनैः ॥६६॥

पुरुषका चिन्तन करता हूँ तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि कोई कमलके समान  
श्याममुन्दर गोपालक हठात् मेरे हृदयमें प्रकाशित होने लगता है ॥ ६३ ॥  
अपने कमलोपम हाथसे चरणकमलको मुखकमलमें लगाते हुए वटके पत्रेपर  
सोये बाल-गोपालका मैं मन-ही-मन स्मरण करता हूँ ॥६४॥ जो गोकुलके  
आनन्दस्वरूप, वेणु-वादनमे तत्पर और भीराधिकाजीका मनोरञ्जन करने-  
वाले हैं, उन गोपकुमार श्याममुन्दर भीगोविन्दकी वन्दना करता हूँ ॥६५॥  
गोवर्धन-गिरिकी घाटीमें वेणु बजाते समय यद्यपि किसी भी तरह मैंने  
आँसुओंको भीतर ही रोक लिया, गद्गद वाणी भी लज्जासे तत्काल छिपा  
ली, चलते समय देह-कम्पनको भी दबाया, तो भी मनोभाव ताड़नेमें  
चरु उर्ध्वोत्प्लवने मेरे मनकी प्रेमदशाका अनुमान कर ही लिया ॥ ६६ ॥

कस्तूरीवितकं लताटपटले वद्यःस्पले कान्तुर्म  
 नासाप्रे धरमौक्तिकं करतले वंशुः करे कङ्कणम् ।  
 सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली  
 गोपघ्नीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥६७॥  
 निखिलधुवनलक्ष्मीनित्यलीलास्पदाम्या  
 कमलविपिनपीपीगर्वसर्वकाम्याम् ।  
 प्रणमदमयदानप्रीडिगाढोद्गताम्यां  
 किमपि यद्वतु चेतः कृष्णपादाभ्युजाभ्याम् ॥६८॥  
 प्रणयपरिणताम्यां प्राभवालम्बनाम्यां  
 प्रतिपदललिताम्यां प्रत्यहं नूतनाभ्याम् ।  
 प्रतिमृदुरधिकाभ्यां प्रस्नुवल्लोचनाम्यां  
 प्रभवतु हृदये नः प्राणनाथः किशोरः ॥६९॥\*

जिनके मस्तकपर कस्तूरीका तिरक है, वद्यःस्पलेमें फोरतुममणि है,  
 नासिकाधमें अलि मुन्दर मोतीकी चुन्दाक है, करतलमें वंशी है, हाथोंमें  
 कङ्कण है, सम्पूर्ण शरीरमें हरिचन्दनका लेप हुआ है और कण्ठमें  
 मनोहर मोतियोंकी माला है, मजाङ्गनाओंसे घिरे हुए ऐसे गोपाल-  
 चूडामणिकी यल्लिहारी है ॥ ६७ ॥ संसारमात्रकी लक्ष्मीकी लीलाके  
 नित्यनिकेतन, कमलवनकी बगीचीमें बिराजमान समस्त कमलोंके गर्वहारी,  
 आभित जनोंको अभय देनेमें सर्वथा उद्यत, श्रीकृष्णके चरणारविन्दसे  
 मेरा मन कोई विशेष नाता जोड़ ले ॥ ६८ ॥ प्राणाधार किशोरमूर्ति  
 श्रीकृष्ण अपने प्रेमपूर्ण, आभयदाता, सदा मुन्दर, नित्यनूतन, क्षण क्षण  
 खिलते हुए, आनन्दवर्षी नेत्रोंसे हमारे हृदयको बशीभूत कर लें ॥ ६९ ॥

\* दिव्यमहलापरनामधेयस्य श्रीलीलाशुकस्यकृष्णवर्णावृषात् ( २ । १० ;

१ । २२ ; १ । १३ )

लीलावताभ्यां रसशीतलाभ्यां  
लीलारुणाभ्यां नयनाम्बुजाम्ब्याम् ।

आलोकयेदद्भुतविभ्रमाम्भ्यां

काले कदा कारुणिकः किशोरः ॥७०॥\*

त्रिभुवनसरसाम्भ्यां दीप्तभूषापराम्भ्यां

दृशि दृशि शिशिराम्भ्यां दिव्यलीलाकुलाम्ब्याम् ।

अशरणशरणाम्ब्यामद्भुताभ्यां पदाम्ब्या-

मयमयमनुकूलद्वेषुरायाति देवः ॥७१॥\*

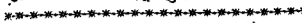
यहै नाम विभूषणं बहु मतं वेषाय शेषैरलं

वक्त्रं दन्तविशेषकान्तिलहरीविन्यासधन्याधरम् ।

शीलैरल्पधियामगम्यविभवैः शृङ्गारमङ्गीमयं

चित्रं चित्रमहो विचित्रमहो चित्रं विचित्रं महः ॥७२॥\*

परम कारुणिक मन्दकिशोर अपने लीलायुक्त विशाल, प्रेमरससे शीतल, कुल-कुल लाल, अद्भुत विलासयुक्त कमलनयनोंसे मुझे कब देखेंगे ! ॥ ७० ॥ त्रिभुवनके प्रति सरस (सदा सानुराम रहनेवाले), देदीप्यमान आभूषण-धारी, प्रत्येक दशोकके नेत्रोंकी शीतल करनेवाले, दिव्य लीलाओंसे परिपूर्ण, अशरणशरण और आशयमय युगन्धरणसे ये भगवान् श्रीकृष्ण वंशी बजाते हुए आ रहे हैं ॥ ७१ ॥ जिनकी वेषरचनाके लिये अन्य भूषणोंका क्या काम, भोषण ही पर्याप्त है, जिनका मुल दाँतोंकी विशेष कान्तिमयी शिल्पिलाहट-से सुशोभित ओठोंवाला है, अल्प बुद्धियोंद्वारा समझमें न आनेवाले वैभवभरे चरित्रोंसे युक्त उन भगवान्का शृङ्गारमङ्गीमय तेज क्या ही अद्भुत है ! ॥७२॥



माधुर्यादपि मधुरं मन्मथता तस्य किमपि कैशोरम् ।

चापल्यादपि चपलं चेतो मम हरति किं कुर्मः ॥७३॥

प्रेमदं च मे कामदं च मे वेदनं च मे वैमवं च मे ।

जीवनं च मे जीवितं च मे दैवतं च मे देव नापरम् ॥७४॥

उपासतामात्मविदः पुराणं परं पुमांसं निहितं गुहायाम्

वयं यशोदाशिशुवाललीलाकथासुधासिन्धुषु लीलयाः ।

ते ते भावाः सकलजगतीलोभनीयप्रभावा

नानातृष्णासुहृदि हृदि मे काममाविर्भवन्तु ।

वीणाषेणुकणितलसितस्मेरवक्त्रारविन्दा-

न्नाहं जाने मधुरमपरं नन्दपुण्याम्बुपूरात् ॥७५॥

पर्याकुलेन नयनान्तविजृम्भितेन

वक्त्रेण कोमलदरालितविभ्रमेण ।

श्रीकृष्णकी किशोरावस्था, जो कि मधुरसे भी मधुर और कामदेवस्वरूप मेरे चञ्चलसे भी चञ्चल चित्तको लुरा रही है; अहो! मैं क्या करूँ ॥७३॥ हे देव ! आपके सिवा मुझे प्रेमदान देनेवाला, मनोरमपूर्ण वाला, मेरा अनुभव, ऐश्वर्य, जीवन, प्राणाधार और देवता अन्य कोई है ॥७४॥ बड़े-बड़े आत्मशार्ता किसी गुफामें छिपे हुए परम पुराणपुस्तक उपासना करें, हमलोग तो यशोदापुत्रकी बाललीलाके कथामृत-सा ही मीठा कर रहे हैं ॥ ७५ ॥ नानातृष्णासुक्त मेरे हृदयमें, जगन्माता लुब्ध करनेवाले प्रभावसे युक्त अनेक पदार्थ भले ही उपस्थित हों; विंशीध्वनिसे लसित मधुर मुखकानयुक्त मुखकमलवाले नन्दजीकी पुण्याम्बु कृष्णसे बढ़कर दूसरेको मैं मधुर नहीं समझता ॥७६॥ चपल कटाक्षविलास-विलासके समय जिसके कोमल कपोलोंमें कुछ गढ़से पड़ जाते

मन्त्रेण मञ्जुलतरेण च जल्पितेन

नन्दस्य हन्त तनयो हृदयं धुनोति ॥७७॥

लीलाटोपकटाद्यनिर्मापरिष्वङ्गप्रमङ्गाधिक-  
प्रीते रीतिविमङ्गमङ्गरलभद्वेषप्रणादामृते ।

रापालोचनलालितस्य ललितस्मेरे मुरारेर्मुदा

मापुष्करसे सुखेन्दुकमले मयं मदीयं मनः ॥७८॥

विहाय कोदण्डभरान्मूर्तुर्गृहाण पार्णा मणिचारुवज्रम् ।

मायूरबद्धं च निबोधमाङ्गे मीतापने त्वां प्रणमामि पश्यान् ॥७९॥

फातिन्दीपुलिने तमालनिविष्टप्राये पुरः मधुर-

शीवे तोषद्वयपायनिहितं दृश्यन्मथ्रान्ति यः ।

ऐसे मुझसे मन्द-मन्द सीटी बजने लगनेसे असे । पर पक्ष्य मन्दबिरते  
मेरे हृदयको डोहाडोय का रहा है ॥ ७७ ॥ रापाली आँसूके मुक्त  
दुष्ट भीमूरीके लीलाभय बटात गया साहाय्यहून और लड़के भावन  
द्वेषार्थक हो जानेके कारण जो विरगुक्त सीटाकेने सोसादवान बडीक  
अपुष्कविने मुक्त है लल स्मोह मगधानर्त, मायूररगने मेरे हुए सन्  
मुलहसने के मग मन मार हो गया है ॥ ७८ ॥ मुरारके अने पुरके  
राज्यके देसकर बडा ] है लीलाभये । मय मुक्त देके निवे हल बज  
बन्धो होकर, मणिचरुव मु द्र करी हाथके कारण बोजे मे  
विहाय कोदण्ड भरारके ली विर के ललको लल्य बनेग ॥ ७९ ॥  
कोदण्डभरकी पडी हाथके मुक्त बज्ज-लीला, बडी ललके ही क  
का रही है, देसकर बज्जके लीकेके लगे हुए पडी विद्वान् मणि

धामे पाणितले निधाय मधुरं पेषुं विषाणं कट्टि-  
 शान्तं गात्र विलोकयन् प्रतिपलं तं बालमालोक्ये ॥८०॥  
 भार मा वस मदीपमानसं माधवैकनिलयं यदृच्छया ।  
 हे रमारमण वार्यतामर्मा कः गहेत निजवंश्मलहृन्म् ॥८१॥  
 अयं धीराम्मोषेः पतिरिति गर्वा पालक इति  
 श्रितोऽस्माभिः धीरोपनयनधिया गोपतनयः ।  
 अनेन प्रत्युद्धो व्यरचि सततं येन जननी-  
 स्तनादप्यस्माकं मरुदपि पयो दुर्लभमभूत् ॥८२॥  
 नखनिपमितकण्ठन् पाण्डवस्यन्दनाद्या-  
 ननुदिनममिपिञ्चम्रञ्जलिर्भ्यः पयोमिः ।  
 अयत्तु विततगात्रस्तोत्रमंस्पृतमालि-  
 दर्शनविधृतरश्मिर्देवकीपुण्यराशिः ॥८३॥

और वार्ये हाथमें मधुर घंशी तथा कमरमें शृङ्गको रखकर प्रतिक्षण  
 इधर-उधर गायोंको भी देखते हैं ऐसे बालकृष्णकी हाँकी में देख  
 रहा हूँ ॥ ८० ॥ ओ मदन ! माधवके एकमात्र निवासस्थान मेरे मानसमें  
 यू मत तुम, और हे रमानाथ ! आप भी इसको मना करें, मला, कौन  
 अपने घरपर दूसरेका अधिकार सृ सकता है ? ॥ ८१ ॥ हमने तो यह  
 सोचकर कृष्णकी शरण ली थी कि ये धीरसागरके स्वामी, गायोंके पालन  
 करनेवाले और गोपपुत्र हैं, इसलिये मनचाहा दूध पीनेको मिलेगा, किन्तु  
 इन्होंने तो ऐसा किष्पन डाला कि हमे एक बार माताके स्तनका भी दूध मिलना  
 दुर्लभ हो गया ॥ ८२ ॥ जो मुबुटमें चाबुक खोंसकर, दौँतोंसे लगाम पकड़कर  
 अर्जुनके रथके घोड़ोंको अपने नखोंसे खुलवाते हुए पैलाये हुए शरीरसे  
 अञ्जलि भर-भरके प्रतिदिन स्नान करानेमें मुरतैद हैं; वे देवकीकी पुण्यराशि

भक्तिस्त्वपि स्थिरतरा भगवन्पदि सा-  
दैवेन नः फलितदिव्यकिशोरखेपे ।

मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्सा-

न्धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः ॥८४॥

अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना ।

इत्यमाकल्पिते मण्डले मध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः ॥४॥

पालिकातालिकाताललीलालयासंगसंदर्शितभ्रूलताविभ्रमः ।

गोपिकार्गीतदत्तावधानः स्वयं संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः ॥५॥

मध्येगोकूलमण्डलं प्रतिदिशं चाम्भारवोज्जृम्भिते

प्रातर्दोहमहोत्सवे नवयनश्यामं रणन्पूरम् ।

माले बालविभूषणं कटिरणत्सत्किङ्किणीमेखलं

कण्ठे व्याघ्रनखं च शैशवकलाकल्याणकात्स्न्यं भजे ॥८७॥

पार्यसारपि कृष्ण हमारी रत्ना करें ॥ ८३ ॥ हे भगवन् ! यदि आपके

दिव्य किशोरखेपमं सौभाग्यसे हमारी भक्ति स्थिर हो जाय तो मुक्ति स्वयं

हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ी रहे और धर्म, अर्थ, काम आदि भी आशाक

प्रतीक्षा करने लगे ॥ ८४ ॥ हर एक गोपीके बाद एक कृष्ण औ

हर एक कृष्णके बाद एक गोपी इस प्रकार रचे हुए रासमण्डलके बीचमें

खड़े होकर कृष्ण बंधीद्वारा गान करने लगे ॥८५॥ गोपियोंकी तालीद्वारा

ताल देनेकी लीला और लयके अनुगार भ्रूलताओंकी मंगी दिखनाते हुए

उनके गीतमें स्वयं सन्मय होकर देवकीनन्दन बंधीद्वारा गान करने लगे

॥ ८६ ॥ प्रातःकाल गोदोहनमहोत्सवके समय जब चारों ओर गायें रौम र

धी, तब सिरपर बान्धोचित आभूषण पहने हुए कमरमें बजती हुई सुन्द

रूपवती और गलेमें बापके नख पहने हुए गायंकि बीचमें खड़े बाल



कामं सन्तु सहस्रशः कतिपये सारस्य धौरेयकाः  
 कामं वा कमनीयतापरिणतिस्वाराज्यबद्धयताः ।  
 नैवैतैर्विवदामहे न च वयं देव प्रियं ब्रूमहे  
 यत्सत्यं रमणीयतापरिणतिस्त्वय्येव पारं गता ॥८८॥  
 यां दृष्ट्वा यमुनां पिपासुरनिशं व्यूहो गवां गाहते  
 विद्वत्त्वानिति नीलकण्ठनिवहो यां द्रष्टुमुत्कण्ठते ।  
 उचंसाय तमालपल्लवमितिच्छिन्दन्ति यां गोपिकाः  
 कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु नः ॥८९॥  
 फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं  
 श्रीवत्साङ्गमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।

हे देव ! हजारोंकी संख्यामें कुछ लोग भले ही किसी अन्य सार पदार्थको  
 दोते रहें, अथवा परमकमनीय आत्मराज्यकी प्राप्तिके लिये दृढसंकल्प बने  
 रहें, हम न तो उनसे विवाद करते हैं और न आपसे मुखदेखी मीठी  
 बातें ही करते हैं, जो सच है यही कहते हैं, कमनीयताकी चरम सीमा  
 तो एकमात्र भावहीमें समाप्त हुई है ॥ ८८ ॥ यमुना समझकर प्यासी  
 गायोंका समूह जिसकी ओर दौड़ा जा रहा है, श्यामपटा समझकर  
 मोरसमुदाय जिसे देखनेको उत्कण्ठित हो रहा है, तमालपत्र समझकर  
 गोपियोंका समूह जिसे कर्णकूल बनानेके लिये लाञ्छित हो रहा है ऐसी  
 कालियदमनकारी भोग्गुणके शरीरको पवित्र [ दिव्य एवं अद्भुत ] कान्ति  
 हमारी रक्षा करे ॥ ८९ ॥ जिनका मुखनन्द विकसित कमलके सदृश है,  
 जिनको मोर-मुकुट अति शिथ है, जिन्होंने यज्ञाम्बुजार भीवस्य चिद्ध और  
 सुन्दर कौस्तुभमणि धारण किये हैं, जो पीताम्बरधारी एवं सुन्दर हैं,

गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसङ्घावृतं

गोविन्दं कलचेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥९०॥\*

परमिममुपदेशमाद्रियर्ध्वं निगमयनेषु नितान्तखेदखिन्नाः ।

विचिनुत भवनेषु बह्वीनामुपनिपदर्थमुल्लखले निषदम् ॥९१॥\*

तमसि रविरिवोद्यन्मज्जतामम्बुराशौ

प्लव इव तृपितानां स्वादुवर्षीव मेघः ।

निधिरिव निधनानां दीर्घतीव्रामयानां

मिपगिव कुशलं मे दातुमायाति शौरिः ॥९२॥\*

चिकुरं बहुलं विरलभ्रमरं मृदुलं वचनं विपुलं नयनम् ।

अधरं मधुरं ललितं वदनं चपलं चरितं च कदानुभवे ॥९३॥\*

गोपाङ्गनाभोंके नयनकमलोंसे जिनका सुन्दर शरीर सम्पूजित है, गो और गोपियोंके समूहसे आवृत है उन मधुर मुरलीका बजाते हुए दिव्य भूषणभूषित गोविन्दकी मैं भजता हूँ ॥ ९० ॥ वेदके जङ्गलोंमें भटकते हुए अत्यन्त खेदसे त्रिप्त होनेवाले लोगो ! मेरे इस उत्तम उपदेशका आदर करो; उक्त उपनिषदर्थ ( परब्रह्म कृष्ण ) को तुम गोपियोंके घरोंमें खोजो, वह वहाँ ओखलमें बैठा हुआ है ॥ ९१ ॥ मगधान् शौरि (कृष्ण) अंधेरेमें उगते हुए सूर्यके समान, समुद्रमें डूबते हुएको जहाजके समान, प्यासे पुरुषोंके लिये सुखादजलवर्षी मेघके समान, निर्धनोंके लिये निधिके समान और पुराने असाध्य रोगियोंके लिये चन्कन्तारिके समान हमारे हितके लिये आते हैं ॥९२॥ [ कृष्णके ] घने और चुल-चुल सुँघराले केशोंका, मीठे-मीठे बोलका, विशाल नेशोंका, मधुर अधरोंका, मनोहर मुखका और चञ्चल चरित्रोंका मैं कर अनुभव करूँगा । ॥ ९३ ॥

मुग्धं त्रिगुणं मधुरसुरलीमाधुरीधीरनादैः

कारं कारं करणविवशं गोकुलव्याकुलत्वम् ।

श्यामं कामं युवजनमनोमोहनं मोहनाङ्गं

चित्ते नित्यं निवसतु महो वल्लवीवल्लभं नः ॥१४॥

सन्ध्यावन्दनमद्रमस्तु भवते भो स्नान तुभ्यं नमः

भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम् ।

यत्र कापि निपद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विपः

स्मारं स्मारमयं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे ॥१५॥

देवकीतनयपूजनपूतः पूतनारिचरणोदकधृतः ।

यद्यहं स्मृतघनञ्जयसूतः किं करिष्यति स मे यमदूतः १६

जो मनमोहन एव स्नेहमय है, अपनी मनोहारिणी मुरलिकाकी मन्द रसीली तानसे, गोकुलको इन्द्रियविवश तथा व्याकुल कर रहा है जो श्यामल, सुन्दर, युवकोंका चित्त चुरानेवाला और मनोहर रूपवाला है वह गोपियोंका प्रियतम तेज हमारे चित्तमें नित्य निवास करे ॥ १४ ॥

सन्ध्यावन्दन ! तुम्हारा भला हो, हे स्नान ! तुमको भी नमस्कार है, हे देवताओ ! और हे पितृगण ! क्षमा करना, अब मैं आपको सन्तुष्ट करनेमें असमर्थ हूँ । मैं तो अब जहाँ कहीं भी बैठकर यदुकुल-भूषण, कंसनिपूदन भगवान् कृष्णचन्द्रका स्मरण करता हुआ अपने पापोंका प्रशालन करूँगा; इतना ही बहुत समझता हूँ, मुझे और किसीसे क्या ! ॥ १५ ॥ यदि देवकीनन्दनके पूजनसे मैं पवित्र हो गया हूँ तथा पूतना-निपूदनके चरणोदकसे मैं धुल गया हूँ और पार्यतारधिका मैंने सम्पूर्ण स्मरण किया है तो बेचारे यमदूत मेरा क्या करेंगे ! ॥ १६ ॥

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं  
 किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साविप्रसारेक्षणम् ।  
 आलोलाहुलिपल्लवैर्गुरलिकामापूरयन्तं मुदा  
 मूले कल्पतरोस्त्रिमङ्गललितं ध्यायेन्नगन्मोहनम् ॥१७॥  
 हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो  
 हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो ।  
 हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम  
 हा हा कदा नु भवितासि पर्दं दृशोर्मे ॥१८॥  
 वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं  
 कुन्दन्दशङ्खदशनं शिशुगोपवेपम् ।  
 इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपांटे

जो बन्धेक लटकने हुए मुन्दर कुण्डल धरण किये हुए है, जिनकी  
 भ्रूलि-मृता मुठ ऊपरकी ओर तनी है, किञ्चित् मिकु है हुए, अत्यन्त कोमल  
 अक्षरपुट है, बौकी और विद्याल ओंने है तथा को कल्पपूर के नीचे लदे हुए  
 अपनी मुकोमल अँगुलियोंकी पीरे-पीरे विद्यते हुए मलमन्त्रने बडी बजा  
 रहे है उन विभङ्गलित जगन्मोहन वराममुन्दरका ध्यान करना पारिके  
 ॥१७॥ हे देव ! हे त्रियम् ! हे एकमात्र जगद्बन्धो ! हे कृष्ण ! हे चपल ! हे  
 करुणालाहर ! हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम वराम ! आनके चरण-  
 कमलोंका हमारे नेत्र बध दटोत्र करोगे ॥ १८ ॥ जिनके कमलदल-  
 लता विद्याल नेत्र है, कुन्द, शङ्ख अथवा लड्डुके लता दन्त है, बाल-  
 गोपालका बेष है, इन्द्रादिक देवताओंके हाथ जिनके चरणोंकी पादुकार्

वृन्दायनालगमहं वसुदेवधनुम् ॥ ९९ ॥\*

त्रिहो कीर्तय केशवं सुररिपुं नेतो भज श्रीधरं  
पाणिद्वन्द्वं शमन्याच्युतकथां शोत्रद्वय त्वं गृणु ।

कृष्णं लोकय शोचनद्वय, हरेर्गच्छाह्नि, पुग्मालयं

जिघ्रं प्राण मुकुन्दपादतुलगीं मूर्द्धन्मधोशत्रुम् ॥ १०० ॥\*

लोकाः शृणुत प्रश्रुतिमरणव्याधेधिक्रिग्मामिमां

योगिनाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः ।

अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां

शोतं परमौषधिं पितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥ १०१ ॥\*

उच्छेदकमन्त्रं सकलमुपनिषदाफयमम्पूज्यमन्त्रम्

सारोच्छेदमन्त्रं समुचिततमसः सङ्घनिर्वाणमन्त्रम् ।

इत ई, उन वृन्दायननिवासी वसुदेवनन्दन मुकुन्दको मैं वन्दना

करता हूँ ॥ ९९ ॥ हे त्रिहो ! केशवका कीर्तन कर, त्रिहो ! सुरारिको

त, सुगल हस्त ! श्रीधरकी अर्चना करो, हे दोनों कानो ! तुम अच्युत-

कथा भवण करो, नेत्रो ! कृष्णका दर्शन करो, सुगल चरणो ! भगवत्-

नोमें भ्रमण करो, अरी नासिके ! मुकुन्दचरणसेविता तुलसीकी गन्ध

और हे मस्तक ! भगवान् अधोशत्रुके सामने छुक ॥ १०० ॥

लोको ! अन्तःकरणरूप व्याधिकी हस्त चिकित्साको सुनो, जिसे

शिवत्वयादि योगवेत्ता मुनिजन बतलाते हैं, अन्तःकरणमें प्रकाशित

निवाला जो कृष्ण नामका एक अप्रमेय एवं अनामय अमृत है उसका

पान करो, यह परमौषधि, पान करते ही आत्यन्तिक शान्तिका विस्तार

की है ॥ १०१ ॥ शत्रुओंके विनाशका एकमात्र मन्त्र, सम्पूर्ण उपनिषद्-

ग्रन्थोंमें पूज्य मन्त्र, भव-बन्धनका उच्छेद करनेवाला मन्त्र, अज्ञानान्धकार-

सर्वेष्वयैकमन्त्रं व्यसनसुजगसंदष्टसंत्राणमन्त्रं  
 जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्यमन्त्रम् ॥१०२॥  
 व्यामोहप्रशमनौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्त्यौषधं  
 दैत्येन्द्रार्तिकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम् ।  
 भक्तात्यन्तहितौषधं भवभयप्रध्वंसनैकौषधं  
 श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पितृ मनः श्रीकृष्णदिव्यौषधम् ॥१०३॥  
 शृण्वन्नार्दनकथागुणकीर्तनानि  
 देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः ।  
 नोत्पद्यते नयनयोर्विमलाम्बुमाला  
 धिक् तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य ॥१०४॥  
 अलमलमलमेका प्राणिनां पातकानां  
 निरसनविषये वा कृष्णकृष्णेति वाणी ।

के सन्तुहको भगा देनेवाला मन्त्र, सम्पूर्ण ऐश्वर्योका एकमात्र साधक मन्त्र,  
 जन्मको सफल कर देनेवाला मन्त्र, व्यसनरूप सर्पोंसे डसे हुएकी रक्षाका  
 मन्त्र जो श्रीकृष्णमन्त्र है उसको अरी जिह्वे ! नू सदा जपा कर ॥१०२॥ मोह-  
 का नाश करनेवाली शूटी, मुनियोंकी मनोवृत्तिको प्रवृत्त करनेवाली शूटी,  
 दैत्यराजोंके लिये दुःखदायिनी शूटी, त्रिभुवनके लिये एकमात्र सञ्जीवनशूटी,  
 भक्तोंकी परमहितकारिणी शूटी, संसारके भयको हरण करनेवाली और  
 कल्याणकी प्राप्ति करानेवाली जो श्रीकृष्णरूपी दिव्य शूटी है उसको  
 अरे मन ! नित्य पीता रह ॥ १०३ ॥ भगवान्की कथा, गुण और  
 कीर्तनादिको सुनते हुए जिसके देहमें रोमाञ्च नहीं होते और आँसुओंसे निर्मल  
 आभूषण नहीं बहती ऐसे अपम पुरुषके जीवनको धिक्कार है ! ॥१०४॥  
 जीवोंके पापोंको भगानेमें कृष्ण ! कृष्ण ! ऐसा एक बार बोलना ही पर्याप्त

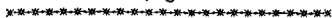
यदि भवति मुकुन्दं भक्तिरानन्दसान्द्रा  
 करतलकलिता सा मोघसाम्राज्यलक्ष्मीः॥१०५॥  
 कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपउरान्तं  
 अथैव मे विशतु मानगराजहंमः ।  
 प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः  
 कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥१०६॥  
 कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।  
 जलं मित्र्वा यथा पत्रं नरकाद्दुद्धराम्यहम् ॥१०७॥  
 सत्यं ब्रवीमि मनुजाः स्वपमूर्ध्वबाहु-  
 यो मां मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति ।  
 जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा  
 पापाणकाष्ठसदृशाय ददाम्यभीष्टम् ॥१०८॥

फिर यदि भगवान्में आनन्दघनमयी प्रेमभक्ति हो जाय तो मोघ-  
 साम्राज्यलक्ष्मी हथेलीमें ही आ जाय ॥ १०५ ॥ हे कृष्ण ! मेरा मनरूपी  
 जहंस आपके चरणारविन्दरूपी पीजड़ेमें आज ही प्रविष्ट हो जाय क्योंकि  
 प्राणविसर्जनके समय कफ, वात, पित्तादिसे कण्ठके रुक जानेपर  
 आपका स्मरण भला कैसे होगा ! ॥ १०६ ॥ जो मुझको 'कृष्ण ! कृष्ण !  
 कृष्ण !' ऐसा नित्य स्मरण करता है उसको मैं नरकसे ऐसे निकाल देता हूँ  
 जैसे जलका भेदन करके कमल अद्भूता निकल जाता है ॥ १०७ ॥ हे  
 मनुष्यो ! मैं स्वयं हाथ उठाकर सत्य-सत्य कहता हूँ; जो जीव मुझको  
 मुकुन्द ! नरसिंह ! जनार्दन !' इस प्रकार मरणसमयमें या रणमें भजता  
 है; पापाण अथवा काष्ठसदृश हृद्य भी उसको मैं अभीष्ट फल दे

गोकोटिदानं ग्रहणेपु कार्गीप्रयागगङ्गायुतकल्पवामः ।  
 यद्यायुतं मेरुमुवर्णदानं गोविन्दनाम्ना न कदापि तुल्यम् १०९१  
 वासुदेवं परित्यज्य ऐश्वर्यं देवमुपासते ।  
 तृपिता जाह्नवीतीरे कृपं बाञ्छन्ति दुर्भगाः ॥११०॥  
 विभ्रटेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे  
 वामे पार्श्वे मयूणकवलं तत्कलान्पङ्कलीषु ।  
 त्रिष्टम्भेषु स्वपरिमुहदो हामयद्गर्भमिः स्वैः  
 मूर्ध्ने लोके मियति युभुजे यममुग्धालकेलिः ॥१११॥  
 नैमीत्य तंश्चरपुं तडिदम्बराय  
 गुञ्जावतंसपरिपिच्छलमन्मुग्धाय ।

देता हूँ ॥ १०८ ॥ अथाने करोही साधोका दान, कार्गी, प्रयाग आदि  
 तीर्थोमे गङ्गाके तटपर सहस्री वयोत्तक कलपयाग करना, हजारी यज्ञ  
 करना, मेरुके बराबर मुवर्णका दान करना भी गोविन्दके नामस्मरणके  
 बराबर कभी नहीं होगा है ॥१०९॥ जो बूढ़ भक्तवान् वासुदेवको छोड़कर  
 दूसरे देवताकी उपासना करता है वह मानो प्यासा होकर गङ्गाके तटपर  
 बुझी प्योहता है ॥११०॥ कमरके हथोमे बाँसुरीकी स्नेहकर बगलमें लीला  
 और बेलको दबावे हुए, बाँवे हाथमें त्रिकने कनेरे और दाहिने हाथमें  
 अंगुलिनीमे उगके मातकी लिने हुए अर्धे मित्र मण्डलीमे बेटपर  
 हाथमय बाधनीमे उनको दूताने हुए बाहकीशानायन बहके भोषा  
 भक्तवान् स्वर्गकामी देवताओंके देनने हुए भोक्तन करते थे ॥ १११ ॥  
 है नवनीच । भारतका धनरक्षाम लीला है, विजयीके लक्षण पीतवस्त्र है,  
 गुफाओंके तिमोभूषण और मोरपक्षमे भारतका युग मुर्तीनिष्ठ रहता है,





वन्यस्रजे

कवलत्रेत्रविपाणवेणु-

लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥११२॥

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ।

तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥११३॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यदिपदां न तेषाम् ॥११४॥

वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं

विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।

रन्धान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै-

वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गुगीतकीर्तिः ॥११५॥

आप वनमालाधारी हैं, कलेया, लकुट, नरसिंहा और बौंसुरीके चिह्नोंसे सुशोभित हैं—ऐसे कोमलचरणवाले गोपालनन्दन आपको समस्कार करता हूँ ॥ ११२ ॥ रागादि तभीतक चोर हैं, घर तभीतक कारागार है और मोह तभीतक पाँवोंमें बेड़ी डालनेवाला है जबतक हे कृष्ण ! ये मनुष्य आपके नहीं होते ॥११३॥ जो मुरारिके पावन यशवाले पादपल्लवमयी नौकारूप महत्पदके आश्रित हैं, उनके लिये संसार-समुद्र गोलुरके सदृश हो जाता है, परमपद प्राप्त होता है और पद-पदपर आनेवाली विपत्तियाँ नहीं रहती ॥ ११४ ॥ जिनके शिरपर मोरमुकुट है, जिनका घेय नटवर है जो कानोंमें कनेरके फूल पहने हैं, सुवर्णसदृश पीतपद्म धारण करते हैं, जिनके गलेमें वैजयन्तीकी माला है, जिनके विमल यशका गोपियोंने गान किया है ऐसे मगधान् वेणुरन्ध्रोंको अपनी अपर-मुखासे पूर्ण करते हुए गोपसमूहके साथ अपने चरण-चिह्नोंसे रम्य प्रतीत होनेवाले वृन्दावनमें प्रविष्ट हुए ॥ ११५ ॥ अहो! इस अगाधो पूतनाने

अहो ब्रह्मीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।  
 लेभे गतिं घान्द्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं ब्रजेम ११६\*  
 आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं  
 योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।  
 संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं  
 गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥११७॥\*  
 अक्षुण्वतां फलमिदं न परं विदामः  
 सरुयः पशून्नु विवेशयतोर्वयस्यैः ।  
 वक्त्रं ब्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं  
 र्यर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥११८॥\*  
 नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।  
 जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥११९॥†

अपने स्तनोंमें लगावे हुए कालकूटको जिसे मारनेकी इच्छासे पिलाकर भी घात्रीके लिये उचित पदको प्राप्त किया उस परमदयालुके अतिरिक्त हम और किसकी शरणमें जायें ? ॥११६॥ [ गोपियोंने कहा— ] हे पद्मनाभ ! पूर्ण शानी योगेश्वरोंके द्वारा हृदयमें चिन्तन करने योग्य आधका चरणारविन्द, जो संसारकूपमें गिरे हुए जीवोंके उद्धारका सहाय है, परपर रहती हुई भी हमलोगोंके हृदयमें सदा प्रकट हो ॥ ११७ ॥ हे सखियों ! नेशवालीके नेत्रका हम इससे बढ़कर कोई कच नहीं जानती, जिन्होंने ग्वालवालीके साथ गौर्भोंके फीसे जानेवाले दोनों बज्रराजकुमारोंके वेणु बघाते हुए प्रेमपूर्वक कटाक्ष करनेवाले बदनकी सौन्दर्यमुखाका पान एवं सेवन कर लिया है ॥ ११८ ॥ विप्रकुलपालक और गो-ब्राह्मण-हितकारी देवको नमस्कार है, जगत्-प्रतिपालक गोविन्द श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार

गोविन्द द्वारिकायामिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।\*

कौरवैः परिभूतां मां किं न जानामि केशव ॥१२०॥

हे नाथ हे रमानाथ प्रजनायार्तिनाशन ।\*

कौरवार्णवमर्षा मामुद्रम्य जनार्दन ॥१२१॥\*

भियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो

द्वमो भूमिधिन्तामणिगणमर्षा तोयममृतम् ।

कथा गानं नाथं गमनमपि वंशी प्रियसर्वा

चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च ॥१२२॥†

यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः ।

विष्णुर्महान्स इह यस्य कलाविशेषो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१२३॥†

हे ॥११९॥ [द्रोपदीने कथा-] हे गोविन्द ! हे द्वारिकाके रहनेवाले, हे गोपी-  
बल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र ! क्या आप मुझे कौरवोंके द्वारा अपमानित होती हुई  
नहीं जानते ? ॥१२०॥ हे नाथ ! हे लक्ष्मीपते ! हे दुःखदहन प्रजराज !  
हे जनार्दन ! इस कौरवोंकी सभारूपी समुद्रमें डूबती हुई मुझको  
बचाओ ! ॥ १२१ ॥ गोलोककी समस्त गोपियों लक्ष्मी-सी हैं, पतिरूपमें  
पुरुषोत्तम कृष्ण हैं, सभी वृक्ष कल्पद्रुम हैं, भूमि धिन्तामणिमयी है, जल  
अमृत है, वार्तालाप गान है, चलना-फिरना भी नृत्य है और  
वंशी, प्रिय सखियों तथा ज्योति आदि सभी चिदानन्दमय, उत्कृष्ट और  
आस्वादन्य ही हैं ॥ १२२ ॥ जिसके एक श्वास लेनेतकके समयमें ही  
लोमकूपसे उत्पन्न हो समस्त लोकपाल जीवित रहते हैं वे महाविष्णु भी जिनकी  
एक कलाविशेष हैं, ऐसे आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ॥१२३॥

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिविपद्बुन्दैरमन्दादरा-  
दानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम् ।  
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मन्दाकिनीमेदुरं  
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्वन्दाय वन्दामहे ॥१२४॥†  
राघामुग्धमुखारविन्दमधुपस्रैलोक्यमालिखली-  
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ।  
स्वच्छन्दव्रजसुन्दरोजनमनस्तोषप्रदोषधिरं  
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥१२५॥†  
वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्रिभ्रते  
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्यते ।

आवन्त आदरसे साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए, घन आनन्दमें निमग्न  
इन्द्रादि देवगणोंके द्वारा उनके मुकुटके नीलमकी प्रभासे जो नीलकमलके  
समान दीखते हैं तथा मकरन्दसमान गङ्गासे भीगे रहते हैं उन गोविन्दके  
चरवारविन्दोंको अपने अशुभके नाश (कल्याण प्राप्ति) के लिये हम  
स्वेच्छासे प्रणाम करते हैं ॥ १२४ ॥ जो श्रीराधिकाजीके मनोहर मुखार-  
विन्दके ध्रमर, तीनी लोकोके मलककी आभूषणोचित नीलमणि,  
भूमार इटानेमें समर्थ, स्वच्छन्द व्रजवाताओंके मनको सन्तोष  
देनेवाले सायंकालरूप और कंसको नाश करनेमें अमिथ्वरूप हैं  
ऐसे देवकीनन्दन तुम्हारी रक्षा करें ॥ १२५ ॥ [ मत्स्वरूप  
होकर ] वेदोंका उद्धार करनेवाले, [ कच्छप होकर ] सत्तारका भार  
दोनेवाले, [ वाराह होकर ] पृथ्वीको पातालसे छानेवाले, [ नृसिंह होकर ]  
दिरन्धकशिषु दैत्यको मारनेवाले, [ वामन होकर ] बालिको छलनेवाले,  
[ परशुराम होकर ] सत्रियोंका नाश करनेवाले, [ राम होकर ] रावणको

लस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते  
 छेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥११॥  
 से चञ्चलतां गतस्य ललनावृन्दस्य मध्ये हरी  
 जत्येष कथं भवेदुपमितिस्तादृक् न मावो भुवि ।  
 तस्याञ्चञ्चलता गता विपुलता विद्युत्सु संनर्तनं  
 मध्ये जलदस्य नर्तनमतिः शोभा भवेत्तादृशी ॥१२७॥  
 कृष्णस्य मनोव्रनादमुरलीं विम्वाघरं श्रीमुखं  
 मूर्णाकृतिमच्छशाङ्कललितं हृत्कौस्तुभाध्यासितम् ।  
 दादौ नृपुरमञ्जुशिञ्जितनमत्कैवल्यनिन्दाक्षम-  
 दादौ तप्तसुवर्णकान्ति वसनं साक्षात्कारिष्ये कदा ॥१२८॥

नेवाले, [ बकराम होकर ] हलको धारण करनेवाले, ( बुद्ध होकर )  
 रणाका विस्तार करनेवाले तथा ( कल्कि होकर ) म्लेच्छोंका नाश  
 करनेवाले; इस प्रकार दश अवतार धारण करनेवाले आप कृष्ण भगवान्को  
 मस्कार है ॥ १२६ ॥ रासक्रीडामें नृत्य करती हुई अत्यन्त चञ्चल  
 गियोंके बीच ये भगवान् कृष्ण [ नृत्य करते हुए ] शोभा पा रहे हैं,  
 की उपमा कैसे दी जाय ! संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है [ जिससे  
 पमा हो ], यदि आकाशमें कुछ देर चञ्चलताफो छोड़कर विजली स्थिर  
 और उसके बीचमें श्याममेघ [ अनेक रूप धारण करके ] नृत्य करे  
 यैसी शोभा हो सकती है ॥ १२७ ॥ श्रीकृष्णकी मपुर स्वरभरी यंत्री,  
 म्वके समान लाल ओटीयाव्या और पूर्ण चन्द्रकी कान्तिसे युक्त मुन्दर मुल,  
 स्तुभमणिते चमकता हुआ वधःस्वयं, नृपुरीकी मपुर शनकारसे दसते  
 र मोण्डरदको भी कीटा करनेवाले स्वादसे युक्त चरणयुगल और  
 राये हुए सोनेकी कान्तिके समान पीताम्बर—इनका मैं कब प्रायश

श्रीकृष्णाय नमः ॥ १२८ ॥ शारदावतीसुधाकर ॥

श्रीकृष्ण श्याम राधाधर यदुनूपते यामुनप्रान्तचारिन्  
 वृन्दारण्यकवासिन्मधुरशशिमुख स्निग्धमूर्ते ब्रजेश ।  
 चंशीवाद्योचित स्रग्भरपरिमलयुक्षिच्छसङ्क्रान्तचूड  
 प्रत्यङ्गश्रीनिवास प्रदिश मनसि मे स्वीयमक्तिप्रकाशम् ॥१२९॥  
 कालिन्दीकूलकेलिः कलितकुमुदिनीकान्तकान्तिः कृपालुः  
 केशिक्रान्तागुकर्षी वक्रकुलकलनः कालिपाकालनोत्कः ।  
 काव्याङ्ककान्तकर्मा कुरुकुलकपणः कालकण्ठीकृताङ्गः  
 कृष्णः कारुण्यकर्मा भवतु मयि कृपादष्टिरङ्घ्रिकर्मा ॥१३०॥  
 इदानीमहमद्यालि रचितं चानुलेपनम् ।  
 इदानीमेव ते कृष्ण धृतीषुसरितं वपुः ॥१३१॥

दशम कर्मा ॥ १२८ ॥ हे श्रीकृष्ण, श्याममुन्दर, राधाधररूप, यदुनाथ, यमुनातीर्थवासी, एकमात्र वृन्दावनमें निवास करनेवाले, माधुर्यमय चन्द्रके समान मुखवाले, स्निग्ध स्वरूपवाले बजेरधर ! हे वही देहनेमें मग्न, मालाभोजी युगल्यगे युक्त मोरपंखले आम्बुज मयकवाले और अङ्ग-अङ्गमें लक्ष्मीके निवासभूत हे श्रीकृष्ण ! मेरे हृदयमें अगनी मक्ति-का प्रकाश फैलाइये ॥१२९॥ यमुनातीरपर क्रीडा करनेवाले, चन्द्रकान्तिले युक्त, दयालु, केशिरैखके वन और प्राणीको हरनेवाले, वक्रकुलके नाटक, काश्चिनागको उन्मादपूर्वक दण्ड देनेवाले, काव्य और नाटकोंमें वर्णित परिचयवाले, शीरषोके संसारक, हगिरस्वरूप, कष्टपूर्ण कर्म करनेवाले और अनायास ही सब कार्योंके वर्ता कृष्ण मुझपर कृपादृष्टि करे ॥१३०॥  
 [मैरा दलोडा शोरी-] अरे करीदा ! अभी तुमने स्नान कराकर चन्द्रनादिक लेपन किया, और अभी-का-अभी तेरा शरीर धूलिपूरित हो गया ! ॥१३१॥

• १ • एतद्वाक्यतद्वाक्योर्बन्ध श्रीकृष्णस्तुति (१-१३१)

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्वो न शूद्रो  
 नाहं वर्णा न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।  
 किन्तु प्रीद्यन्नितिलपरमानन्दपूर्णामृतान्वे-  
 गोपीमर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥१३२

कृष्ण त्वं पठ किं पठामि ननु रे शास्त्रं किमु ज्ञायते  
 तत्त्वं कस्य विभोः स कस्त्रिभुवनाधीश्वरतेनापि किम् ।  
 ज्ञानं भक्तिरथो विरक्तिरनया किं मुक्तिरेवास्तु ते  
 दध्यादीनि भजामि मातुरुदितं वाक्यं हरेः पातु वः ॥१३३॥  
 नवनीलमेघरुचिरः परः पुमानवनीमवाप्य घृतगोपविग्रहः ।  
 महनीयकीर्तिरमरैरपि स्वयं नवनीतमिक्षुरधुना स चिन्त्यते ॥

न मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ और न शूद्र ही हूँ  
 मैं न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थ हूँ और न संन्यासी हूँ  
 किन्तु सम्पूर्ण परमानन्दमय अमृतके उमड़ते हुए महासागररूप गोपीकान्त  
 श्यामसुन्दरके चरणकमलोंके दासोंका दासानुदास हूँ ॥ १३२ ॥  
 [ यशोदा मैया बोली— ] 'रे कन्हैया ! तू पढ़,' [ कृष्ण— ] 'क्या  
 पढ़ूँ ?' 'अरे ! शास्त्र पढ़', 'उससे क्या जाना जायगा !' 'तत्त्व', 'किस्का !'  
 'परमात्माका', 'वह कौन है ?' 'विभुवनवर्ति है', 'उससे क्या लाभ  
 होगा !' 'ज्ञान, भक्ति और वैराग्यकी प्राप्ति होगी', 'इनसे क्या  
 होगा !' 'मुक्ति', 'तब तो यह तेरी ही हो ! मैं तो दही-रोटी ही  
 लेना चाहता हूँ,' माताके प्रति इस प्रकार कहे हुए भगवान् कृष्णके  
 वाक्य आपकी रक्षा करें ॥ १३३ ॥ जितने पृथ्वीतलमें आकर  
 नवीन नील मेघके समान श्यामसुन्दर गोपवेश धारण किया; और  
 जिसकी कीर्ति देवताओंद्वारा भी प्रशंसित हुई उसी मास्त्रनकी याचना  
 करनेवाले परमपुरुषका मैं इस समय ध्यान करता हूँ ॥ १३४ ॥

† तावन्भीमवासुदेवभट्टाचार्यस्य । ‡ विश्वमङ्गलश्रीचरणानाम् ।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।  
 शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥१३५॥  
 अयि नन्दतनूज किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।  
 कृपया तव पादपङ्कजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥१३६॥  
 वंशीविभूषितकराक्षवनीरदामात्  
 पीताम्बरादरुणविम्बफलाघरोष्ठात् ।  
 पूर्णन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्  
 कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥१३७॥  
 ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं  
 ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते ।  
 अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं  
 कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तच्चीलं महो धावति ॥१३८॥

गोविन्दके विरहसे आज मेरे लिये छत्र युगके समान प्रतीत होता है  
 आँखें पायस कटु-सी अश्रु-बर्षा कर रही हैं और सारा सखार सूना-स  
 जान पड़ता है ॥ १३५ ॥ हे नन्दनन्दन ! इस विषम ससारसागर  
 गिरे हुए मुझ दासको अपने चरणारविन्दोंपर पड़ी हुई धूलिके सदृश  
 जानकर कृपया मुझ लीजिये ॥ १३६ ॥ जिनके करकमल वंशी  
 विभूषित हैं, जिनकी नवीन मेघकी सी आभा है, जिनके पीत वस्त्र हैं  
 अरुण विम्बफलेके समान अघरोष्ठ है; पूर्णचन्द्रके सदृश सुन्दर मुख और  
 कमलके-से नयन हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य किसी म  
 तावको मैं नहीं जानता ॥ १३७ ॥ ध्यानाभ्याससे मनको स्ववश कर  
 योगीजन यदि किसी प्रसिद्ध निर्गुण निष्क्रिय परमज्योतिको देखते हैं  
 वे उसे भले ही देखें; परन्तु हमारे लिये तो भीषणनाडीके तटपर  
 [ कृष्णनामवाली ] यह अलौकिक नील ज्योति दौड़ती फिरती है, य  
 चिरकाष्ठक लोचनोंको चकाचौंधमें डालनेवाली हो ॥ १३८ ॥



चिदानन्दाकारं जलदरुचि सारं श्रुतिगिरां

प्रजस्रोणां हारं भवजलधिपारं कृतधियाम् ।

विहन्तुं भूमारं विदधदवतारं मुहुर्हो

महो वारम्भारं भजत कुशलारम्भकृतिनः ॥१३९॥†

चर्वयत्यनिशं मर्म मम मायानिशाचरी ।

फासि हे पूतनापातिन् मायाकृद्दकनाशक ॥१४०॥‡

त्वं पापितारकः कृष्ण भवसागरनाविकः ।

त्राहि मां भवभीमान्वेस्तवैव शरणागतम् ॥१४१॥‡

किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये ।

विमुखे त्वयि गोविन्द हा हा पापी हतो हतः ॥१४२॥‡

हे कल्याणमय आरम्भ करनेवाले कार्यकुशल लोगो ! जो चिदानन्दस्वरूप है, मेघके सदृश कान्तिवाला है, श्रुतियोंका सार है, भजवालाओंके गलेका हार है, बुधजनोंके लिये संसारसमुद्रके पार करनेका एकमात्र साधन है और पृथ्वीके समस्त भार हरण करनेके लिये जिसने बारंबार अवतार धारण किये हैं उसी परमात्मतेजका बारंबार भजन करो ॥ १३९ ॥

हे मायाछद्मविनाशिन, पूतनानिपूदन, कृष्ण ! तुम कहों हो ! यह माया-रूपिणी निशाचरी रात-दिन मेरे मर्मस्थानोंको चबाये डालती है ॥१४०॥ हे कृष्ण ! तुम पापियोंके तारनेवाले हो और भवसागरके चतुर नाविक हो। अब तुम्हारी ही शरणमें आये हुए मुझे संसाररूप भवङ्कर समुद्रसे पार करो ॥१४१॥ हे गोविन्द ! हा ! आपके विमुख होनेके कारण मैं पापी नष्ट हो रहा हूँ । अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसकी शरण लूँ ? ॥१४२॥

रे रे मानसभृङ्ग मा कुरु मुधा झङ्कारकोलाहलं  
निःशब्दं हरिपादफुल्लकमले माघ्नीकभाखादय ।  
तस्मिन् सर्ववृषापदारिणि चिदानन्दे मरन्दे सकृ-  
न्निष्पीते क नु ते प्रयास्यतिलयं साहङ्कृतिर्हङ्कृतिः ॥१४३॥\*  
येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां  
येषामामीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा ।  
येषां श्रीकृष्णलीलालितरसकथासादरौ नैव कर्णौ  
धिकतान्धिकतान्धिगेतान्कथयति नियतं कीर्तनस्यो भृदङ्गः ॥†  
जीर्णां तरी सरिति नीरगभीरधारा  
बाला वयं सकलमित्थमनर्थहेतुः ।

अरे मनमधुप ! ध्यर्थ झङ्कारमय कोलाहल मत कर, मौन होकर हरिके चरणरूपी विकसित कमलके मकरन्दका आस्वादन कर । खबकी प्यास बुझानेवाले उस चिदानन्दमय मकरन्दका एक बार भी पान कर लेनेपर तेरी यह अहङ्कारसहित इनकार न जाने कहीं विलीन हो जायगी ? ॥१४३॥  
जिन मनुष्योंकी यशोदानन्दनके चरणकमलोंमें भक्ति नहीं है, जिनकी रसना गोपकुमारियोंके प्राणाधार ( श्रीकृष्ण ) के गुणगानमें अनुराशिणी नहीं है और जिनके कर्ण अति ललित श्रीकृष्णकथामृतके प्यासे नहीं हैं, उनके लिये कीर्तनमें बजता हुआ भृदङ्ग 'धिक् तान् धिक् तान् धिगेतान्' ( उन्हें धिक्कार है ! धिक्कार है ! धिक्कार है ! )—ऐसा कहता है ॥१४४॥  
नौका जीर्ण-शीर्ण है, नदीकी जलधारा बड़ी गम्भीर है, हम भी अभी बालिकाएँ ही हैं—इस प्रकार ये सब अनर्थके कारण हैं, इस समय हम

\* श्रीतारकुमारस्य । † श्रीधरस्य ब्रह्मविद्यारस्य; कैवल्यनिन्दे अथं श्लोकः श्रीवानेश्वरविद्यालयात्स्य ।

विधासपीजमिदमेव कृशोदरीणां

यन्माघवस्त्वमसि सम्प्रति कर्णधारः ॥१४५॥\*

श्रीकृष्णनामा जयतीह शश्वत् कश्चित्स सशिनमयनीलिमा मे ।

यप्रानुरक्तं घवलत्वमेति स्थैर्यं च चित्तं मलिनं चलं च ॥१४६॥†

नमस्तस्मै परेशाय कृष्णायाद्भुतकर्मणे

धूलिधूसरिताङ्गाय

नमस्तैजसमूर्तये ॥१४७॥‡

नमः श्रीद्वारकेशाय गाथ चारयते नमः ।

राजराजेश्वराय पार्थसारथये नमः ॥१४८॥§

नमोऽस्तु मीष्मभीष्माय प्रह्लादाह्लादकाय च ।

परःसहस्रपत्नीभिः सेविताय जितात्मने ॥१४९॥§

अबलाओंको केवल इतना ही मरोखा दे कि हे माघव ! हमारे कर्णधार आप हैं ॥ १४५ ॥ सत् और चिद्रूप नीलिमा ही जिसका स्वरूप है ऐसा श्रीकृष्ण नामक कोई विलक्षण वर्ण इस जगत्में सदा विजयी हो रहा है, जिसमें अनुरक्त होने ( रँग जाने ) पर मेरा मलिन और चञ्चल मन भी उज्ज्वल एवं स्थिर हो रहा है ॥ १४६ ॥ जिन नन्दनन्दनके अङ्ग धूलि-धूसरित होते हुए भी परम तेजोमय हैं उन अद्भुतकर्मशाली श्रीकृष्ण भगवान्को नमस्कार है ॥ १४७ ॥ द्वारकापीठ होकर भी जो गौवोंके चराने-वाले हैं, तथा राजराजेश्वर होते हुए भी जो पार्थके सारथी बने हैं [ उन अद्भुतकर्मा ] परमेश्वर भगवान्को नमस्कार है ॥ १४८ ॥ बड़े-बड़े वीरोंके भी दिलको दहलानेवाले [ नृसिंहरूप ] होकर भी जो बालक प्रह्लादको आनन्दित करनेवाले हैं तथा सोलह हजार पत्नियोंसे सेवित होनेपर भी जो जितेन्द्रिय हैं ऐसे [ अद्भुतकर्मा ] भगवान् कृष्णको

\* भीषरस्व व्रजविहारात् † पाण्डेयराजनारायणरत्नशास्त्रिणः ‡ भीशिव-

प्रकाशस्य कृष्णाद्भुतस्तोत्रात् ।

कायं क्षुद्रमतिर्दासः क्व स्वामी गुणवारिधिः ।

सुहृर्मुहुर्निमग्नं मां क्षमस्व करुणानिधे ॥१५०॥§

शुद्धचित्ति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते ।

वसनमिव धारोर्दुर्भक्त्या प्रशाल्यते चेतः ॥१५१॥#

यद्गत्समलादर्शं सुचिरं भसादिना शुद्धे ।

प्रतिफलति वक्त्रमुच्चैः शुद्धे चित्ते तथा ज्ञानम् ॥१५२॥#

स्थूला सूक्ष्मा चेति द्वेषा हरिभक्तिरुदिष्टा ।

प्रारम्भे स्थूला स्यात्सूक्ष्मा तस्याः सकाशाच्च ॥१५३॥#

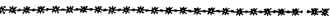
स्वाश्रमधर्माचरणं कृष्णप्रतिमार्चनोत्सवो नित्यम् ।

विविधोपचारकरणैर्हरिदासैः सङ्गमः शश्वत् ॥१५४॥#

कृष्णकथासंश्रवणे महोत्सवः सत्यवादथ ।

नमस्कार है ॥ १४९ ॥ भला कहों तो यह तुच्छ बुद्धिवाला दास, और कहों आप सरीखे गुण सागर स्वामी ! है दयानिधे ! आपके गुण-समुद्रमें चार-चार गोता लगानेवाले मुझ किङ्करका अपराध आप क्षमा करें ॥१५०॥ श्रीकृष्णचरणारविन्दोंकी भक्तिरूपी अभृतके बिना चित्त शुद्ध नहीं होता । भक्तिसे चित्त उसी प्रकार स्वच्छ हो जाता है जिस प्रकार धारशुक्त बरतके द्वारा बौनेसे वस्त्र ॥ १५१ ॥ जिस प्रकार भसा आदिके द्वारा चिरकाष्ठतक शुद्ध किये गये निर्मल दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखलाई देने लगता है उसी प्रकार शुद्ध चित्तमें ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है ॥ १५२ ॥ हरिकी भक्ति दो प्रकारकी कही गयी है— स्थूल और सूक्ष्म । प्रारम्भमें स्थूल होती है और फिर उसीसे सूक्ष्म हो जाती है ॥१५३॥ अपने वर्णाश्रमधर्मका आचरण, अनेक उपचारोंसे नित्य श्रीकृष्णप्रतिमाका पूजनोत्सव और हरिजनोका निरन्तर सङ्ग करना, श्रीकृष्णचन्द्रकी कथाके श्रवणमें महान् उत्सव मानना, सत्य-भाषण,

§ श्रीशिवकाशस कृष्णाङ्गतस्तोत्राद् । • श्रीशुद्धाचार्यस प्रबोधसुधाकरात् १६७, १६८, १७१, १७२ ।



परयुवतौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता ॥१५५॥\*  
 ग्राम्यकथासूद्रेगः सुतीर्थगमनेषु तात्पर्यम् ।  
 यदुपतिकथावियोगे व्यर्थं गतमायुरिति चिन्ता ॥१५६॥\*  
 एवं कुर्वति भक्तिं कृष्णकथानुग्रहोत्पन्ना ।  
 समुदेति सूक्ष्मभक्तिर्यस्या हरिरन्तराविशति ॥१५७॥\*  
 स्मृतिसत्पुराणवाक्यैर्यथाश्रुतायां हरेर्मूर्तिं ।  
 मानसपूजाभ्यासो विजननिवासेऽपि तात्पर्यम् ॥१५८॥\*  
 सत्यं समस्तजन्तुषु कृष्णस्यावस्थितेर्ज्ञानम् ।  
 अद्रोहो भूतगणे ततस्तु भूतानुकम्पा स्यात् ॥१५९॥\*  
 प्रमितयदृच्छालामे सन्तुष्टिर्दारपुत्रादौ ।  
 ममताशून्यत्वमतो निरहङ्कारत्वमक्रोधः ॥१६०॥\*  
 मृदुभाषिता प्रसादो निजनिन्दायां स्तुतौ समता ।  
 सुखदुःखशीतलोष्णद्वन्द्वसहिष्णुत्वमापदो न भयम् १६१\*

र-श्री, परधन और परनिन्दासे विमुख रहना, विषयवार्तामें उद्वेग,  
 तीर्थयात्रामें तत्परता, 'भीकृष्णकथाके बिना व्यर्थ इतनी आयु चली  
 गी'—ऐसी चिन्ता; इस प्रकारमें भक्तिका साधन करते-करते भीकृष्ण-  
 कथाकी कृपासे सूक्ष्म भक्तिका उदय होता है, जिसके भीतर भीहरिका  
 प्रवेश होता है ॥१५४-१५७॥ स्मृति और सत्पुराणोंके वचनोंसे भीहरिकी  
 मूर्ति मुनी है, उसकी मानसपूजाका अभ्यास, निजनिन्दास्वभावमें रहने-  
 का अभाव, सत्य, सब प्राणियोंमें भीकृष्णकी स्थितिका ज्ञान और जीवोंके  
 प्रति निर्वेदता—इन साधनोंसे प्राणियोंपर दयाभाव उत्पन्न हो जाता  
 ॥ १५८-१५९ ॥ थोड़े-से यदृच्छालाममें सन्तोष, श्री-पुत्र आदिमें  
 प्रसादका अभाव, निरहङ्कारता, अक्रोध, मृदुभाषण, प्रसन्नता, अपनी  
 निन्दा और मृत्तिमें समानता, सुख-दुःख एवं शीतोष्णादि द्वन्द्वोंमें सहन-

\* श्रीसत्पुराणवसं प्रबोधसुधाकराय १०१, १०४, १०५, १०६, १०७,  
 १०८, १०९ ।

निद्राहारविहारेष्वनादरः सङ्गराहित्यम् ।

वचने चानवकाशः कृष्णस्मरणेन शाश्वती शान्तिः ॥१६२॥

केनापि गीयमाने हरिगीते वेषुनादे वा ।

आनन्दाविर्भावो युगपत्स्याद्भृष्टसात्त्विकोद्वेकः ॥१६३॥

तस्मिन्नुभयति मनः प्रगृह्यमाणं परात्मसुखम् ।

स्थिरतां याते तस्मिन् याति मदोन्मत्तदन्तिदशाम् ॥१६४॥

जन्तुषु भगवद्भावं भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः ।

एतादृशी दशा चेत्तदैव हरिदासवर्यः स्यात् ॥१६५॥

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये ।

कल्पद्रुमतलभूमी चरणं चरणोपरि स्थाप्य ॥१६६॥

तिष्ठन्तं घननीलं स्वतेजसा भासयन्तमिह विश्वम् ।

पीताम्बरपरिधानं चन्दनकर्पूरलिप्तसर्वाङ्गम् ॥१६७॥

धीलता, विपत्तिमें निर्भयता, निद्रा तथा आहार-विहारादिमें अनादर, आसक्तिहीनता, अर्थ वचनके लिये अनवकाश ( समय न मिलना ), भीकृष्णस्मरणसे स्थिर शान्ति, किसी पुरुषने भीहरिका गीत गाया हो या मुरली बजाई हो तो उसे सुनते ही उत्कृष्ट आनन्दका आविर्भाव और शारिषक हर्षका उत्साह—ऐसे अनुभवसे मन जब परमात्मसुखको ग्रहण करके स्थिर हो जाता है तब [ प्रेमवश ] उसकी दशा मदमत्तगजराजकी-सी हो जाती है, और वह सब जीवोंमें भगवद्भावको और ऋमसे भगवान्में सब जीवोंको देखता है; जब ऐसी दशा हो जाय तभी वह भेष्ट हरिदास होता है ॥ १६०-१६५ ॥ यमुनातटके निकट स्थित वृन्दावनके अति रमणीय किसी काननमें कल्पद्रुमके तले चरणपर चरण रखकर पृथ्वीपर बैठे हुए जो मेढके समान समामचरण हैं, अपने तेजसे विश्वको प्रकाशित कर रहे हैं, पीताम्बर धारण किये हुए हैं, चन्दनकर्पूरसे जिनका सम्पूर्ण शरीर लिप्त हो रहा है,

आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम् ।  
 मन्दसितमुखकमलं सुकौस्तुभोदारमणिहारम् ॥१६८॥  
 बलयाङ्गुलीयकाघानुज्ज्वलयन्तं स्वलङ्कारान् ।  
 गलविलुलितवनमालं स्वतेजमापास्तकलिकालम् ॥१६९॥  
 गुञ्जारवालिकलितं गुञ्जापुञ्जान्विते शिरसि ।  
 भुञ्जानं सह गोपैः कुञ्जान्तरवर्तिनं हरिं स्मरत ॥१७०॥  
 मन्दारपुष्पवासितमन्दानिलसेवितं परानन्दम् ।  
 मन्दाकिनीयुतपदं नमत महानन्ददं महापुरुषम् ॥१७१॥  
 सुरभीकृतदिग्बलयं सुरभिश्चतैरावृतं सदा परितः ।  
 सुरभीतिक्षपणमहासुरभीमं यादयं नमत ॥१७२॥

जनके नेत्र कानोतक पहुँचे हुए हैं, दो कुण्डलोंसे जिनके दोनों कान  
 मलंकृत हैं, जिनका मुखकमल मन्दहाससे युक्त है, जो कौस्तुभमणिसे युक्त  
 अन्दर हार पहिने हुए हैं, जो अपने प्रकाशसे कङ्कण, अङ्गुठी आदि सुन्दर  
 आभूषणोंको सुशोभित कर रहे हैं, जिनके गलेमें वनमाला लटक रही है,  
 अपने तेजसे जिन्होंने कलिकालका निरास कर दिया है, गुञ्जापुञ्जसे युक्त  
 जनके शिरपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं, किसी कुञ्जके अन्दर बैठकर गोरोंके  
 साथ भोजन करते हुए ऐसे भीहरिका स्मरण करो ॥ १६६-१७० ॥ जो  
 अल्पवृक्षके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त मन्द पवनसे सेवित हैं, गङ्गाजी जिनके  
 अरण्यकमलोंमें स्थित हैं, जो महानन्दके दाता हैं, ऐसे परमानन्दस्वरूप महा-  
 रूपको नमस्कार करो ॥ १७१ ॥ दशों दिशाओंको जिन्होंने सुरभित कर  
 दिया है, सुरभि (कामधेनु) सहस्र सैकड़ों गाधोंने जिन्हें चारों ओरसे घेर  
 रखा है, देवताओंके भयको दूर करनेवाले और महान् असुरोंको  
 यदायक उन यदुकुलनायक श्रीकृष्णको नमस्कार करो ॥ १७२ ॥

• श्रीशङ्कराचार्यस्य प्रबोधसुधाकराय १८६, १८७, १८८, १८९, १९० ।

कन्दर्पकोटिसुभगं वाञ्छितफलदं दयार्णवं कृष्णम् ।  
 त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुगं द्रष्टुमुत्सहते ॥१७३॥\*  
 पुण्यतमामतिसुरसां मनोऽभिरामां हरेः कथां त्यक्त्वा ।  
 श्रोतुं श्रवणद्वन्द्वं ग्राम्यं कथमादरं वहति ॥१७४॥\*  
 दौर्भाग्यमिन्द्रियाणां कृष्णे विषये हि शाश्वतिके ।  
 क्षणिकेषु पापकरणेष्वपि सञ्जन्ते यदन्यविषयेषु ॥१७५॥\*  
 भूतेष्वन्तर्यामी ज्ञानमयः सच्चिदानन्दः ।  
 प्रकृतेः परः परात्मा यदुकुलतिलकः सं एवायम् ॥१७६॥\*  
 साक्षाद्यथैकदेशे वर्तुलमुपलभ्यते रवेर्विम्वम् ।  
 विश्वं प्रकाशयति तत्सर्वैः सर्वत्र दृश्यते युगपत् ॥१७७॥\*

जो करोहो कामदेवोंसे भी सुन्दर हैं, वाञ्छित फलके दाता हैं, उन दयासागर श्रीकृष्णको छोड़कर ये युगल नेत्र और किस विषयका दर्शन करनेको उत्सुक हैं ! ॥ १७३ ॥ अति पवित्र, अति सुन्दर और सरस हरिकथाको छोड़कर, ये कर्णयुगल ससारी पुरुषोंकी चर्चा सुननेको क्यों अद्वा प्रकट करते हैं ! ॥ १७४ ॥ सदा विद्यमान श्रीकृष्णरूपी विषयकें होते हुए भी पापके साधन अन्य क्षणिक विषयोंमें जो इन्द्रियों आसक्त होती हैं वह इनका दुर्भाग्य ही है ॥ १७५ ॥ जो ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्द, प्रकृतिसे परे, परमात्मा, एवं सर्वभूतोंका अन्तर्यामी है, वही मैं यदुकुलतिलक (श्रीकृष्ण) हूँ ॥ १७६ ॥ जिस प्रकार सूर्यका गोलाकार मण्डल साक्षात् एक देशमें ही देखा जाता है, पर वह समस्त विश्वको प्रकाशित करता है और एक ही कालमें सब जगह सब पुरुषोंको दिताहार देता है, [ उसी



यद्यपि साकारोऽयं तथैकदेशी विभाति यदुनायः ।

सर्वगतः सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानन्दः ॥१७८॥\*

ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्  
गोपान्वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णुनशेषांश्च यः ।

शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते च मूर्तित्रयात्  
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा ॥१७९॥\*

कृपापात्रं यस्य त्रिपुररिपुरम्भोजवसतिः

सुता जह्वोः पूता चरणनखनिर्णेजनजलम् ।

प्रदानं वा यस्य त्रिभुवनपतित्वं त्रिभुरपि

निदानं सोऽस्माकं जयति कुलदेवो यदुपतिः ॥१८०॥\*

मायाहस्तेर्षयित्वा भरणकृतिकृते मोहमूलोद्भवं मां

मातः कृष्णामिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गतासि ।

कार ] यद्यपि ये श्रीयदुनाथ साकार और एकदेशी प्रतीत होते हैं, यापि ये सर्वगत, सर्वात्मा और सच्चिदानन्द हैं ॥ १७७-१७८ ॥ जिसने ब्रह्माजीको अनेक ब्रह्माण्ड और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें पृथक्-पृथक् अति विचित्र ब्रह्मा, गोवत्सोंसहित गोप और अनन्त विष्णु दिखलाये, तथा जिसके चरणोदकको शिवजी अपने शिरपर धारण करते हैं, वह श्रीकृष्ण मूर्तित्रय (ब्रह्मा, विष्णु और महादेव) से पृथक् कोई सच्चिन्मयी निर्विकार नीलिमा है ॥ १७९ ॥ शिव और ब्रह्मा जिसके कृपापात्र हैं, जाह्ववी जिसके चरणनखकी धोवन है, त्रिलोकीका राज्य जिसका दान है, हम सबके आदिकारण, व्यापक और कुलदेव, उस यदुनाथ श्रीकृष्णकी पति हो ॥ १८० ॥ मोहरूपी मूलनक्षत्रमें उत्पन्न हुए मुझ पुत्रको पालन-पोषण करनेके लिये मायाके हाथमें सौंपकर, हे कृष्णनामधारिणी मातः ! तू

कारुण्यकाधिवामे सकृदपि पदनं नेद्यमे त्वं मदीयं  
 उत्सवद्ये न कर्तुं प्रभवसि मयती किन्तु मूलस्य शान्तिम् ॥१८१॥ॐ

उदारगानः मन्थः मन्तमपुणः सङ्गरहितो  
 मयांमानः फानः पामिह भवेत्जीवनगतिः ।

अकस्मादस्माकं यदि न फुग्रे स्नेहमय तद्  
 पगम्य श्रीधान्तविमलवठरेऽस्मिन्पुनरपि ॥१८२॥ॐ

लोकार्थीने स्वर्थागे किमिति मयमया पेदना म्याधिनानां  
 मशोपः पद्मज्ञानां किमिह समुहिते मण्डले षण्टरग्नेः ।

भोगः पूर्वोक्तिनानां मयति सुवि नृणां कर्मणां चेद्व्यर्थं  
 तन्मे र्दुर्नृपुर्ननु दनुजनुर्पमक्षितं निद्रितं मे ॥१८३॥ॐ

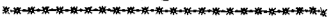
विवाह करने मुझे उदारगान हा मरी है, हे एवमाथ करणाकी भाणार मानः ।  
 तु एक बार भी मेरा मुँह नहीं टंगती है तबने । क्या तु ठग कीदगी मुन  
 नजबकी कर्म-न का नये लम्पे मरी है ॥१८१॥ आज हमारे विना तो मरा  
 उदारगान, निधन, निर्दुल और मन्थ टारे, मयः मय हमारे कीदमकी  
 क्या कीने होगी । कीद विना बाण हमने आज मनेह मरी कर लवने तो  
 आवने विवाहकालन तुम निद्रित मानः करकमे ही विवाह तो करे ॥१८२॥  
 का-वर्ष का तुम र्दुर्नृपुर्ननु र्दुर्ननु कीदमकी मयमयापकी दीदा  
 करो होगी है । तुर्दुर्नृपुर्ननु उदर होमिष भी क्या कभी कर्मकीवा  
 मको न हुआ है । कीद कही कि मनुकीकी आवने दुर्दुर्ननु कर्मका पम  
 अदर होकरा वदना है, तो की देवे तुम जादमने दुह  
 है।आजमे तो अदर ही ही कर्मकी कीद विवा का ॥ १८३ ॥

नित्यानन्दसुधानिषेरधिगतः मर्द्धान्मेघः मता-  
 म्मात्कण्ठप्रवत्प्रमञ्जनमरंराकर्मितो यर्षनि ।  
 विमानामृतमद्भुतं निजप्रचोधाराभिरारादिदं  
 चेतमानक चेष याञ्छगि मृता क्रान्तोजगि सुप्तोजगि किम् १८४०  
 चेतप्रचलतां विदाय पुरतः मंघाय कोटिद्वयं  
 तत्रैकत्र निषेदि मर्षरिषयानन्यत्र च श्रीपतिम् ।  
 विभ्रान्तिर्हितमप्यदो क नु तपोर्मध्ये तदालोच्यतां  
 युक्त्या वानुमधेन यत्र परमानन्दश्च तत्सेव्यताम् ॥१८५॥  
 पुत्रान्पात्रमथ स्त्रियोऽन्यपुरतीविंचान्ययोऽन्यद्वनं  
 भोज्यादिष्वपि तारतम्यवशतो नालं समुत्कण्ठया ।

नित्यानन्दरूपी अमृतके समुद्रमे सागरुषोंकी उतकण्ठारूपी प्रवत् वायुके  
 द्वारा लीच लाया हुआ सुन्दर नीलमेघ तेरे निकट ही अपने बचनकी  
 धारा (भीगीता) से अद्भुत विमानामृतकी वर्षा कर रहा है। अरे चित्तरूपी  
 पर्यादे ! यदि तू उसे मृता ही नहीं चाहता [ तो इसमें कारण क्या है ? ]  
 क्या तुझे किसीने पकड़ लिया है अथवा तू सो रहा है ? ॥१८४॥ अरे चित्त,  
 चञ्चलताको छोड़कर सामने तराजूके दोनों पलकोंमेंसे एकमें सब विषयोंकी  
 और दूसरेमें मगवान् भीषतिको रख, और इसका विचारकर कि दोनोंके  
 बीचमें विभ्राम और हित किसमें है ! फिर युक्ति और अनुभवसे  
 जहाँ परमानन्द मिले उसीका सेवन कर ॥ १८५ ॥ पुत्र, पौत्र,  
 स्त्रियों, अन्य सुवतियों, [ अपना ] धन, परधन, और भोज्यादि  
 पदार्थोंमें न्यूनाधिक भाव होनेसे कभी इच्छा शान्त नहीं होती;

नैतादृग्यदुनायके समुदिते चेतस्यनन्ते विभौ  
सान्द्रानन्दसुधार्षवे विहरति स्वैरं यतो निर्भयम् ॥१८६॥\*  
काम्योपासनयार्ययन्त्यनुदिनं केचित्फलं स्वेप्सितं  
केचित्स्वर्गमथापवर्गमपरे योगादियज्ञादिभिः ।  
अस्माकं यदुनन्दनाङ्घ्रियुगलध्यानावधानार्थिनां  
किं लोकेन दमेन किं नृपतिना स्वर्गापवर्गेश्च किम् ॥१८७॥\*  
आश्रितमात्रं पुरुषं स्वामिमुखं कर्षति श्रीशः ।  
लोहमपि चुम्बकाश्मा संमुखमात्रं जडं यद्वत् ॥१८८॥\*  
अयमुत्तमोऽयमधमो जात्या रूपेण संपदा वयसा ।  
श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्यं न वेत्ति भगवाननुग्रहावसरे ॥१८९॥\*

किन्तु जब ध्यानानन्दामृतसिन्धु विभु यदुनायक श्रीकृष्ण चित्तमें प्रकट होकर इच्छापूर्वक विहार करते हैं तब यह बात नहीं रहती, क्योंकि उस समय चित्त स्वच्छन्द एवं निर्भय हो जाता है ॥ १८६ ॥ कुछ लोग प्रतिदिन सकाम उपासनासे मनोवाञ्छित फलकी प्रार्थना करते हैं, और कोई यज्ञादिसे स्वर्ग और योगादिसे मोक्षकी कामना करते हैं, किन्तु यदुनन्दनके चरणयुगलोंके ध्यानमें सावधान रहनेके इच्छुक हमको लोक, दम, राजा, स्वर्ग और मोक्षसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १८७ ॥ श्रीपति ( श्रीकृष्ण ) अपने आश्रित पुरुषको अपनी ओर वैसे ही खींचते हैं जैसे सामने आये हुए जड़ लोहेको चुम्बक अपनी ओर खींचता है ॥ १८८ ॥ कृपा करते समय भगवान् यह नहीं विचारते कि जाति, रूप, धन और आयुसे यह उत्तम है या अधम ! स्तुर है या निन्द्य ! ॥ १८९ ॥



अन्तःस्वभावभोक्ता ततोऽन्तरात्मा महामेघः ।  
 खदिरश्चम्पक इव वा प्रवर्षणं किं विचारयति ॥१९०॥\*  
 यद्यपि सर्वत्र समस्तथापि नृहरिस्तथाप्येते ।  
 भक्ताः परमानन्दे रमन्ति सदयावलोकेन ॥१९१॥\*  
 सुतरामनन्यशरणाः क्षीराद्याहारमन्तरा यद्वत् ।  
 केवलया स्नेहदृशा कच्छपतनयाः प्रजीवन्ति ॥१९२॥\*  
 यद्यपि गगनं शून्यं तथापि जलदामृतांशुरूपेण ।  
 चातकचकोरनाम्नोर्दृढभावात्पूरयत्याशाम् ॥१९३॥\*  
 तद्ब्रजतां पुंसां दृग्वाङ्मनसामगोचरोऽपि हरिः ।  
 हृपया फलत्यकस्मात्सत्यानन्दामृतेन विपुलेन ॥१९४॥\*



यह अन्तरात्मा ( श्रीकृष्ण ) रूपी महामेघ आन्तरिक भावोंका ही भोक्ता है; मेघ क्या वर्षाके समय इस बातका विचार करता है कि यह खदिर ( खैर ) है अथवा चम्पक ( चम्पा ) है ? ॥१९०॥ यद्यपि भगवान् हरि सर्वत्र समान हैं, तथापि भक्तजन उनकी दयादृष्टिसे परमानन्दमें मग्न करते हैं ॥१९१॥ जिस प्रकार कि जिनका कोई सहारा नहीं होता ऐसे कछुएके यच्चे दूधके बिना ही केवल माताकी स्नेहदृष्टिसे ही जीवन धारण करते हैं ॥ १९२ ॥ यद्यपि आकाश शून्य है तथापि चातक और चकोरकी दृढभावनासे यह मेघ और चन्द्रमाके रूपमें समस्त दिशाओंकी पूर्ण कर देता । उसी प्रकार वाणी और मनके अगोचर भी श्रीहरि धारणागत पुरुषोंको ज्ञान कारण ही सत्यानन्दरूपी अमृतसे भर देते हैं ॥ १९३-१९४ ॥



श्रीनन्दादिगोपसूक्तिः

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः ।  
 अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥१९५॥ \*  
 दोहः प्रायो न भवति गवां दोहनञ्चैव पाकः  
 क्षीराणां स्वात्स यदि घटते दुर्लभं तद्वधित्वम् ।  
 दध्नः सिद्धौ क खलु मयनं मन्यने कोपयोगः  
 तक्रादीनामिह गतिरभूदद्य गोधुग्गृहेषु ॥१९६॥  
 अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।  
 यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ १९७ ॥†  
 तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां  
 यद्भोकुलेऽपि कतमाहृष्टिरजोऽभिपेक्षम् ।

संसारसे भयभीत होकर भले ही कोई श्रुतिको, कोई स्मृतिको और कोई महाभारतको भजें, मैं तो एक नन्दबाबाको ही भजता हूँ जिनकी देखलीपर साक्षात् परब्रह्म विराजमान है ॥ १९५ ॥ [ उद्धवने कहा—'हे भीकृष्ण ! ] कृन्दावनमें प्रथम तो प्रायः गोदोहन ही नहीं होता, दोहन भी हो गया तो दूध नहीं उचाला जाता, यदि उचाला भी गया तो उसका दही जमाना कठिन है, यदि दही भी जमा तो उसका मन्यन करौं! और मन्यन भी हो जाय तो तक्रादिका कर्तव्य उपयोग हो! [आपके न होनेसे] गोपोंके घरोंमें आजकल ऐसी दुर्दशा हो रही है' ॥१९६॥ अहो ! नन्दगोप और उन व्रजवासियोंका यद्वा ही सौभाग्य है जिनके मित्र सनातन परमानन्दमय पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं ॥ १९७ ॥ इस व्रजके भीतर कृन्दावन या भोकुलमें कहीं भी जन्म होना बड़े सौभाग्यकी बात है, क्योंकि ऐसा होनेसे वहाँके किसी भी निवासीकी चरणरजका

यज्ञीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द-  
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥१९८॥

**श्रीकृष्णोवाःश्रुक्तिः**

यद्रोमरन्ध्रपरिपूर्तिविधावदक्षा वाराहजन्मनि बभूवुरमी समुद्राः  
तन्नामनाथमरविन्ददृशं यशोदा पाणिद्वयान्तरजलः सपयाम्बमूत्र  
यशोदया समा कापि देवता नास्ति भूतले ।

उलूखले यया बद्धो मुक्तिदो मुक्तिमिच्छति ॥२००॥

किं ब्रूमस्त्वां यशोदे कति कति सुकृतक्षेत्रघृन्दानि पूर्वं  
गत्वा कीदृग्विधानैः कति कति सुकृतान्यर्जितानि त्वयैव ।

नो शक्रो न स्वयम्भूर्न च मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादं

तत् पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपन् क्रोडमारोढुकामम् ॥२०१॥

अभिषेक प्राप्त हो सकता है; अहा! इन गोकुलवासियोंके तो जीवनसर्वस्व  
भगवान् कृष्ण ही हैं जिनकी पादरेणुको आज भी श्रुतियाँ हँद रही हैं ॥१९८॥

वाराहावतारमें वे [ सारे ] समुद्र जिनके रोम-कूपको भी भरनेमें  
समर्थ न हो सके उन्हीं कमलनयन श्रीकृष्णको गैया यशोदाने अपनी  
अञ्जलिभर पानीसे नहला दिया ! ॥ १९९ ॥ संसारमें यशोदाके समान  
कोई भी देवता नहीं है, जिसके द्वारा ऊखलमें बाँधे जानेपर [मुमुक्षुओंको]  
मोक्ष देनेवाले भगवान् कृष्ण भी मोक्ष ( छूटने ) की इच्छा करते हैं ॥२००॥  
अरी यशोदे ! तुझसे हम क्या कहें, अकेली तूने ही न जाने कितने पुण्यक्षेत्रोंमें  
जाकर किन-किन विधियोंद्वारा कितने-कितने पुण्य कर्म किये हैं !  
अरी ! जिसकी कृपाकटाक्षको इन्द्र, ब्रह्मा और महादेव कोई भी नहीं  
प्राप्त कर सके, वह पूर्णब्रह्म ( श्रीकृष्ण ) तेरी गोदमें चढ़नेके लिये  
रोता हुआ पृथ्वीपर लोट रहा है ! ॥ २०१ ॥







धीराधासूक्तिः

धेकां नौमि नीलाञ्जमदमोचनलोचनाम् ।  
 नन्दनन्दनप्रेमवार्षीखेलन्मरालिकाम् ॥ २०२ ॥  
 दकुञ्जममुं पश्य सरसीरुहलोचने ।  
 ना कुन्दकुञ्जेन सखि मे किं प्रयोजनम् ॥ २०३ ॥  
 मत्कृष्णे मधुपुरगते निर्मला कापि बाला  
 शी नीलोत्पलनयनजां वारिधारां वहन्ती ।  
 एनिव्याप्ता शशधरनिभं धारयन्ती तदास्यं  
 ह्रीतिच्युतिकृतजरा निर्भरं कातराभूत् ॥२०४॥

ने नयनोंमे नीलकमलके मदका भर्दन करनेवाली और श्री-  
 की प्रेममयी बावलीमे खेलनेवाली राजहंसी धीराधिकाजीको मैं  
 प्रता हूँ ॥२०२॥ [ सखी-] 'हे कमललोचने राधे ! इस कुन्द-  
 ३' [राधा-] 'हे सखि ! इस कुन्द-कुञ्जसे मुझे क्या काम !' [ यहाँ  
 राधाकी बातचीतमें गूढ़ अर्थ है; सखी राधाको मुकुन्दकी याद  
 है कहती है कि 'अमुम्'-'मु' से रहित कुन्द-कुञ्जको देख, सखीके  
 पको समझकर राधा कहती है; हमें 'अमुना'-'मु' से रहित कुन्द-  
 १ काम है अर्थात् मुझे तो 'मु' सहित कुन्द यानी मुकुन्द-कुञ्जकी  
 प्रता है ] ॥२०३॥ कृष्णके मधुपुरीको विदा होनेके बाद कोई  
 गोपबाला अपने नयनकमलसे अभुधारा बहाती हुई  
 हो, शिष्य कृष्णके मुखनग्दका चिन्तन करती हुई, गाढ़ प्रेमके  
 शशाङ्कासे शिथिल एवं अत्यन्त कातर हो गयी ॥२०४॥

शिवपूर्णचन्द्रको द्रव्यमातरणः । † सम्भारद्वारा । ‡ धीरामरकादुर्गवर्तक-  
 २ ।

वृन्दारण्यान्मधुपुरमिते माधवे तस्य पथा-  
 दायास्यामि त्वरितमितिवाग्बीजसम्भृतमेकम् ।  
 आशावृक्षं नयनसलिलैः सिञ्चती वद्वयन्ती  
 राधा बाधाविवशहृदया यापयामास मासान् ॥२०५॥#  
 गोपीमात्रं \* गुणलिपिनयान्माधवप्रेमपात्रं  
 मत्वा यत्त्वामनतिशयिनी दृष्टिरे ममासीत् ।  
 क्षन्तव्यं तद्विधिविधिसुतव्योमकेशाब्धिपुत्री-  
 मृग्यः पाशे पशुरिव तव प्रेम्णि चद्धो यदस्ति ॥२०६॥†

घन्येयं धरणी ततोऽपि मयुरा तत्रापि वृन्दावनं  
 तत्रापि ब्रजवासिनो युवतयस्तत्रापि गोपाङ्गनाः ।  
 तत्राचिन्त्यगुणैकधामपरमानन्दात्मिका राधिका  
 लावण्याम्बुनिधिस्त्रिलोकरमणीचूडामणिः काचन ॥२०७॥‡

वृन्दावनसे मधुपुरीको जाते समय जो माधवने यह कहा था कि  
 'मैं शीघ्र ही लौटकर आऊँगा' इस वाणीरूपी बीजसे उत्पन्न हुए  
 एकमात्र आशावृक्षको नयनजलसे सींचती और बढ़ाती हुई [ शिरह-  
 से ] व्यथितहृदया राधा किसी प्रकार उन महीनोंको काटती थी ॥ २०५ ॥  
 हे राधे ! तेरे महत्त्वको न जानकर पहले जो मेरी यह धारणा थी कि  
 तুম कोई साधारण गोपी हो और गुणाधरण्यायसे कृष्णमें भी तुम्हारा प्रेम  
 हो गया है, इसे क्षमा करना; क्योंकि ब्रह्मा, ब्रह्मपुत्र (सनकादि), शिव और  
 लक्ष्मी आदि भी जिसकी खोजमें ही लग रहे हैं, यह कृष्ण तुम्हारे प्रेमपाशमें  
 मृगकी तरह फँसा हुआ है ॥ २०६ ॥ यह पृथ्वी घन्य है ! उसपर भी मयुरा,  
 वहाँ भी वृन्दावन, उसमें भी ब्रजवासी, उनमें भी युवती गोपियाँ और उनमें  
 भी अचिन्त्य गुणोंकी स्वानि, परमानन्दमयी, सौन्दर्यकी निधि एवं तीनों  
 लोकोंकी स्त्रियोंमें शिरोमणि कोई राधा नामकी गोपी ही घन्य है ॥ २०७ ॥

\* श्रीहरिमोहनप्रामाणिकस्य कोकिलदूतात् । † श्रीमाधवभट्टाचार्यस्य  
 चद्धवदूतात् । ‡ भट्टमाधवस्य दानलीलायाः ।

या पूर्वं हरिणा प्रयाणसमये संरोपिताशालता  
साभूत् पल्लविता चिरात् कुसुमिता नेत्राम्बुसेकैः सदा ।

विज्ञातं फलितेति हन्त भवता तन्मूलमुन्मूलितं  
रे रे माधवदूत जीवविहगः क्षीणः कमालम्वते ॥२०८॥

आनम्रायां मयि निजमुखालोकलक्ष्मीप्रसादं  
खेदत्रेणीविरचितमनोलाघवाद्याविधेहि ।

सेवामाग्ये यदपि न विभो योग्यता मे तथापि  
स्मारं स्मारं तव करुणतापूरमेवं ब्रवीमि ॥२०९॥

असितावयवस्य या व्रजेन्दोः

सितशोभैव पृथक्कृतेव माति ।

प्रणयातिशयेन तां नु राधां

मन्त्राधाविनिवृत्तये नमामः ॥२१०॥

पहिले मयुरा जाते समय भगवान् हरिने जिस आशालताको लगाया था वह हमारे अभुव्रणसे निरन्तर सींची आकर बहुत दिनोंके बाद पल्लवित और पुष्पित हो रही थी; हम जानती थी कि जब उसमें फल लगनेहीवाले हैं कि अरे! माधवके दूत उड़व! तूने उसे जदसे उखाड़ डाला! न जाने, ये दुर्बल प्राणपतेरु अब किसका आशय लेंगे! ॥२०८॥ दुःखके भारसे हने हुए मेरे इन हृदयको हलका करनेके लिये मुझ विनीताको अपने मुस्कार चिन्दकी शोभाको निहारनेका प्रसाद दो; हे विभो! यद्यपि आपकी सेवाके शौभाग्यकी योग्यता मुझमें नहीं है तथापि आपकी करुणाराशिकी याद करके मैं ऐसा बहती हूँ ॥ २०९ ॥ जो इराम शरीरवाले व्रजचन्द्र श्रीकृष्णके पृथक् की हुई श्वेत कान्ति-सी ही भाँसित हो रही हैं, उन भीराधिकीके मन्त्राधाकी निवृत्तिके लिये हम अत्यन्त प्रेम्हे प्रणाम करते हैं ॥२१०॥

• २०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००

संविधाय दशने तृणं विभो प्रार्थये ब्रजमहेंद्रनन्दन ।  
 अस्तु मोहन तवातिवह्नुमा जन्मजन्मनि मदीधरी प्रिया २११६  
 यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यैरालयितो न सहसा पुरुषस्य तस्य  
 सद्योवशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं तं राधिकाचरणरेणुमनुसरामि  
 श्यामेति सुन्दरवरेति मनोहरेति  
 कन्दर्पकोटिललितेति सुनागरेति ।  
 सोत्कण्ठमद्धि गृणती मुद्गराकुलाधी  
 सा राधिका मयि कदा नु भवेत्प्रसन्ना ॥२१३॥†  
 कृष्णः पक्षो नवकुवलयं कृष्णसारस्तमालो  
 नीलाम्बोदस्तव रुचिपदं नामरूपंश्च कृष्णा ।

हे नाथ ! हे ब्रजराजनन्दन ! मैं दौंतोंमें तिनका लेकर (अति दीनतासे) विनती करता हूँ, कि हे मोहन ! तुम्हारी अत्यन्त प्रियतमा श्रीराधिकाजी ही जन्म-जन्ममें मेरी प्रिय स्वामिनी हों ॥२११॥  
 जिस महापुरुषको ब्रह्मा, शिव, शुक, नारद, भीष्म आदि भी सहसा न जान सके, उसी कृष्णको तत्काल बशमें करनेवाली ओषधिरूप अनन्तशक्तिशालिनी श्रीराधिकाजीकी चरणरेणुको मैं स्मरण करता हूँ ॥ २१२ ॥ 'हे श्याम ! हे सुन्दरवर ! हे मनोहर ! हे कोटिकामसे भी अधिक रमणीय ! हे नटनागर !' इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक दिनमें बारम्बार श्रीकृष्णकी टेर लगाती हुई व्याकुल नेत्रोंवाली श्रीराधिकाजी मुझपर कब प्रसन्न होंगी ? ॥ २१३ ॥  
 जब तुम्हें कृष्ण पक्ष, नवीन नीलकमल, काला मृग, श्याम तमाल, नील मेघ, तथा जां नाम और रूप दोनोंहीसे कृष्णा है वह यमुना-ये

● श्रीविठ्ठलेश्वरस्य राधापार्थनाचतुःश्लोकीस्तोत्रात् । † गोस्वामिनो मोहित-हरिवंशस्य राधाशुभानिधिस्रोत्रात् ।

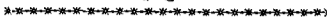
कृष्णो कसात्तव विमुक्त्वता मोहनश्याममूर्ति-  
वित्पुक्त्वा त्वां प्रहसितमुखीं किन्तु पश्यामि राघे ॥२१४॥

ध्यायंस्तं शिखिपिच्छमौलिमनिशं तन्नाम सङ्कीर्तयन्  
नित्यं तच्चरणाम्बुजं परिचरंस्तन्मन्त्रवर्यं जपन् ।  
श्रीराधापददास्यमेव परमाभीष्टं हृदा धारयन्  
कहिं सां तदनुग्रहेण परमोद्भूतानुरागोत्सवः ॥२१५॥

राधाकरावचितपल्लवबहुरीके राधापदाङ्गविलसन्मधुरस्थलीके ।  
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके राधाविहारविपिने रमतां मनो मे

॥२१६॥

एव काले ही प्यारे हैं, तो फिर मोहिनी श्याममूर्तिवाले श्रीकृष्णसे ही तुम क्यों लूठी हुई हो ! [ मेरे ] इस प्रकार ताना मारनेपर, हे राघे ! तुम्हें सुसकाले हुए मैं कब देखूँगा ! ॥२१४॥ सर्वदा मोरपंखका मुकुट धारण करनेवालेका ध्यान, उनके नामोंका कीर्तन, उनके चरणकमलोंकी नित्य सेवा तथा उनके मन्त्रोंका जप करते हुए और मन-ही-मन श्रीराधाचरणोंके दासत्वको ही अपना परम इष्ट समझते हुए उनकी कृपासे प्रकट हुए निरतिशय प्रेमानन्दमें मैं कब निमग्न होऊँगा ! ॥२१५॥ जहाँके पल्लव और मञ्जरी श्रीराधिकाजीके हाथोंसे चुने गये हैं, जहाँकी मनोहर भूमि श्रीराधिकाजीके चरणचिह्नोंसे सुशोभित हो रही है, जहाँके पक्षीगण श्रीराधिकाजीके यशोगानमें ही मस्त हैं, ऐसे श्रीराधिकाजीके कीटावन(वृन्दावन)में मेरा मन विचरण करे ॥२१६॥



### श्रीगुरुजान्गनासूक्तिः

वीतासङ्गः शयनवसनस्नानपानाशनादौ  
 गायन्त्यस्त्वचरितगुणिताः सन्ततं गीतगाथाः ।  
 आदासीन्यं किमपि सकला बन्धुवृन्दे बहन्त्यो  
 गोप्यो लीलाक्षितिषु भवतो योगिनीवद्भ्रमन्ति ॥२१७॥  
 तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।  
 तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्रुः ॥२१८॥  
 या दोहनेऽवहनने मयनोपलेप-  
 प्रेह्वेह्नार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।  
 गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो  
 धन्या व्रजस्त्रिय उरुकमचित्तयानाः ॥२१९॥

[ उद्धरणे कथा— ] 'हे कृष्ण ! समस्त गोपियों शयन, वसन, स्नान, पान और भोजन आदि समस्त विषयोंमें आसक्ति हटाकर, निरन्तर आपके ही चरित्रोंमें भरे हुए गीतोंको गाती हुई, अपने बन्धुवृन्दोंके विषयमें अर्थात् उदासीनता धारणकर आपकी लीलाभूमि ( वृन्दावन ) में योगिनीकी तरह भ्रमण कर रही हैं' ॥ २१७ ॥ वे गोपियों उन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही मन लगाकर, उनकी ही बात करती हुई, अपनी समस्त चेष्टाएँ उन्हींमें अर्पणकर और तन्मन होकर उन्हींके गुणोंको गाती हुई, अपने परकी याद भूल गयीं ॥ २१८ ॥ जोः दूध दुहने, कटने, दही मचने, लींरने, छाँटने, बालकोंके रोने, धोने और बुहारने आदिके समय भी अभर्षणनेत्र, मद्गद कण्ठ और अनुरक्त बुद्धिमें मगवान्कहा ही यमोगान् कान्ती हैं, वे मगवान् कृष्णमें ही शयना मन लगावे रहनेवाली ब्रह्मज्ञानार्थे धन्य हैं ॥ २१९ ॥

गते गोपीनाथे मधुपुरमितो गोपभवनाद्  
गता यावद्धूली रथचरणजा नेत्रपदवीम् ।  
स्थितास्तावच्छ्रेण्या इव विरहतो दुःखविधुरा

निवृत्ता निष्पेतुः पथिषु शतशो गोपवनिताः ॥२२०॥\*

श्रुतयः पलालकल्पाः किमिह वयं साम्प्रतं चिनुमः ।

अद्वियत पुरैव नयनैराभीरीभिः परं ब्रह्म ॥२२१॥

मुक्तशुनीनां सृग्मं किमपि फलं देवकी फलति ।

तत्पालयति यशोदा प्रकामभुवि भुज्यते गोप्या ॥२२२॥

मक्ता मय्यनुरक्ताश्च कति सन्ति न भूतले ।

किन्तु गोपीजनः प्राणाधिकः प्रियतमो मम ॥२२३॥

नन्ददासे गोपीनाथके मधुपुरी चले जानेपर, अतक उनके रथके पहियोंसे उठी हुई धूलि आँखोंसे दीख पड़ी, तबतक तो वे विरहदुःखसे कातर हुई चिन्नललित-सी खड़ी देखती रहीं, पीछे अब उसका दीखना बन्द हुआ तो सैकड़ों गोपाह्वनाएँ [ सुध-बुध भुलाकर ] मार्गमें गिर पड़ीं ॥ २२० ॥ भ्रष्टियों पुआलके सदृश [ सारहीन हो चुकी ] हैं, इनमें हम अब क्या सोजें ! [ क्योंकि ] इनमें निहित परब्रह्म- ( कृष्ण ) को तो गोपाह्वनाओंने पहले ही नेत्रोंसे हर लिया है ॥ २२१ ॥ निरवमुक्तः मुनिजनोंका बाञ्छनीय कोई फल देवकीमें तो फलता है, यशोदाके यहाँ पालित होता है और ब्रह्ममें गोपियों उसे यथेष्ट भोगती हैं ॥ २२२ ॥ मुझमें अनुरक्त संसारमें कितने भक्त नहीं हैं ! किन्तु मुझे प्राणाधिक प्रियतमा तो गोपबालाएँ ही हैं ॥ २२३ ॥



यं वेद वेदविदपि प्रियमिन्दिराया-  
स्तन्नामिनीरुद्रगर्भगृहो न घाता ।

गोपालबालललना वनमालिनं तं

गोधूलिधूसरशरीरमरीरमंस्ताः ॥२२४॥\*

शीर्णां गोकुलमण्डली पशुकुलं शम्प्राय न स्पन्दते

मूका कोकिलसंहतिः शिखिकुलं न व्याकुलं नृत्यति ।

सर्वे त्वद्विरहेण हन्त नितरां गोविन्द दैन्यं गताः

किन्त्वेका यमुना कुरङ्गनयनानेत्राम्बुभिर्वर्धते ॥२२५॥

कस्मै किं कथनीयं कस्य मनःप्रत्ययो भवति ।

रमयति गोपवधूटी कुञ्जकुटीरे परं ब्रह्म ॥२२६॥

न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्यिव ।

न च लक्ष्मीर्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम ॥२२७॥†

वेदोंके तत्त्वज्ञाता और उन्हींकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलमें निवास करनेवाले ब्रह्मा भी जिन श्रोपतिको न जान सके उन्हीं वनमालीको, जिनका शरीर [ शैशवावस्थामे ] गोधूलिसे धूसरित रहता था, [ गोदीमें बिठाकर ] गोपबालाएँ खेलाया करती थीं ॥ २२४ ॥ [ ब्रजसे लौटकर उद्भवने कहा—] 'हे गोविन्द ! [ आपके बिना ] गोपबालकोंकी मण्डली तितर-बितर हो गयी है, गीएँ अब घासके लिये भी चेष्टा नहीं करती, कोयलोंने बोलना छोड़ दिया है और व्याकुल हुए मयूर अब नाचते ही नहीं हैं, इस प्रकार तुम्हारे विरहसे सभी दीन हो गये हैं; किन्तु एक यमुनाजी ही मृगलोचना ब्रजाङ्गनाओंके आँसुओंसे बढ़ रही हैं' ॥ २२५ ॥ किससे क्या कहा जाय ! [ सुनकर भी ] किसके मनको विश्वास होगा ! अहो ! पर्ण-कुटीमें एक गोपी ( श्रीयशोदाजी ) साक्षात् परब्रह्मको [ गोदमें लेकर ] खेला रही है ! ॥ २२६ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मा, रुद्र, लक्ष्मी तथा स्वयं मेरी आत्मा भी मुझे उतनी प्रिय नहीं है, जितनी कि गोपियाँ हैं ॥ २२७ ॥

श्रीमुरलीसूक्तिः

अयि मुरलि मुकुन्दस्मेरवक्त्रारविन्द-

श्वसनमधुरसङ्गे त्वां प्रणम्याद्य याचे ।

अधरमणिसमीपं प्राप्तवत्यां भवत्यां

कथय रहसि कर्णे महर्शा नन्दसूनोः ॥२२८॥ॐ

लोकानुद्धरयञ्छ्रुतीमुखरयन् धोणीरुहान्दर्पयन्-  
च्छैलान्विद्रवयन्मृगान्विवशयन्गोधृन्दमानन्दयन् ।

गोपान्सम्प्रमयन्मुनीन्मुकुलपन्सप्तस्वराञ्जृम्भय-  
न्नोङ्कारार्थमुदीरयन्विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥२२९॥ॐ

मुखारविन्दनिस्पन्दभरन्दभस्तुन्दिला ।

ममानन्दं मुकुन्दस्य सन्दुग्धां वेषुकाकली ॥२३०॥†

मुकुन्दके मुखकानयुक्त मुखकमलसे निकलते हुए भासके मधुर रसकी जाननेवाली अरी मुरलिके ! आज मैं प्रणाम करके तुझसे एक याचना करता हूँ, कि जबतू भगवान्की अधरमणिके पास पहुँचे तो एकान्तमें उस नन्दकिशोरके कातमें मेरी दशा भी कह देना ॥ २२८ ॥ लोकोंका उद्धार, भूतियोंकी शम्दायमान, तरुवृक्षोंको प्रकुलित, पर्वतोंको द्रवीभूत, मृगोंको विवश, गोरुन्दको आनन्दित, गोपोंको विस्मित, मुनियोंको आमोदित, सप्त स्वरोको प्रकाशित और प्रणवायंकी उद्घोषित करनेवाले, धातुगोपालके वंशीनिनादकी बलिहारी है ॥ २२९ ॥ मुकुन्दके मुखकमलसे निकले हुए मकरन्दविन्दुओंसे भरी हुई वंशीकी गुञ्जार मेरे आनन्दकी वृद्धि करे ॥ २३० ॥

• श्रीमुरलीसूक्ति १॥११, १११। † श्रीरूपगोविन्दविभो जगुषायकव्यासः ।

मुरहर रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम् ।  
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतनुताम् ॥२३१॥

ध्यानं बलात् परमहंसकुलस्य भिन्दन्  
निन्दन् सुधामधुरिमानमधीरधर्मा ।  
कन्दर्पशासनधुरां मुहुरेव शंसन्  
वंशीध्वनिर्जयति कंसनिपूदनस्य ॥२३२॥

भिन्दन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपदं कुर्वन् मुहुस्तुम्बुरं  
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान्संस्तम्भयन् वेधसम् ।  
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं विवलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्  
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो वभ्राम वंशीध्वनिः ॥२३३॥

हे मुरारे ! भोजन पकानेके समय आप मुरलीका मधुर रव न किया करे, क्योंकि उरासे ये सूखी लकड़ियों सरस हो जाती हैं और अग्नि भी मन्द पड़ जाती है ॥ २३१ ॥ जो परमहंसोंके ध्यानको बलपूर्वक मत्त करती है, मुपाके माधुर्यको पीका बताती है, धैर्यका अपहरण करना जिसका मुख्य धर्म हो रहा है, जो बार-बार कन्दर्पके शासनका भार अपने सिर ले रही है; उम भगवान् कंस-निपूदनकी वंशीध्वनिकी बलिहारी है ! ॥ २३२ ॥ मेघमालाको टिन्न भिन्न कर [ऊपर पहुँच] मन्धरराज तुम्बुरुको आधर्यमे डालना हुआ, सनन्दनादि योगियोंको ध्यानमे विचलित कर ब्रह्मार्जाको मन्थ करता हुआ और [नोचे ही ओर पाताऊँ पहुँच] राजा बलिओ अत्यन्त उत्कण्ठावश चञ्चल करके नागराज अनन्तदेवको कम्पित करना हुआ, भगवान्का वेणुनाद ब्रह्माण्डकटाहकी दीवार धेप कर सब ओर धर्मीम अनन्तमे फैल गया ॥ २३३ ॥

श्रीवृन्दावनसूक्तिः

वृन्दारण्ये चर चरण दृक् पश्य वृन्दावनश्री-  
 जिह्वे वृन्दावनगुणगणान् कीर्त्तय श्रोत्रदृष्टान् ।  
 वृन्दाटव्या भज परिमलं घ्राण गात्र त्वमसिन्  
 वृन्दारण्ये लुठ पुलकितं कृष्णकेलिस्थलीषु ॥२३४॥\*  
 कदा नु वृन्दावनकुञ्जमण्डले भ्रमभ्रमं हेमहरिन्मणिप्रभम् ।  
 संस्मृत्य संस्मृत्य तदद्भुतं प्रियं द्वयं द्वयं विस्मृतिमेतु मेऽखिलम्\*  
 कदा नु वृन्दावनवीथिकास्रहं परिभ्रमञ्छ्यामलगौरमद्भुतम् ।  
 किशोरमूर्तिद्वयमेकजीवनं पुरःस्फुरद्दीक्ष्य पतामि मूर्छितः २३६\*



हे चरणो ! वृन्दावनमें चलो, हे नेत्रो ! वृन्दावनकी शोभा  
 निहारो, हे जिह्वे ! कानीसे सुनी हुई वृन्दावनकी गुणावलीका  
 गान कर, हे माण ! वृन्दावनकी गुणगंधका अनुभव कर और हे  
 शरीर ! तू इस वृन्दावनके भीतर कृष्णके श्रीदारपल्लीमें पुलकित  
 होकर बारंबार लोट ॥ २३४ ॥ वृन्दावनके निकुञ्जमें घूम-घूमकर स्वर्ण  
 और हरितमणिके समान कान्तिवाली [ भीराघा-माधवकी ]  
 अति अद्भुत और प्यारी सुगन्ध जोड़ीको याद कर-करके मैं कब  
 सब कुछ भूल जाऊंगा ? ॥ २३५ ॥ श्रीवृन्दावनकी गलियोंमें  
 विचरता हुआ किशोर और किशोरीकी अति अद्भुत प्रियम-मौर,  
 बणेशानी एक-माणमयी दोनों मूर्तियोंको सम्मुख देदीप्यमान हुई देखकर  
 मैं कब [ मेमाबेउके ] मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ेगा ? ॥२३६ ॥



ॐ

## पद्योल्लास



### श्रीहरिहरसूक्तिः

हरिरेव हरो हर एव हरिर्न द्वि भेदलवोऽपि तयोः प्रथितः ।  
इति सिद्धमुनीशयतीशवरा निगदन्ति सदा विमदाः सुजनाः १\*  
भीमाकृतिं वा रुचिराकृतिं वा त्रिलोचनं वा समलोचनं वा ।  
उमापतिं वाथ रमापतिं वा हरिं हरं वा मुनयो भजन्ते ॥ २ ॥\*  
सच्चित्स्वरूपं करुणासुकूपं गीर्वाणभूपं वरघर्मयूपम् ।  
संसारसारं सुरुचिप्रसारं देवं हरिं वा भज भो हरं वा ॥ ३ ॥\*

विष्णु ही शङ्कर हैं और शङ्कर ही विष्णु हैं, इन दोनोंमें लेशमात्र भी भेद नहीं है, इस प्रकार सिद्ध, मुनीश्वर, अभिमानशून्य सजन और बड़े-बड़े यति सदा कथा करते हैं ॥ १ ॥ मुनिगण भयङ्कररूप या सुन्दर-रूपवाले, त्रिनेत्र या द्विनेत्र, पार्वतीपति या लक्ष्मीपति, शिव अथवा विष्णुको भजते हैं ॥ २ ॥ सच्चित्स्वरूप और दयानिधान, देवादिदेव और सद्गमोंके आधार, प्रेमका विस्तार करनेवाले संसारके सारभूत भगवान् शङ्कर या विष्णुका, हे लोगो ! भजन करो ॥ ३ ॥

\* श्रीबन्धुनाथमल हरिहरस्तोत्रात् ।

हरिरेव बभूव हरः परमो हर एव बभूव हरिः सरमः ।

हरिता हरता च तथा मिलिता रचयत्यखिलं खलु विश्वमिदम् ४३

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे

शम्भो शिवेश शशिरोत्तर शूलपाणे ।

दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव

त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥ ५ ॥



### सूर्यसूक्तिः

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।

कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जपति धाम्नां निधिः सूर्यः ॥ ६ ॥

श्रीहरि ही सर्वभेष्ट महादेव हुए हैं और श्रीमहादेवजी ही लक्ष्मीजीसाहित भगवान् विष्णु हुए हैं; इस प्रकार वैष्णवी और शैवी दोनों शक्तियाँ सम्मिलित होकर इस सारे विश्वको रचती हैं ॥ ४ ॥ [ धर्मराजने कहा— ] जो श्लोक गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भो, शिव, ईश, शशिरोत्तर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन, वासुदेव !— इस प्रकार निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं, वे दूतो । उन्हें [ दूरसे ही ] स्वागत देना ॥ ५ ॥



देवताओंके मुकुटोंसे [ चारंबार नमस्कार किये जानेके कारण ] त्रिनेत्रके चरण-कमल पिस गये हैं, वे शिवजी भी जिन्हें उदय और अस्त होते समय हाथ जोड़ते हैं, उन तैजोमण्डल ॥ ६ ॥

भास्वद्रनाड्यमालिः स्फुरदधररुचा रञ्जितशारुकेशो  
 भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णप्रमामिः ।  
 विश्वाकाशावकाशग्रहपतिशिखरे माति यशोदयाद्री  
 सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः ॥ ७

### गंगासूक्तिः

मातर्गङ्गे तरलतरङ्गे सततं वारिधिवारिणि सङ्गे ।  
 मम तव तीरे पिवतो नीरं 'हरि हरि' जपतः पततु शरीरम् ॥८  
 नमस्तेऽस्तु गङ्गे त्वदङ्गप्रसङ्गाद्भुजङ्गास्तुरङ्गाः कुरङ्गाः प्लवङ्गा  
 अनङ्गारिरङ्गाः ससङ्गाः शिवाङ्गाभुजङ्गाधिपाङ्गीकृताङ्गा भवन्ति

जो अत्यन्त चमकीले रत्नोंका मुकुट धारण किये हुए हैं, जगमगाए  
 हुए लाल ओठोंसे मुशोभित हैं, सुन्दर केशधारी हैं तथा जो प्रभामय ए-  
 दिव्य तेजसे सम्पन्न हो हाथोंमें कमल धारण किये हुए अपनी सुन्दर  
 कान्तियोंसे उस उदयगिरिरर मुशोभित होते हैं जो कि अपने शिखरपर  
 विश्व, आकाश और ग्रहपतियोंको स्थान देता है, ऐसे सर्वानन्ददाता  
 विष्णु-शिवादिसे नमस्कृत जगत्के नेत्ररूप सूर्य हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

चञ्चल तरङ्गवाली और सदा समुद्रके जन्ममें मिलनेवाली मातः  
 गङ्गे ! तेरे तीरपर तेरा जल पान करते हुए और 'हरि हरि' जपते  
 हुए मेरा शरीरपात हो ॥ ८ ॥ हे गङ्गे ! तुम्हारे शरीरके संसर्गसे सौंप,  
 धोड़े, हरिण और बन्दर आदि भी कामारि शिवके समान वर्णवाले, शिवके  
 सङ्गी और [ उन्हींके समान ] कल्याणमय शरीरवाले होकर, अङ्गमें  
 भुजङ्गराजोंको लपेटे हुए सानन्द विचरते हैं; अतः तुमको नमस्कार है ॥९॥

कृत्यधीणि करोदयः कति कति द्वीपिद्विपानां त्वचः  
काकोलाः कति पन्नगाः कति सुधाधाम्नथ खण्डाः कति ।  
किं च त्वं च कति त्रिलोकजननि त्वद्वारिपूरोदरे  
मञ्जुजन्तुकदम्बकं समुदयत्येकैकमादाय यत् ॥१०॥\*

शुभतरकृतयोगाद्विधनाथप्रसादाद्

भवहरवरविद्यां प्राप्य काश्यां हि गङ्गे ।

भगवति तत्र तीरे नीरमारं निषीय

मुदितहृदयकुञ्जे नन्दघनुं भजेऽहम् ॥११॥†



हे त्रिलोकमाता ! तेरी जन्मधारामें आँसू, नरमुण्ड, व्याघ्र तथा  
शायीके घमड़े, हाथारह, सर्प और चन्द्रमाके डुकड़े जितने हैं ! तथा तू  
भी कितनी है ! ओ कि तुझमें डुबडी लगानेवाले सभी जीव, इनमेंसे मत्स्यके  
बालुकी साथ लेकर बाहर निकलते हैं [ अर्थात् शिवरूप होकर कृतकृत्य  
हो जाते हैं ] ॥१०॥ हे भगवति गङ्गे ! अपने शुभकर्मोंके योग और विध-  
नाथजीके अनुग्रहमें संसारसे पार करनेवाणी उत्तम विद्याकी प्राप्ति करके  
काशीमें तुम्हारे तीरपर [ रहकर ] सारभूत जन्मको पीता हुआ मैं अपने  
आनन्दमय हृदयकुञ्जमें नन्दनन्दन कृष्णको भजता हूँ ॥ ११ ॥







मातर्देवि कलिन्दभूधरसुते नीलाम्बुजश्यामल-  
स्निग्धोद्यद्विमलोर्मिताण्डवधरे तुभ्यं नमस्कृमहे ।  
त्वं तुर्याप्यसि यत्प्रिया मुररिपोस्तद्राल्यतारुण्ययो-  
र्लीलानामवधायिकान्यमदिपीवृन्देषु वन्द्याधिकम् ॥१५॥\*

गणेशसूक्तिः

गौरीश्रवःकेतकपत्रमङ्गमाकृष्य हस्तेन ददन्मुखाग्रे ।  
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदन्तप्ररोहो हरतु द्विपास्यः ॥१६॥†  
योगं योगविदां विधृतविविधव्यासङ्गशुद्धाशय-  
प्रादुर्भूतसुधारसप्रसृमरघ्यानास्पदाध्यासिनाम् ।

नील कमलके समान श्यामल स्निग्ध निर्मल उच्चाल तरङ्गोंका  
ताण्डव धारण करनेवाली, कलिन्द पर्वतकी कन्या, माता देवि  
यमुने ! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं । तुम तुरीया भी हो, क्योंकि  
मुरद्वैत्यके शत्रु भगवान् कृष्णकी प्रियतमा हो और उनके बचपन  
तथा शौशनकी लीलाओंकी अधिष्ठात्री एवं अन्य पटरानियोंमें सबसे  
अधिक बन्दनीया हो ॥ १५ ॥



पार्वतीजीके कानमें पहने हुए केतकपत्रको घुँड़से खींचकर  
मुखके अपरभागमें लगाते समय क्षणभरके लिये जिनके मुखसे  
द्वितीय दाँतका अद्भुत-सा निकलता जान पड़ा, वे भगवान्  
राजानन मेरे विघ्नको हर लें ॥ १६ ॥ जो नाना मूर्तिकी आसक्तियोंसे  
रहित विमुक्त अन्तःकरणमें अक्षतरसको प्रकट करनेवाले दीर्घ ध्यानमें

\* रमेशचरित्रनुविरचितवसुनाटकम् । † रामायणभाष्यस्य मुहूर्तचिन्तामणेः ।

आनन्दसुवमानत्रोधमधुरामोदच्छटामेदुरं  
 तं भूमानमुपासहे परिणतं दन्तावलास्यात्मना ॥  
 भ्राम्यन्मन्दरपूर्णनापरघशशीराधिषीचिच्छटा-  
 सच्छायाश्वलचामरव्यतिकरश्रीगर्वसवंकयाः ।  
 दिक्कान्ताधनसारचन्दनरसासाराः श्रयन्तां मनः  
 स्वच्छन्दप्रसरप्रलित्तवियतो हेरम्बदन्तत्वपः ॥  
 मुक्ताजालकरम्बितप्रविकसन्माणिक्यपुञ्जच्छटा-  
 कान्ताः कम्बुकदम्बचुम्बितधनाभोगप्रवालोलपमाः ।  
 ज्योत्स्नापूरतरङ्गमन्थरतरत्सन्ध्यावयस्याश्विरं  
 हेरम्बस्य जयन्ति दन्तकिरणाकीर्णाः शरीरत्वपः ॥१४

तत्पर हुए योगियोंके योग ( प्रासव्य ) है, आनन्दमें तरङ्गावमान  
 जन्य मधुर आमोदकी छटासे स्निग्धवर्ण हुए गजाननरूपमें परिणत उन  
 ( पूर्ण ) परमात्माकी हम उपासना करते हैं ॥ १७ ॥ [ समुद्रमन्थ  
 समय ] मन्दराचलके घूमनेसे धुन्ध हुए धीर-सागरकी लहरोंके स  
 जिसकी उज्वल कान्ति है, जो चञ्चल चँबरकी शोभाका गर्व  
 करनेवाली है जिसके स्वच्छन्द प्रसारसे आकाश लित हो रहा  
 दिग्गजनाओंके शरीरपर धनसार और चन्दनरसकी वर्षा करनेवा  
 वह गणेशजीके दाँतोंकी प्रभा मेरे हृदयमें प्रकाशमान हो ॥ १८ ॥  
 मोतियोंसे मिले हुए विकसित माणिक्य-पुञ्जकी-सी जिसकी कमल  
 कान्ति है, जिसकी उपमा शङ्खसमूहसे चुम्बित धनके नूतन पल्लवोंसे  
 रही है जो धनीभूत चाँदनीकी तरङ्गोंमें मन्द-मन्द तैरती हुई सन्ध्य  
 समान शोभा पाती है, दाँतोंकी किरणोंसे व्याप्त हुई गणेशजीके शरीर  
 यह प्रभा सर्वदा विजय पा रही है ॥ १९ ॥

सरस्वतीसूक्तिः

रविहृद्रपितामहविष्णुनुतं हरिचन्दनकुङ्कुमपङ्कयुतम् ।  
 मुनिपृन्दगणेन्द्रसमानपुतं तव नमि सरस्वति पादपुगम् ॥२०॥\*  
 यः कश्चिद्व्युद्धिहीनोऽप्यविदितनमनध्यानपूजाविधानः  
 कुर्याद्यद्यम्ब सेवां तव पदसरसीजातसेवारतस्य ।  
 चित्रं तस्यास्यमभ्यात्प्रसरति कविता वाहिनीवामराणां  
 सालङ्कारा सुवर्णा सरसपदयुता यत्तलेयं विनैव ॥२१॥†  
 सेवापूजानमनशिष्यः सन्तु दूरे नितान्तं  
 कादाचित्की स्मृतिरपि षडाम्मोजपुग्मस्य तेऽम्ब ।

हे मातः सरस्वति ! सूर्य, शिव, ब्रह्मा, और भगवान् विष्णु त्रिनार मस्तक घुकाते हैं, त्रिनार हरिचन्दन और कुङ्कुमका अनुष्ठेय हुआ है और मुनियोंका समूह तथा गणेशजी-जैसे देवता त्रिनका सेवन करते हैं उन तुम्हारे दोनों चरणोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २० ॥ हे जननि ! नमन, ध्यान और पूजनकी विधिको न जानने-वाला कोई बुद्धिहीन पुरुष भी यदि तुम्हारी सेवा करने लग जाय तो आश्चर्य है कि तुम्हारे चरणकर्मणोंकी सेवामें तत्पर हुए उस भक्तके मुण्डले थोड़ा भी यत्न बिधे बिना ही देवकी मालाकी तरह अलङ्कार, सुन्दर कर्ण और शरस पदोंमें मुक्त कविताका प्रसार होने लगता है ॥ २१ ॥ हे मातः ! सेवा, पूजा और नमनको विधिकों से अत्यन्त दूर रहें, आपके पुण्य चरणार्चकोंकी कभी-कभी की हुई स्मृति भी गौरीकी वास्तविक

\* इन्द्रकोपनुलादारे प्रहरितत्रिनारस्वतीसुखात् । † अतएवम्भिर-  
 भारतीभानिर्वरिषाणां (शारदात्) ।

ॐ रङ्गं फलयति सुराचार्यमिन्द्रं च वाचा ।  
 त्स्या लोको न च फलयते तां कलेः किं हि दीःस्थ्यम् ॥२२॥  
 । हि शब्दे किमु मुख्यवृत्त्या स्थिताहमेवंति विवोधनाय ।  
 मासि हंसे जगदम्बिके स्वमित्यसदीये हृदये विमाति ॥२३॥  
 ॐ ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं  
 णापुस्तकधारिणीमभयदां जाल्यान्धकारापहाम् ।  
 त्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां  
 दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥२४॥

देकर बृहस्पति बना देती है और दरिद्रको लक्ष्मी देकर इन्द्रके समान  
 कर देती है । संसार स्वयं वाणी या लक्ष्मीको नहीं प्राप्त कर सकता ।  
 [ आपकी कृपा होनेपर ] कलिकी दुष्टता क्या कर सकती है ! ॥ २२ ॥  
 हे जगदम्ब ! क्या तुम यह सूचित करनेके लिये ही हंसपर सुशोभित  
 होती हो कि 'मैं मुख्य वृत्ति ( अभिधा शक्ति ) से हंस शब्द [ के वाच्य  
 शानी परमहंसजनों ] में ही स्थिर रहती हूँ ।' मेरे हृदयमें तो ऐसा ही मान  
 हो रहा है ॥२३॥ जिनका वर्ण श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम सारभूत  
 हैं, आदि शक्ति हैं, सारे संसारमें व्यापक हो रही हैं, वीणा और पुस्तक  
 हाथोंमें धारण किये हैं, मूर्खतारूपी अन्धकारको नाश करनेवाली हैं,  
 हाथमें स्फटिककी माला धारण किये रहती हैं, कमलके आसनपर  
 विराजमान हैं, उन बुद्धिदायिनी परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी मैं  
 वन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

\* जगद्गुरुशक्तिहभारतीस्वामिचिरचितशारदापट्टकात् । † श्रीमदभिनव-  
 शक्तिहभारतीस्वामिचिरचिणशारदास्तोत्रात् ।

ॐ

## सप्तमोऽङ्कः

—१००३—

### धर्मसूक्तिः

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुविष्टन्नि मानवः ।

इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ १ ॥\*

॥ १ ॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।

॥ २ ॥ ते सवर्षिष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो ह निर्वर्भा ॥ २ ॥\*

॥ मनुष्य वेद और स्मृतिमें कहे हुए धर्मका पालन करता हुआ, इस संसारमें यश प्राप्त करता है और मरकर परम उत्तम सुख पाता है ॥ १ ॥ वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति जानना चाहिये । सभी विषयोंमें उन दोनोंको बिना विचारे ही मान लेना चाहिये, क्योंकि इनसे ही धर्म उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥

न निष्ठति तु गः पूर्वा नोत्तान्ने यत्र पशिमाम् ।  
 स शूद्रवदधिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥१४॥  
 अनभ्यासेन वेदानामाधारस्य च वर्जनान् ।  
 आत्मनादश्रदोताथ मृन्युर्विश्राद्धिर्षामनि ॥१५॥  
 न हायनेर्न पतिनेर्न विचेन न बन्धुभिः ।  
 क्रमयथकिरे धर्मं गोञ्जुनानः स नो मदान् ॥१६॥  
 नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्विष्वपितृत्तर्पणम् ।  
 देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥१७॥  
 यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यत्र दुष्करम् ।  
 सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥१८॥

जो मनुष्य न तो प्राणःमनुष्योपासन करता है और न मायं  
 सम्भ्योपासन करता है वह शूद्रके समान सम्पूर्ण द्विज-कर्मोंसे ब्राह्-  
 निकाल देनेयोग्य है ॥ १४ ॥ वेदांका अभ्यास न करनेसे, आवा-  
 छोड़ देनेसे, आलस्यसे और असके दोषसे मृत्यु द्विजोंको मारना चाहत  
 है ॥ १५ ॥ न बहुत बर्षोंसे, न पके हुए इरेन बालोंसे, न धनसे, और न  
 भार्द-बन्धुओंसे ही कोई बड़ा होता है । ऋषियोंने यह धर्म निश्चय किया है  
 कि जो अज्ञोसहित वेद पढ़नेवाला है वही हम लोगोंमें बड़ा है ॥ १६ ॥  
 ब्रह्मचारी नित्य स्नानसे शूद्र होकर देव-ऋषि-पितृत्तर्पण और देवताओंका  
 पूजन तथा अग्निहोत्र करे ॥ १७ ॥ जो दुस्तर है, दुःस्तसे प्राप्त होने-  
 योग्य है, कठिनतासे गमन करनेयोग्य है, और दुष्कर है वह सब तपसे  
 साध्य हो सकता है, क्योंकि तपका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।  
 चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥१९॥  
 मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।  
 दुहित्वा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥२०॥  
 आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।  
 नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥२१॥  
 यं मातापितरौ क्लेशं सहते संभवे नृणाम् ।  
 न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२॥  
 तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।  
 तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२३॥  
 सर्वे तस्यादत्ता धर्मा यस्यैते त्रय आदत्ताः ।  
 अनादत्तास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥२४॥

त्रिसका प्रणाम करनेका स्वभाव है और जो नित्य वृद्धोंकी सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं ॥ १९ ॥ माता, पिता, बरन, भाई, पुत्र, ली, बेटी और नौकर-चाकर—इनके साथ वाद-विवाद न करे ॥ २० ॥ आचार्य, पिता, माता और बड़ा भाई—इनका दुःखी मनुष्य भी अपमान न करे और विशेषकर ब्राह्मण तो कभी इनका अपमान न करे ॥ २१ ॥ मनुष्यकी उत्पत्तिके समय माता-पिता जो वरेश सहते हैं उसका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता ॥ २२ ॥ इसलिये नित्य ही उन दोनोंका और आचार्यका भी सर्वदा प्रिय करे, इन तीनोंके तुष्ट होनेपर सब तप समाप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ जिसने इन तीनोंका आदर किया उसने सब धर्मोंका आदर कर दिया और जिसने इनका अनादर किया उसके सब काम निष्फल हैं ॥ २४ ॥



घना गृहस्यस्य ह्यी पेपण्युपस्करः ।  
 कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥२५॥  
 अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।  
 होमो दैवो बलिर्भांतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥२६॥  
 पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न ह्यपयति शक्तिः ।  
 स गृहेऽपि वसन्नित्यं घनादोर्पेर्न लिप्यते ॥२७॥  
 नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।  
 जानन्नपि हि मेधावी जडबल्लोक आचरेत् ॥२८॥  
 अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।  
 अपुष्यं लोकत्रिद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥२९॥  
 सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।  
 प्रियं च नानृतं ब्रूयादेप धर्मः सनातनः ॥३०॥

गृहस्यके घरमें चूल्हा, चकी, बुहारो, ओखली और जलका घड़ा-ये पाँच  
 हिस्सके स्थान हैं इनको काममें लानेमें गृहस्य पापमें बँधता है ॥ २५ ॥  
 पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृ-यज्ञ है, दहन देव-यज्ञ है, बलिबैश्वदेव  
 भूत-यज्ञ है और अतिथि-पूजन मनुष्य-यज्ञ है ॥ २६ ॥ जो द्विज इन  
 पाँच महायज्ञोंको शक्तिभर नहीं छोड़ता है वह घरमें रहता हुआ भी  
 नित्यकी [ पाँच ] हत्याके दोषसे पित्त नहीं होता ॥ २७ ॥ बुद्धिमान  
 पुरुषको चादिये कि बिना पूछे और अन्यायमें पूछनेपर कोई उत्तर  
 न दे । वह जानता हुआ भी लोकमें मूढ़के समान आचरण  
 करे ॥ २८ ॥ अधिक भोजन करना आरोग्य, आयु, स्वर्ग  
 और पुण्यका नाशक तथा लोकनिन्दित है; इसलिये उसे त्याग  
 दे ॥ २९ ॥ ऐसी सत्य बात बोले जो प्यारी लगे और जो सत्य  
 तो हो किन्तु प्यारी न लगे ऐसी बात न कहे, और जो  
 प्यारी बात झूठी हो उसे भी न कहे—यही सनातनधर्म है ॥ ३० ॥

ॐ धर्मसूक्ति ॐ

\*\*\*\*\*

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्  
 एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥  
 विपादप्यमृतं ब्राह्मं बालादपि सुमापितम् ।  
 अमित्रादपि सद्बृत्तमभेभ्यादपि काञ्चनम् ।  
 लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः  
 स विनाशं ब्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ।  
 अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी  
 संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ।  
 ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः  
 महाहन्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ।

पराधीन सब कुछ दुःखरूप है और स्वामीन सब सुखरूप  
 संशेषसे सुख-दुःखका लक्षण जानना चाहिये ॥३१॥ विपत्तेशी  
 बालको भी सुन्दर बचनको, वैरीसे भी सुन्दर आचरणको औ  
 जगद्दृष्टे मो सुषर्णको ले लेना चाहिये ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य  
 टेलेको मन्ता है, तृण सोड़ता है, नखीको चबाता है, चुग  
 है और अपवित्र रहता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥  
 लिये ) संमति देनेवाला, काटनेवाला, मारनेवाला, खरीद  
 वाला, पचानेवाला, लानेवाला और खानेवाला ये घातक  
 ॥३४॥ ब्रह्महत्या, मद्यपान, सुवर्ण आदिकी चोरी, गुण  
 और इन चारोंका संसर्ग—ये [ पाँच ] महापातक हैं

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।  
 योर्ध्वं शुचिर्द्विंश शुचिर्न मृद्गारिशुचिः शुचिः ॥३६॥  
 तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च घ्नृता ।  
 एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥३७॥  
 शस्त्रं द्विजातिमिग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।  
 द्विजातीनां च वर्णानां विप्रवे कालकारिते ॥३८॥



### स्त्रीधर्माः

वालये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यावने ।  
 पुत्राणां भर्तारि प्रेते न मजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥३९॥

सब शुद्धियोंमें घनकी पवित्रता ही श्रेष्ठ कही है क्योंकि जो घन शुद्ध है वही शुद्ध है; मिट्टी और जलकी शुद्धि, शुद्धि नहीं कही जाती—[ भाव यह है कि जो पराया घन नहीं हरता और न्यायसे घनोपार्जन करता है वह शुद्ध है और जो अन्यायसे द्रव्य हरता है, किन्तु मिट्टी लगा-लगाकर स्नान करता है वह पवित्र नहीं है ] ॥ ३६ ॥ [ अतिथि-सत्कारके लिये ] तृणमय आसन बैठनेकी भूमि, जल और चौथी मीठी वाणी—इनकी कमी सत्रनोंके धर्मकी कमी नहीं होती है ॥ ३७ ॥ जब द्विजातियोंका धर्म रोक जाय अथवा समयके प्रभावसे वर्णविप्रव होने लगे उस समय द्विजोंको भी शस्त्र ग्रहण करना चाहिये ॥ ३८ ॥



स्त्री शाल्यावस्थामें पिताके वशमें, शौचनावस्थामें पतिके वशमें, और पतिके मरनेके बाद पुत्रोंके वशमें रहे; स्वतन्त्र कभी न रहे ॥ ३९ ॥

सदा प्रहृष्टया भाग्यं गृहकार्येषु दक्षया ।

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥४०॥\*

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ।

पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गं महीयते ॥४१॥\*

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।

श्रीचि धर्मेऽन्नपक्वत्यां च परिणाहस्य वेक्षणे ॥४२॥\*

पानं दुर्बलसंसर्गः पत्या च विरहोऽनम् ।

स्वप्नोऽन्यगोहवासश्च नारीणां दूषणानि पट् ॥४३॥\*

चलन्ति तारा रविचन्द्रमण्डलं चलेच्च मेरुर्विचलेच्च मन्दिरम् ।

कदापि काले पृथिवी चलेच्च वै चलेन्न धर्मः सुजनस्य वाक्यम् ४४

स्त्रीको चाहिये कि सदा प्रसन्न चित्त रहे, घरके कामोंमें कुशल हो, परकी सामग्रीको खन्टी तरह रखे और हाथ रोककर खर्च करे ॥४०॥ रिजयोंको [पति-सेवाके सिवा] अलग यज्ञ, व्रत और उपवास करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि स्त्री जो पतिकी सेवा करती है उसीसे स्वर्गमें आदर पाती है ॥४१॥ धन-संग्रह, व्यय, शरीर आदिकी शुद्धि, धर्म, रहोई बनाना तथा परकी सामग्रीको देख-भाल—इन कामोंमें ही रिजयोंको लगावे ॥ ४२ ॥ मद्य पीना, दुर्बलताका संसर्ग, पतिका विरह, हथ-उधर घूमना, कुसमयमें सोना और दूसरेके घरमें रहना—ये रिजयोंके छः दोष हैं ॥ ४३ ॥ ताराएँ, सूर्य, चन्द्र, मेरु, मन्दिराचल और किसी समय पृथिवी भी विचलित हो सकती है, परन्तु धर्म और सुजनोंके वाक्य कभी नहीं विचलित होते ॥ ४४ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ ४५ ॥



### वीतिसूक्तिः

विद्वच्चञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन ।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ ४६ ॥\*

पण्डिते च गुणाः सर्वे मूर्खे दोषा हि केवलम् ।

तस्मान्मूर्खसहस्रेभ्यः प्राज्ञ एको विशिष्यते ॥ ४७ ॥\*

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।

वर्जयेत्तादृशं मित्रं विपकुम्भं पयोमुखम् ॥ ४८ ॥\*

शरीर अनित्य है, धन भी सदा रहनेवाला नहीं, मृत्यु सदा पास ही रहती है, इसलिये धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ ४५ ॥



विद्वत्ता और राजपद—इन दोनोंकी तुलना कदापि नहीं हो सकती; राजा अपने ही देशमें आदर पाता है, किन्तु विद्वान् सब जगह आदर पाता है ॥ ४६ ॥ पण्डितोंमें सब गुण ही रहते हैं और मूर्खोंमें केवल दोष ही; इसलिये एक पण्डित हजार मूर्खोंमें भी उत्तम है ॥ ४७ ॥ जो आँसूके ओट होनेपर काम बिगाड़े और सम्मुख होनेपर मीठी-मीठी बात बनाकर कड़े ऐंसे मित्रको मुखपर दूष तथा मीठर विषमें मरे पड़ेके समान त्याग देना चाहिये ॥ ४८ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।  
 विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ ४९ ॥\*  
 ताराणां भूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः ।  
 पृथिव्या भूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥ ५० ॥\*  
 कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ।  
 काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुःपीडैव केवलम् ॥ ५१ ॥\*  
 लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।  
 प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥ ५२ ॥\*  
 एकेनापि सुपुत्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।  
 वासितं स्याद् धनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ५३ ॥\*

जो विद्याहीन है वे यदि रूप और यौवनसे सम्पन्न हों तथा उच्च कुलमें उत्पन्न हुए हों तो भी गन्धहीन देखके फूलकी तरह शोभा नहीं पाते ॥ ४९ ॥ ताराओंका भूषण चन्द्रमा, स्त्रीका भूषण पति और पृथिवीका भूषण राजा है, किन्तु विद्या सभीका भूषण है ॥ ५० ॥ जिसमें विद्या और भक्ति नहीं ऐसे पुत्रके होनेसे क्या लाभ है ? कानी धाँसके रहनेसे क्या लाभ ? उससे तो केवल नेत्रकी पीड़ा ही होती है ॥ ५१ ॥ पाँच वर्षकी अवस्थातक पुत्रकी लालना करनी चाहिये, उसके बाद दश वर्ष [ अर्थात् पाँच वर्षके पन्द्रह वर्षकी अवस्था ] तक उसे ताड़ना देना चाहिये और जब वह सोलहवें वर्षकी अवस्थामें पहुँचे, तो उससे मित्रके समान वर्ताव करना चाहिये ॥ ५२ ॥ जैसे एक ही उत्तम वृक्ष विकसित होकर अपनी सुगन्धसे समस्त वनको सुवासित कर देता है, वैसे ही एक सुपुत्र समस्त कुलको यशका भागी बनाता है ॥ ५३ ॥

एकेन शुष्कवृक्षेण दक्षमानेन वह्निना ।  
 दक्षते हि धनं गर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ५४ ॥  
 निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।  
 न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेदमनि ॥ ५५ ॥  
 विद्या मित्रं प्रवासेषु माता मित्रं गृहेषु च ।  
 व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ ५६ ॥  
 न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्विपुः ।  
 व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥ ५७ ॥  
 दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।  
 मधु तिष्ठति जिह्वाप्रे हृदये तु हलाहलम् ॥ ५८ ॥  
 दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।  
 मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ५९ ॥

जिस प्रकार एक ही सूखा वृक्ष स्वयम् आगसे जलता हुआ समस्त वनके  
 जला देता है, उसी प्रकार एक ही कुपुत्र अपने वंशके नाशके  
 कारण होता है ॥ ५४ ॥ जैसे चन्द्रमा चाण्डालके घरको अपने  
 किरणोंसे वञ्चित नहीं रखता; वैसे ही सत्रन पुरुष गुणहीन प्राणियोंपर  
 भी दया करते हैं ॥ ५५ ॥ परदेशमें विद्या मित्र है, घरमें माता मित्र है  
 रोगीका औषध मित्र है, और मृत व्यक्तिका धर्म मित्र है ॥ ५६ ॥ कोई  
 किसीका मित्र नहीं और कोई किसीका शत्रु नहीं है । बर्तावसे ही मित्र  
 और शत्रु उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ दुष्ट व्यक्ति मीठी बातें करनेपर  
 भी विश्वास करनेयोग्य नहीं होता, क्योंकि उसकी जीमपर शहदके देखा  
 मिठास होता है परन्तु हृदयमें हलाहल विष भरा रहता है ॥ ५८ ॥  
 दुष्ट व्यक्ति विद्यासे भूषित होनेपर भी त्यागने योग्य है; जिस सर्पके  
 भस्त्रकपर मणि होती है, वह क्या भयङ्कर नहीं होता ! ॥ ५९ ॥

सदा प्रहृष्टया माण्यं गृहकार्येषु दक्षया ।  
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चासुक्तहस्तया ॥४०॥\*  
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ।  
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गो महीषते ॥४१॥\*  
अर्धस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।  
शौचे धर्मोऽन्नपक्त्वां च परिणाहस्य वैक्षण्ये ॥४२॥\*  
पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽनम् ।  
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥४३॥\*

चलन्ति तारा रविचन्द्रमण्डलं चलेच्च मेरुर्विचलेच्च मन्दिरम् ।  
कदापि काले पृथिवी चलेच्च वै चलेन्न धर्मः सुजनस्य वाक्यम् ४४

स्त्रीको चाहिये कि सदा प्रसन्न चित्त रहे, घरके कामोंमें कुशल हो, घरकी सामग्रीको अच्छी तरह रखे और हाथ रोककर खर्च करे ॥४०॥ शिवयोंको [पति-सेवाके सिवा] अलग यज्ञ, व्रत और उपवास करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि स्त्री जो पतिकी सेवा करती है उसीसे स्वर्गमें आहर पाती है ॥४१॥ धन-संग्रह, व्यय, शरीर आदिकी शुद्धि, धर्म, रसोई बनाना तथा घरकी सामग्रीको देख-भाल—इन कार्योंमें ही शिवयोंको लगाना ॥ ४२ ॥ मद्य पीना, दुर्जनोंका संसर्ग, पतिका विरह, इष्य-उष्य घूमना, कुसम्पत्तमें सोना और दूसरोंके घरमें रहना—ये शिवयोंके छः दोष हैं ॥ ४३ ॥ ताराएँ, सूर्य, चन्द्र, मेरु, मन्दराचल और किसी समय पृथिवी भी विचलित हो सकती है, परन्तु धर्म और सुजनोंके वाक्य कभी नहीं विचलित होते ॥ ४४ ॥



अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शश्रतः ।

नित्यं मन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ ४५ ॥\*



### मीतिसूक्तिः

विद्वत्पञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन ।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ ४६ ॥\*

पण्डिते च गुणाः सर्वे मूर्खे दोषा हि केवलम् ।

तस्मान्मूर्खसदृशेभ्यः प्राञ्च एको विशिष्यते ॥ ४७ ॥\*

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।

वर्जयेत्तादृशं मित्रं विपक्वम् पयोमुखम् ॥ ४८ ॥\*

शरीर अनित्य है, धन भी सदा रहनेवाला नहीं, मृत्यु सदा पास ही रहती है, इसलिये धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ ४५ ॥



विद्वत्ता और राजपद—इन दोनोंकी तुलना कदापि नहीं हो सकती; राजा अपने ही देशमें आदर पाता है, किन्तु विद्वान् सब जगह आदर पाता है ॥ ४६ ॥ पण्डितोंमें सब गुण ही रहते हैं और मूर्खोंमें केवल दोष ही; इसलिये एक पण्डित हजार मूर्खोंसे भी उत्तम है ॥ ४७ ॥ जो आँखके ओट होनेपर काम बिगाड़े और सम्मुख होनेपर मीठी-मीठी बात बनाकर कहे ऐसे मित्रको मुखपर दूध तथा भीतर विपक्षे मरे घड़ेके समान त्याग देना चाहिये ॥ ४८ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।

विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ ४९ ॥\*

ताराणां भूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः ।

पृथिव्या भूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥ ५० ॥\*

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ।

काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुःपीडैव केवलम् ॥ ५१ ॥\*

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।

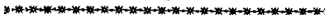
प्राप्ते तु पीडये वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥ ५२ ॥\*

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।

वासितं स्याद् वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ५३ ॥\*

जो विद्याहीन है वे यदि रूप और यौवनसे समझ हों तथा उच्च कुलमें उत्पन्न हुए हों तो भी गन्धहीन टैलके फूलकी तरह शोभा नहीं पाते ॥४९॥ ताराओंका भूषण चन्द्रमा, स्त्रीका भूषण पति और पृथिवीका भूषण राजा है, किन्तु विद्या सभीका भूषण है ॥५०॥ जिसमें विद्या और भक्ति नहीं ऐसे पुत्रके होनेसे क्या लाभ है ! कानी आँखके रहनेसे क्या लाभ ! उससे तो केवल नेत्रकी पीड़ा ही होती है ॥५१॥ पाँच वर्षकी अवस्थातक पुत्रकी लालना करनी चाहिये, उसके बाद दस वर्ष [ अर्थात् पाँच वर्षसे पन्द्रह वर्षकी अवस्था ] तक उसे ादना देना चाहिये और जब वह सोलहवें वर्षकी अवस्थामें पहुँचे, तो उसके पशके समान बर्ताव करना चाहिये ॥५२॥ जैसे एक ही उत्तम वृक्ष विकसित होकर अपनी सुगन्धसे समस्त वनको सुवासित कर देता है, वैसे ही एक सुपुत्र समस्त कुलको यशका भागी बनाता है ॥ ५३ ॥

• पापरूपगोष्ठेः ।



एकेन शुष्कवृक्षेण दक्षमानेन वह्निना ।  
 दक्षते हि वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ५४ ॥#  
 निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्यन्ति साधवः ।  
 न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥ ५५ ॥#  
 विद्या मित्रं प्रवासेषु माता मित्रं गृहेषु च ।  
 व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ ५६ ॥#  
 न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः ।  
 व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥ ५७ ॥#  
 दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।  
 मधु तिष्ठति जिह्वाप्रे हृदये तु हलाहलम् ॥ ५८ ॥#  
 दुर्जनः परिहर्च्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।  
 मणिना भूपितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ५९ ॥#

जिस प्रकार एक ही सूखा वृक्ष स्वयम् आगसे जलता हुआ समस्त वनको  
 जला देता है, उसी प्रकार एक ही कुपुत्र अपने वंशके नाशका  
 कारण होता है ॥ ५४ ॥ जैसे चन्द्रमा चाण्डालके घरको अपने  
 किरणोंसे बधित नहीं रखता; वैसे ही सज्जन पुरुष गुणहीन प्राणियोंपर  
 भी दया करते हैं ॥ ५५ ॥ परदेशमें विद्या मित्र है, घरमें माता मित्र है,  
 रोगीका औषध मित्र है, और मृत व्यक्तिका धर्म मित्र है ॥ ५६ ॥ कोई  
 किसीका मित्र नहीं और कोई किसीका शत्रु नहीं है । यथावसे ही मित्र  
 और शत्रु उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ दुष्ट व्यक्ति मीठी बातें करनेपर  
 भी विश्वास करनेयोग्य नहीं होता, क्योंकि उसकी जीमपर शहदके ऐला  
 मिटास होता है परन्तु हृदयमें हलाहल विष मरा रहता है ॥ ५८ ॥  
 दुष्ट व्यक्ति विद्यासे भूषित होनेपर भी त्यागने योग्य है; जिस सर्पके  
 मन्मथपर मणि होती है, वह क्या भयङ्कर नहीं होता ॥ ५९ ॥

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः ।  
 मन्त्रीपधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते ॥ ६० ॥  
 धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।  
 सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥ ६१ ॥  
 आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः ।  
 स चेन्निरर्थकं नीतः का नु हानिस्ततोऽधिका ॥ ६२ ॥  
 शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।  
 शरीरं क्षणविष्वसि कल्पान्तस्वायिनो गुणाः ॥ ६३ ॥  
 धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यश्च पञ्चमः ।  
 पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ॥ ६४ ॥

सोंप निडुर होता है और दुष्ट भी निडुर होता है; तथापि दुष्ट पुरुष  
 अपेक्षा अधिक निडुर होता है; क्योंकि सोंप तो मन्त्र और  
 वशमें आ सकता है, किन्तु दुष्टका कैसे निवारण किया जाय ! ॥  
 बुद्धिमानोंको उचित है कि दूसरेके उपकारके लिये धन और जीव  
 अर्पण कर दें; क्योंकि इन दोनोंका नाश तो निश्चय ही है, इसलिये  
 इनका त्याग करना अच्छा है ॥ ६१ ॥ जीवनका एक क्षण भी  
 स्वर्णमुद्रा देनेपर नहीं मिल सकता, वह यदि ब्रूया नष्ट हो  
 इससे अधिक हानि क्या होगी ! ॥ ६२ ॥ शरीर और गु  
 दोनोंमें बहुत अन्तर है, शरीर थोड़े ही दिनोंतक रहता है पर  
 प्रलयकालतक बने रहते हैं ॥ ६३ ॥ अहाँ धनी, वैद जाननेवाला  
 राजा, नदी और वैद्य—ये पाँचों न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये

मूर्त्ता यत्र न पूजयन्ते धान्यं यत्र मुमञ्चितम् ।

दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः क्षयमागता ॥ ६५ ॥

अस्ति पुत्रो वधे यस्य भृत्यो भार्या तथैव च ।

अभावेऽप्यतिशन्तोपः स्वर्गस्योऽग्नी महीतले ॥ ६६ ॥

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।

अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥ ६७ ॥

फोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रतम् ।

विद्या रूपं कुरूपानां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ॥ ६८ ॥

गुरुरभिर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।

पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ ६९ ॥

हाँ मूर्त्त नहीं पूजे जाते, जहाँ धान सञ्चित रहता है, जहाँ पति  
 श्रीमें कलह नहीं रहता, वहाँ लक्ष्मी स्वयं आ जाती है ॥ ६५ ॥  
 ॥, पुत्र और नौकर जिसके वधमें हैं और जो अभावमें भी अत्यन्त सन्तुष्ट  
 होता है, वह पृथिवीपर भी रहकर स्वर्गका सुख भोगता है ॥ ६६ ॥ जिसके  
 में माता नहीं [ अर्थात् जिसकी माता मर गयी है ] और जिसकी  
 में कटुवचन बोलनेवाली है, उसको वनमें जाना ही उचित है, क्योंकि  
 वनके लिये जैसा वन है वैसा ही घर भी है ॥ ६७ ॥ कोयलोंकी  
 दरता स्वर है, स्त्रीका सौन्दर्य सतीत्व है, कुरूपका रूप उसकी  
 धा है और तपस्वीका सौन्दर्य क्षमा है ॥ ६८ ॥ अग्नि द्विजाति  
 ब्राह्मण ) का गुरु है, ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु है, स्त्रियोंका  
 क्षमात्र पति ही गुरु है और अतिथि सबका गुरु है ॥ ६९ ॥

स जीयति गुणा यस्य धर्मो यस्य च जीवति ।

गुणधर्मविहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम् ॥ ७० ॥\*

दुर्लभं प्राकृतं मित्रं दुर्लभः क्षेमकृत् सुतः ।

दुर्लभा सदृशी भार्या दुर्लभः स्वजनः प्रियः ॥ ७१ ॥\*

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।

तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः ॥ ७२ ॥\*

सत्सङ्गः केशवे भक्तिर्गङ्गाम्भसि निमज्जनम् ।

असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत् ॥ ७३ ॥\*

शान्तिर्तुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात् परं सुखम् ।

न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयासमः ॥ ७४ ॥\*

अन्नदाता भयत्राता विद्यादाता तथैव च ।

जनिता चोपनेता च पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥ ७५ ॥\*

जिसके गुण और धर्म जीवित हैं वही वास्तवमें जी रहा है, गुण और धर्मरहित इयक्तिका जीवन निरर्थक है ॥७०॥ स्वभाविक मित्र, हितकारी पुत्र, मनके अनुकूल स्त्री और प्रियतम कुटुम्बी मिलना दुर्लभ है ॥७१॥ साधुओंका दर्शन पावन है क्योंकि वे तीर्थस्वरूप होते हैं, तीर्थका फल तो देखते मिलता है परन्तु साधुसमागमका फल तत्काल प्राप्त होता है ॥७२॥ इस असार संसारमें साधु-सङ्गति, ईश्वर-भक्ति और गङ्गा-स्नान-इन तीनोंको ही सार समझना चाहिये ॥ ७३ ॥ शान्तिके समान तप नहीं, सन्तोषके समान सुख नहीं, लोभके सदृश रोग नहीं और दयाके समान धर्म नहीं है ॥ ७४ ॥ अन्न देने-वाला, भयसे बचानेवाला, विद्या पढ़ानेवाला, जन्म देनेवाला और यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला—ये पाँच पिता कहे जाते हैं ॥७५॥

आदौ माता गुरोः पत्नी ब्राह्मणी राजपत्निका ।  
 धेनुर्घात्री तथा पृथ्वी सप्तैता मातरः स्मृताः ॥ ७६ ॥\*  
 आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।  
 तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥ ७७ ॥\*  
 समुद्रावरणा भूमिः प्राकारावरणं गृहम् ।  
 नरेन्द्रावरणो देशश्चरित्रावरणाः स्त्रियः ॥ ७८ ॥\*  
 परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।  
 नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ॥ ७९ ॥\*  
 नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।  
 नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥ ८० ॥\*  
 पादपानां भयं घातात् पमानां शिशिराद्भयम् ।  
 पर्वतानां भयं वज्रात् साधूनां दुर्जनाद्भयम् ॥ ८१ ॥\*

अपनी जननी, गुरु-पत्नी, ब्राह्मण-पत्नी, राजपत्नी, माय, घात्री (दूध  
 पिलानेवाली दाई) और पृथ्वी—ये सात माताएँ कही गयी हैं ॥ ७६ ॥  
 इन्द्रियोंको वशमें नहीं लाना सब विपत्तियोंका मार्ग बतलाया गया है और  
 इनको जीत लेना सब प्रकारके सुखोंका उपाय है; इन दोनोंमें जो मार्ग उत्तम  
 है उसीसे गमन करना चाहिये ॥ ७७ ॥ पृथिवीकी रक्षा समुद्रसे, गृहकी रक्षा  
 चारदिवारीसे, देशकी रक्षा राजासे और स्त्रीकी रक्षा उत्तम चरित्रसे  
 है ॥ ७८ ॥ जिन सज्जनोंके मनमें सदा परोपकार करनेकी इच्छा  
 बनी रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पग-पगपर  
 सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ ७९ ॥ विद्याके समान नेत्र नहीं, सत्यके समान  
 तप नहीं, [ संसारकी वस्तुओंमें ] आसक्तिके समान दुःख नहीं और  
 त्यागके समान सुख नहीं है ॥ ८० ॥ वृशोंको आँधीसे, कमलोंको  
 , पर्वतोंको वज्रसे और साधुओंको दुर्जनसे डर है ॥ ८१ ॥

सुभिर्क्षं कृपके नित्यं नित्यं सुखमरोगिणः ।  
 भार्या भर्तुः प्रिया यस्य तस्य नित्योत्सवं गृहम् ॥ ८२ ॥\*  
 प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।  
 तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ॥ ८३ ॥\*  
 क्षमया दयया प्रेम्णा स्मृतेनार्जवेन च ।  
 वशीकुर्याज्जगत् सर्वं विनयेन च सेवया ॥ ८४ ॥\*  
 अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थश्च चिन्तयेत् ।  
 गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ ८५ ॥\*  
 अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शनम् ।  
 सर्वस्य लोचनं ज्ञानं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ ८६ ॥\*

जो कृपिकर्म करता है उसके अन्नका अभाव नहीं रहता, जो नीरोग है वह सदा सुखी रहता है और जिस स्वामीकी स्त्री उसको प्यारी है उसके घरमें सदा आनन्द रहता है ॥ ८२ ॥ जिसने प्रथम अवस्था (लड़कपन) में विद्या नहीं पढ़ी, दूसरी (युवा) अवस्थामें धन नहीं कमाया और तीसरी (मोठ) अवस्थामें धर्म नहीं किया; वह चौथी अवस्था (बुढ़ापे) में क्या करेगा ? ॥ ८३ ॥ क्षमा, दया, प्रेम, मधुर बचन, सरल स्वभाव, नम्रता और सेवासे सब संसारको वशमें करना चाहिये ॥ ८४ ॥ बुद्धिमान्को उचित है कि अपनेको अजर और अमर समझकर विद्या एवं धनका उपार्जन करे और मृत्यु केश पकड़े स्तब्धी है—यह सोचकर धर्म करे ॥ ८५ ॥ जो अनेकों सन्देहोंको दूर करनेवाला और परोक्ष अर्थको दिखानेवाला है, वह ज्ञान सभीका नेत्र है, जिसमें ज्ञान नहीं वह निरा अन्धा है ॥ ८६ ॥



मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥ ८७ ॥३

प्रविचार्योत्तरं देयं सहसा न वदेत् क्वचित् ।

शत्रोरपि गुणा प्राप्ता दोषास्त्याज्या गुरोरपि ॥ ८८ ॥३

हस्तस्य भूयनं दानं सत्यं कण्ठस्य भूयणम् ।

कर्णस्य भूयणं नाशं भूयगैः किं प्रयोजनम् ॥ ८९ ॥३

तृणं मद्मनिदः मर्गस्त्रुणं शूरस्य जीवितम् ।

त्रिनाश्रम्य तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत् ॥ ९० ॥३

पपःदानं भुवङ्गानां केरलं विपरर्जनम् ।

उपदेष्टो हि मूर्खायां प्रहोषाय न जान्गये ॥ ९१ ॥३

दुर्गे के रूप, वचनस्य कर्मण्ये और और भाष हो र है, परन्तु मन्त्रजीके मन, वचनस्य कर्मण्ये के रूप ही भाष परान है ग ८७ ॥ [ किसी विषयमें ] एका-  
एक न हो के, जो व विचारका कारण देना उचित है, मनुमें भी विरि गुण ही  
मे मनु केन क विरि ही मनुमें भी दोष ही जो मनुमें भाष देना पापिये  
॥ ८८ ॥ हस्तस्य भूयणं दानम् है, मनु कोपना कारणका भूयण है,  
कर्णस्य भूयणं नाशम् है, [ विरि ] दुष्ट मनुमेंको कर्ण मनुमेंनाशम्  
है ॥ ८९ ॥ तृणं मद्मनिदः के विरि मनुमें, पपःके विरि जीवित, त्रिनाश्रम्यके  
विरि मनुमें लोभ मनुमें ॥ ९० ॥ विरि मनुमें मनुमें विरिदके कारण है मनुमें  
के के मनुमें मनु विरि मनुमें विरि मनुमें मनु है, विरि ही मनुमें  
है मनु मनुके मनुमें मनुमें है मनुमें मनुमें मनु ॥ ९१ ॥

पङ् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।

निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥ ९२ ॥\*

उद्योगिनं पुरुषसिद्धमुपति लक्ष्मी-

देवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।

दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्तया

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥ ९३ ॥\*

परदारान् परद्रव्यं परीबादं परस्य च ।

परीहासं गुरोः स्थाने चापत्यं च विवर्जयेत् ॥ ९४ ॥\*

पृथा पृष्टिः समुद्रेषु पृथा वृत्तस्य भोजनम् ।

पृथा दानं समर्थस्य पृथा दीपो दिवापि च ॥ ९५ ॥\*

निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—ये छः दोष,  
 इस संसारमें ऐश्वर्य प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको छोड़  
 देने चाहिये ॥ ९२ ॥ उद्योगी वीर पुरुषको लक्ष्मी मिलती है, कायर  
 बाधा करते हैं कि [ जो मिलता है वह ] 'भाग्यसे मिलता है,' भाग्यही  
 नात छोड़कर अपनी शक्तिसे पुरुषार्थ करो; यत्न करनेपर भी यदि कार्य  
 सिद्ध न हो तो इसमें दोष ही क्या है ? ॥ ९३ ॥ परस्त्री, पर-धन,  
 परनिन्दन, परिहास और बड़ोंके सामने चञ्चलता—इनका त्याग  
 करना चाहिये ॥ ९४ ॥ समुद्रमें वृष्टि, भरपेट खाये हुएकी भोजन,  
 समुद्रिमानुषको दान और दिनमें दीपक—ये कथं ही होते हैं ॥ ९५ ॥

\* चाणक्यनीतिः ।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।  
 कुरु पुण्यमहोरात्रं सर नित्यमनित्यताम् ॥ ९६ ॥\*  
 दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।  
 सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ९७ ॥\*  
 सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।  
 सत्येन वायवो धान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ९८ ॥\*  
 कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरे व्यवसायिनाम् ।  
 को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥ ९९ ॥\*  
 शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।  
 दिवसे दिवसे भूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ १०० ॥\*

खलका सङ्ग छोड़, साधुकी सङ्गति कर, दिन-रात पुण्य किया कर, संसार अनित्य है—इस प्रकार निरन्तर विचार करता रह ॥ ९६ ॥ देख-भालकर पैर रखना चाहिये, कपड़ेसे छानकर पानी पीना चाहिये, सच्ची बात कहनी चाहिये और जो मनको पवित्र जान पड़े वह आचरण करना चाहिये ॥ ९७ ॥ सत्यने ही पृथ्वीको धारण कर रखा है, सत्यसे ही सूर्य तपता है और सत्यसे ही वायु चलती है, सब कुछ सत्यमें ही स्थित है ॥ ९८ ॥ शक्तिशालीके लिये अधिक बोझ क्या है, व्यापारीके लिये दूर क्या है ? विद्वान्के लिये विदेश और मधुरमाषीके लिये शत्रु कौन है ? ॥ ९९ ॥ मूर्खको प्रतिदिन सैकड़ों भयके और हजारों शोकके मौके आ पड़ते हैं, पर विद्वान्को नहीं ॥ १०० ॥

\*\*\*

रिद्रता धीरतया विराजते कुरूपता शीलतया विराजते ।

भोजनं चोष्णतया विराजते कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते १०१\*

या चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निषर्षणच्छेदनतापताडनैः ।

या चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा १०२\*

अनम्यासे विपं विद्या अजीर्णे भोजनं विपम् ।

विपं गोष्ठी दरिद्रस्य भोजनान्ते जलं विपम् ॥१०३॥\*

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।

आत्मशतसर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥१०४॥\*

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन ।

मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन १०५\*

रिद्रता धीरजसे, कुरूपता अच्छे स्वभावसे, कुभोजन भी गम रहनेसे और पुराना कपड़ा भी स्वच्छ होनेसे शोभा पाता है ॥१०१॥ जिस प्रकार घिसने, काटने, तपाने और पीटने—इन चार प्रकारोंसे सुवर्णकी परीक्षा होती है उस प्रकार विद्या, कुल, शील और कर्म इन चारोंसे ही पुरुषकी परीक्षा होती है ॥१०२॥ बिना अम्यास किये पढ़ी हुई विद्या, बिना पचे ही किया हुआ भोजन, दरिद्रके लिये [ घनिकोंकी ] सभा और भोजनसमाप्तिके समय जल पीना—ये सब विपके समान हैं ॥ १०३ ॥ जो पर-स्त्रियोंको माताके समान, पर-बनको मिट्टीके टेलके समान तथा समस्त प्राणियोंको अपने ही समान देखता है, वही वास्तवमें पण्डित है ॥ १०४ ॥ दान देनेसे ही हाथकी शोभा है, गहनोंसे नहीं; स्नान करनेसे ही शुद्धि होती है, चन्दनसे नहीं; सम्मानसे तृप्ति होती है, केवल भोजनसे नहीं और ज्ञानसे ही मुक्ति होती है, केवल वेप-भूषा धारण करनेसे नहीं ॥ १०५ ॥

फः कालः कानि मित्राणि को देवः कौ व्ययागमौ ।

कम्पादं का च मे शक्तिरिति गिनत्यं मुहुर्मुहुः ॥१०६॥\*

अत्यन्तक्रोधः कटुका च याणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।

नीचप्रसाहः कुलदीनसेवा निष्ठानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१०७॥\*

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यामंग्रहणेषु च ।

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलजः सुखी भवेत् ॥१०८॥\*

गुणैरुत्तमतां याति नोर्धरासनसंस्थितः ।

प्रासादशिखरस्योऽपि काकः किं गरुडायते ॥१०९॥\*

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।

तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥११०॥\*

समय कैसा है ? मित्र कौन है ? देव कौन सा है ? आय और व्यय कितना है ? मैं किसका हूँ ? और मेरी शक्ति कितनी है ? इसका बार-बार विचार करना चाहिये ॥ १०६ ॥ अति क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, आत्मीय जनोंसे वैर, नीचोंका सह और नीचकी सेवा—ये नरकमें रहने-वालोंके लक्षण हैं ॥१०७॥ अन्न-धनके उपयोगमें, विद्योपाज्जनमें, भोजनमें और व्यवहारमें लज्जाको त्याग देनेवाला सुखी होता है ॥ १०८ ॥ प्राणी गुणोंसे उत्तम होता है, ऊँचे आसनपर बैठकर नहीं, कोठेके केंगूरेपर बैठा हुआ कौआ, क्या गरुड हो जाता है ? ॥ १०९ ॥ मधुर वचनके बोलनेसे सब जीव समुष्ट होते हैं, इस कारण वैसा ही बोलना चाहिये, वचनमें क्या दरिद्रता है ? ॥ ११० ॥

पुस्तकेषु च या विद्या परद्वस्तेषु यद्दनम् ।  
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्दनम् ॥१११॥\*  
सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारं भोजने धने ।  
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥११२॥\*  
विप्रयोर्विप्रवह्वयोश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः ।  
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषमस्य च ॥११३॥\*  
पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च ।  
नैव गां च कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥११४॥\*  
आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्भनक्षयः ।  
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥११५॥\*

सदा प्रसन्नं मुखमिष्टवाणी सुशीलता च स्वजनेषु सख्यम् ।  
सर्वा प्रसङ्गः कुलहीनद्वानं चिह्नानि देहे त्रिदिवस्थितानाम् ११६

जो विद्या पुस्तकोंमें ही रहती है और जो धन दूसरोंके हाथोंमें रहता है, काम पढ़ जानेपर न वह विद्या है और न वह धन ही है ॥ १११ ॥ अपनी स्त्री, भोजन और धन—इन तीनोंमें सन्तोष करना चाहिये । पढ़ना, जप और दान—इन तीनोंमें सन्तोष कमी नहीं करना चाहिये ॥ ११२ ॥ दो ब्राह्मणोंके, ब्राह्मण और अग्निके, पति-पत्नीके, स्वामी तथा भृत्यके एवं हल और बैलके बीचसे होकर नहीं जाना चाहिये ॥ ११३ ॥ अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, कुमारी, वृद्ध और बालक—इनको पैरसे न छूना चाहिये ॥ ११४ ॥ बड़ोंके द्वेषसे मृत्यु, शत्रुके विरोधसे धनका क्षय, राजाके द्वेषसे नाश और ब्राह्मणके द्वेषसे कुलका क्षय होता है ॥ ११५ ॥ सदा प्रसन्नमुख रहना, प्रिय बोलना, सुशीलता, आत्मीय जनोंमें प्रेम, सजनोंका सज्ज और नीचोंकी उपेक्षा—ये स्वर्गमें रहनेवालोंके लक्षण हैं ॥ ११६ ॥

\* चाणक्यनीतेः ।



केयूरान् विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला  
 न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः ।  
 चाण्डिका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते  
 क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥१२०॥  
 विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं  
 विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।  
 विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं  
 विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥१२१॥  
 रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-  
 मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।

पुरुषको न तो केयूर (वायुमन्द), न चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न उबटन, न फूल और न सजाये हुए बाल ही सुशोभित कर सकते हैं। पुरुष यदि संस्कृत चाण्डीकी धारण करे तो एकमात्र वही उसकी शोभा बढ़ा सकती है, इसके अतिरिक्त और जितने भूषण हैं वे तो सब नष्ट हो जाते हैं सच्चा भूषण तो चाण्डी ही है ॥ १२० ॥ विद्या मनुष्यका एक विशेष सौन्दर्य है, छिपा हुआ सुरक्षित धन है, विद्या भोग, यश और सुखको देनेवाली है, विद्या गुरुओंकी भी गुरु है, वह परदेशमें जाने पर स्वजनके समान सहायता करनेवाली है। विद्या ही सबसे बड़ी देवता है राजाओंमें विद्याका ही सम्मान होता है धनका नहीं, विद्याके विन तो मनुष्य पशुके समान है ॥ १२१ ॥ अरे मित्र परीहे ! सावधान मनसे जरा एक क्षण सुन तो ! अरे, आकाशमें मेव तो बहुत हैं किन्तु सब एक-से ही नहीं हैं, कोई तो अपने दर्शनमात्रसे ही पृथ्वीको भी



केनित्त्वष्टिमिसाद्रंयन्ति यमुषां गर्जेन्ति केनित्त्वष्ट्या  
 मं मं पश्यति तस्य तस्य पुरतो मा मूदि दीनं वचः ॥१२२॥†  
 भीनान्मूकः प्रवचनगद्ग्रादुलो जन्पको वा  
 भृष्टः पार्श्वे वगति य सदा दूरतभाप्रगन्धः ।  
 धान्त्या भीरुर्पदि न सहते प्रायशो नाभिजातः  
 सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥१२३॥†  
 गुणवद्गुणवद्वा कुर्वता कार्पमादी  
 परिणतिरवधार्या यन्नतः पण्डितेन ।  
 अतिरमसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-  
 र्भवति हृदयदादी शल्यतुल्यो विपाकः ॥१२४॥†

करनेवाले हैं और कोई ध्ययं ही गर्जते हैं । तू जिस-जिसको देखे उसी-  
 उसीके सामने दीन वचन मत शोक ॥ १२२ ॥ मनुष्य पुर रहनेसे  
 गूंगा, चतुर वक्ता होनेसे चारदस या यकवादी कहलाता है, इसी प्रकार  
 यदि पासमें बैठे तो ढीठ, दूर रहे तो दम्बू, धमा रखे तो डरपोक और  
 अग्याय न सह सके तो प्रायः बुरा समझा जाता है; इसलिये सेवाधर्म  
 बहुत ही कठिन है, इसे योगी भी नहीं जान पाते ॥ १२३ ॥ अच्छा  
 या बुरा किसी भी कामका आरम्भ करनेवाले विद्वान्को पहले ही यत्न-  
 पूर्वक उसके भले-बुरे परिणामका निश्चय कर लेना चाहिये; क्योंकि बहुत  
 जल्दमें किये गये कर्मोंका दुष्परिणाम मरनेतक मनुष्यके हृदयमें जन्म  
 दा करनेवाला और शूलके समान चुभनेवाला होता है ॥ १२४ ॥

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो  
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।

अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता  
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥१२५॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाल्यं सदा दुर्जने  
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।

शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता  
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥१२६॥

साधुस्त्रीणां दयितविरहे मानिनो मानभङ्गे  
सह्योकानामपि जनरवे निग्रहे पण्डितानाम् ।

अन्योद्रेके कुटिलमनसां निर्गुणानां विदेशे  
भृत्याभावे भवति भरणं किन्तु सम्भावितानाम् ॥१२७॥

ऐश्वर्यकी शोभा सुजनता है, शूरवीरताकी शोभा कम बोलना है, ज्ञानकी शान्ति, शास्त्रार्थपनकी नम्रता, धनकी सत्पात्रको दान करना, तपकी अक्रोध, समर्थकी क्षमा, धर्मकी दम्भहीनता और सचकी शोभा सुशीलता है, जो सभी सद्गुणोंकी हेतु है ॥ १२५ ॥ आत्मीय जनोपर उदारता, दूसरोंपर दया, दुष्टोंसे शठता, साधुओंसे प्रीति, राजाओंसे नीति, विद्वानोंसे सरलता, शत्रुओंपर वीरता, बड़ोंपर क्षमा और स्त्रियोंसे चालाकी रखना— इन सब गुणोंमें जो निपुण हैं, उन्हींपर लोकमर्यादा निर्भर रहती है ॥ १२६ ॥ म्रियतम पतिके वियोगमें सती स्त्रियोंका, सम्मान-भङ्ग होनेपर प्रतिष्ठित पुरुषोंका, लोकापवाद होनेपर सत्पुरुषोंका, शास्त्रार्थमें पराजय होनेपर पण्डितोंका, दूसरोंका उत्कर्ष देखकर कुटिल हृदयवालोंका, विदेशमें गुणहीन मनुष्योंका और नौकर न रहनेपर अमीर लोगोंका भरण-सा हो

\*\*\*\*\*

क्वचिद्बुधः क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे ।

अन्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥१२८॥\*

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः ।

स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्यध्वंसो हि मूर्खता ॥१२९॥\*

देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥१३०॥†

नागो भाति मदेन कं जलरुहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी

शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम् ।

जाता है ॥ १२७ ॥ जो कभी बुरा होता है, कभी प्रसन्न होता है; इस प्रकार क्षण-क्षणमें बुरा और प्रसन्न होता रहता है उस चञ्चलचित्त पुरुषकी प्रसन्नता भी भयङ्कर ही है ॥ १२८ ॥ अपमानको आगे कर और सम्मानकी ओर दृष्टि न देकर बुद्धिमान्को अपना कार्य-साधन करना चाहिये; क्योंकि काम थिगाइना मूर्खता है ॥ १२९ ॥ देवता, तीर्थ, ब्राह्मण, मन्त्र, ज्योतिषी, औषध और गुरुमें जिसकी जैसी भावना रहती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १३० ॥ गजराज मन्दरे, जण कमलोंसे, रात्रि पूर्ण चन्द्रसे, स्त्री शीलसे, घोड़ा वेगसे, मन्दिर नित्यके उत्सवोंसे, चानी ब्याकरणसे, नदी हंसके जोड़ेसे, समा पण्डितोंसे, कुल

गी व्याकरणेन हंसमिधुनैर्नद्यः समा पण्डितैः  
 पुत्रेण कुलं नृपेण वसुधा लोकत्रयं विष्णुना ॥१३१॥\*  
 । धीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः  
 रं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः ।  
 र्व्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टाश्रयं मन्त्रिणः  
 : कार्यवशात्तनोऽभिरमते फस्वास्ति को वल्लभः ॥१३२॥\*  
 : स्वच्छतया सिपुं नययल्लुब्धं धनैरीश्वरं  
 ण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णा समैर्धान्धवान् ।  
 प्रं स्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं  
 भी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद्ब्रह्म ॥१३३॥†

से, पृथ्वी राजासे और त्रिनोकी भगवान् विष्णुसे सुसोभित होती  
 : ३१॥ यही फल न रहनेपर वृत्तको छोड़ देते हैं, सारस जल सूख  
 र सरोवरका परित्याग कर देते हैं, भोरि वाली पुरुषको, मृग दग्ध  
 १, बेव्या निर्धन पुरुषको तथा मन्त्रीगण भीहीन राजाको छोड़ देते  
 । लोग अपने-अपने स्वार्थवश ही प्रेम करते हैं, वास्तवमें कौन किसका  
 ! ॥१३२॥ मित्रको स्वच्छता ( निष्कपट हृदय ) से जीते, शत्रुको  
 लते, सोभीको धनसे, स्वाभीको कार्यसे, ब्राह्मणको आदरसे,  
 को प्रेमसे, बन्धुओंको समभावसे, अत्यन्त श्रेष्ठोंको स्तुतिसे,  
 विनयसे, मूर्खोंको बातोंसे, बुद्धिमान्को विद्यासे, रसिकको  
 तसे और सभीको सुशीलतासे यही भूत करे ॥ १३३ ॥

\* वाग्भटाचार्यः ; † मरकतानी मरकतमन्त्रात्, मरकतानी ज्ञानानि—  
 चन्धनैरिष्टपण्यकार्त्तित्वात्पुत्रेण नृपेण वसुधा लोकादिभ्यः ।  
 कथानो ब्रह्मर्षिर्हितो मूषः स्यादां रक्तानि वै वररक्तिवै विद्यमान् ॥

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी गुग्मप्रमाद्यस्य ।  
 तेनाम्बा यदि सुतिनी यद् वन्ध्या कीदृशी नाम ॥१३४॥  
 वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं  
 वरं श्रेष्ठ्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् ।  
 वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्पेष्यभिरुचि-  
 वरं मिथ्याशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥१३५॥  
 पठतो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम् ।  
 जाग्रतस्तु भयं नास्ति कलहो नास्ति मौनिनः ॥१३६॥  
 मातेव रक्षति पितेव हिते निपुङ्क्ते  
 कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ।

गुणीजनोंकी गणना आरम्भ करते समय जिसके लिये लेखनी शीघ्रतासे नहीं चलती, उस पुत्रसे यदि माता पुत्रपती कही जाय तो कही वन्ध्या कैसी खरी होगी ? ॥ १३४ ॥ चुप रहना अच्छा है पर मिथ्या वचन कहना अच्छा नहीं, पुरुषका नपुंसक हो जाना अच्छा है परन्तु परस्त्रीगमन अच्छा नहीं, प्राणपरित्याग कर देना अच्छा है परन्तु चुगुलोंकी बातोंमें रुचि रखना अच्छा नहीं, और मिथ्या मोंगकर खा लेना अच्छा है परन्तु दूसरोंके धनके उपभोगका सुख अच्छा नहीं है ॥ १३५ ॥ जो विद्याभ्ययन करता है उसमें मूर्खता नहीं रह सकती, जो जप करता है उसके पाप नहीं रह सकते, जो जागरित है उसको कोई भय नहीं सता सकता, और जो मौनी है उसका किसीसे कलह नहीं हो सकता ॥ १३६ ॥

अल्पताके समान विद्या संसारमें क्या-क्या सिद्ध नहीं ? माताके समान वह रखा करती है, पिताके समान

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥१३७॥

उदारस्य वृणं वित्तं शूरस्य मरणं वृणम् ।

विरक्तस्य वृणं भार्या निःस्पृहस्य वृणं जगत् ॥१३८॥

ललितान्तानि गीतानि कुवाक्यान्तं च सौहृदम् ।

प्रणामान्तःसतां क्रोधो याचनान्तं हि गौरवम् ॥१३९॥

स्वगृहे पूज्यते मूर्खः स्वग्रामे पूज्यते प्रभुः ।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥१४०॥

अर्थातुराणां न गुरुर्न वन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा ।

विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां न रुचिर्न वेला ॥१४१॥

स्व-हितमें नियुक्त करती है, स्त्रीके सम्मान स्वेदका परिहार करके आनन्दित करती है, लक्ष्मीकी धृष्टि करती है और दिशा-विदिशाओंमें कीर्तिका विस्तार करती है ॥ १३७ ॥ उदारके लिये धन, शूरवीरके लिये मरण, विरक्तके लिये स्त्री और निःस्पृहके लिये जगत् तिनकेके तुल्य है ॥ १३८ ॥ गानका समसे, प्रेमका कटुवचनसे, सबनोके क्रोधका प्रणाम करनेसे और गौरवका याचना करनेसे अन्त हो जाता है ॥ १३९ ॥ मूर्ख अपने घरमें, समर्थ पुरुष अपने गाँवमें, राजा अपने देशमें और विद्वान् सर्वत्र ही पूजा जाता है ॥ १४० ॥ अर्थातुरों (स्वार्थियों) को न कोई गुरु होता है न वन्धु, कामातुरोंको न भय रहता है न लज्जा, विद्यातुरों (विद्याप्रेमियों) को न सुख रहता है न नींद तथा क्षुधातुरोंके लिये न स्वाद होता है न भोजन करनेका कोई नियत समय ही ॥ १४१ ॥

न शा समाश्रय न गन्ति बृद्धा बृद्धान ते ये न वदन्ति धर्मम् ।  
 धर्मो न वै यत्र च नास्ति मर्त्यं मर्त्यं न त गच्छलनानुविद्रम् ॥१४२॥  
 मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणं चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम् ।  
 भार्यासमं नास्ति शरीरनोषणं विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम् ॥  
 सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।  
 पृणते हि निमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥१४४॥\*  
 विद्यातीर्थे जगति विबुधाः साधवः सत्यतीर्थे  
 गङ्गातीर्थे मलिनमनसो योगिनो ध्यानतीर्थे ।  
 धारातीर्थे धरणिपतयो दानतीर्थे धनाढ्या  
 लज्जातीर्थे कुलपुत्रतयः पातकं क्षालयन्ते ॥१४५॥

जिसमें बृद्ध न हों वह समा नहीं, जो धर्मोपदेश नहीं करते वे बृद्ध नहीं,  
 जिसमें सत्य न हो वह धर्म नहीं और जो छलपुक्त हो वह सत्य सत्य  
 नहीं ॥ १४२ ॥ माताके समान शरीरका पालन-पोषण करनेवाली,  
 चिन्ताके समान देहको सुखानेवाली, स्त्रीके समान शरीरको सुख देने-  
 वाली और विद्याके समान अंगका आभूषण दूसरा कोई नहीं है ॥१४३॥  
 हठात् कोई कार्य न कर बैठे क्योंकि नासमशीसे भारी विपत्तियाँ आ पड़ती  
 हैं, और सोच-विचारकर करनेवालेकी ओर उसके गुणोंसे मोहित हो  
 सम्पत्ति स्वयं दौड़ आती है ॥ १४४ ॥ संसारमें बुद्धिमान्जन विद्यारूपी  
 तीर्थमें, साधु सत्यरूपी तीर्थमें, मलिन मनवाले गङ्गातीर्थमें, योगिजन  
 ध्यानतीर्थमें, राजालोग पृथ्वीतीर्थमें, धनीजन दान-तीर्थमें और  
 कुल-छियाँ लज्जा-तीर्थमें अपने पापोंको धोती हैं ॥ १४५ ॥

सुलभाः पुरुषा लोके सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥१४६॥\*

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः

सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः ।

सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं

सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥१४७॥†

उपकारः परो धर्मः परार्थं कर्म नैपुणम् ।

पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता ॥१४८॥



इस दुनियामें भीटी भीटी करते बनानेवाले बहुत पाये जाते हैं पर कड़वी और हितकारक घालीके कहने तथा सुननेवाले दोनों ही दुर्लभ हैं ॥ १४६ ॥ अन्टी प्रकार पचा हुआ अन्न, सुशिक्षित पुत्र, मत्ती प्रकार शासनके अन्दर रखी हुई स्त्री, अन्टी तरह सेवित राजा, विचारपूर्ण भाषण और समस्त बुराकर किया हुआ कर्म—इन सबमें बहुत काल बीत जानेपर भी दोष उत्पन्न नहीं होता ॥ १४७ ॥ उपकार ही परमधर्म है, दूसरोंके लिये किया हुआ कर्म ही चातुर्य है, शाशासकी दान देना ही परम काम ( काम्यवरतु ) है और तृष्णाहीनता ही परम मोक्ष है ॥ १४८ ॥





ॐ

## अष्टमोऽक्षरः

सुखसंगसूक्तिः

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सते  
सा कामधुकामितमेव दोग्धि ।  
चिन्तामणिचिन्तितमेव दत्ते  
सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूते ॥ १ ॥  
वृष्यां छिन्ते शमयति मदं ज्ञानमाविष्करोति  
नीतिं सते हरति विपदं सम्पदं सञ्चिनोति ।

---

कल्पद्रुमः केवल कल्पित वस्तुएँ ही देता है, कामधेनु केवल  
इच्छित भोग ही प्रदान करती है तथा चिन्तामणि भी चिन्तित पदार्थ ही  
देती है; किन्तु सत्पुरुषोंका सङ्ग सभी कुछ देता है ॥ १ ॥ सज्जनोंकी  
सङ्गति पुरुषोंके लिये दोनों लोकोंमें शुभकी प्राप्ति करानेवाली  
है, दुःख-दलनमें दक्ष है, भला, वह कौन-सा निर्मल फल नहीं

पुंसां लोकद्वितयशुभदा सङ्गतिस्सज्जनानां  
 किं वा कुर्यान्न फलममलं दुःखनिर्णाशदक्षा ॥ २ ॥  
 तुल्याम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।  
 भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ३ ॥  
 न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।  
 न स्वाध्यायस्तपस्त्याग इष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥ ४ ॥  
 व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।  
 यथावरुन्धे सत्सङ्गस्सर्वसंगापहो हि माम् ॥ ५ ॥  
 न तथा क्षयवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ।  
 यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥ ६ ॥

दे सकती । वह चित्तकी तुष्णा और मदको शान्त कर देती है, ज्ञानका आविर्भाव करती है, नीतिको जन्म देती है, विपत्तिका क्षय और सम्पत्तिका सञ्चय करती है ॥ २ ॥ यदि भगवान्में आसक्त रहनेवाले संतोंका क्षणभर भी सङ्ग प्राप्त हो तो उसके स्वर्ग और मोक्षतककी तुलना नहीं कर सकते, फिर अन्य अभिलषित पदार्थोंकी तो बात ही क्या है ! ॥ ३ ॥ समस्त आसक्तिर्योंको दूर करनेवाला छत्संग जिस प्रकार मुझे बशीभूत करता है वैसा न योग, न सांख्य, न धर्म, न स्वाध्याय, न तप, न त्याग, न इष्टापूर्त्तं, न दक्षिणा, न व्रत, न यज्ञ, न वेद, न तीर्थ और न नियमादि ही कर सकते हैं ॥ ४-५ ॥ हे राजन् ! पापी पुरुष रूपस्था आदिसे वैसा पयित नहीं हो सकता जैसा कि भगवान् कृष्णमें मन लगाकर उनके भक्तोंकी सेवा करनेसे हो सकता

• अविष्णवेः । † भागवते १ । १८ । १३; ११ । १२ । १-२; ५।१।१५

रहगणिततपसा न याति  
 न चैव्यया निर्वपणाद्गृहादा ।  
 नच्छन्दमा नैव जलाप्रिशूर्य-  
 विना महत्पादरजोगमिपेकम् ॥ ७ ॥\*

‘जात्य’ धियो हरति मिश्रानि वाचि सत्यं  
 मानोघनिं दिशति पापमपाकरोति ।  
 चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं  
 सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ ८ ॥†

✓ यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं  
 तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलितं मम मनः ।  
 यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं  
 तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ ९ ॥‡

हे ॥ ६ ॥ हे रहगण ! महान् पुरुषोंकी चरणरजका सेवन किये बिना इस पदपर न तपसे पहुँचा जा सकता है, न गहसे, न दानसे, न वेदसे और न जल, अग्नि अथवा सूर्यसे ही पहुँचा जा सकता है ॥ ७ ॥ कहिये, सत्संगति पुरुषोंका क्या उपकार नहीं करती ! वह बुद्धिकी जड़ताको हरती है, वाणीमें सत्यका सञ्चार करती है, सम्मान बढ़ाती है, पापको दूर करती है, चित्तको आनन्दित करती है और समस्त दिशाओंमें कीर्तिका विस्तारकरती है ॥ ८ ॥ जब मैं थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्तकर हाथीके समान मदान्ध हो रहा था उस समयमेरा मन ‘मैं ही सर्वज्ञ हूँ’ ऐसा सोचकर घमण्डमें चूर था । परन्तु जब विद्वानोंके पास रहकर कुछ-कुछ ज्ञान प्राप्त किया तो ‘मैं मूर्ख हूँ’ ऐसा समझनेके कारण एकरके समान मेरा दर्प दूर हो गया ॥ ९ ॥

तच्च चिन्तय सततं चित्ते

परिहर चिन्तां नश्वरचित्ते ।

क्षणमिदं सञ्जनसङ्गतिरेका

भवति भवार्णवतरणे नीका ॥१०॥

परिचरितव्याः सन्तो यद्यपि

कथयन्ति नो सदुपदेशम् ।

यास्तेषां स्वैरकथास्ता

एव भवन्ति शास्त्राणि ॥११॥

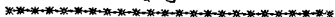
भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्थान्तातिशान्तात्मनां

मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा ।

साहं यः कुरुते सदोधतमतिस्त्वत्सेवनानन्यधी-

र्षोऽस्तस्य करे स्थितोऽहमनिर्गुणो मये नान्यथा ॥१२॥

विषयों निरन्तर तर्कचिन्तन करो, नाशवान् बनही चिन्ता छोड़ दे  
गङ्गानीकी एक धाराकी सङ्गति भी सकारणागरसे तेरनेके लिये नीका  
हो जाती है ॥ १० ॥ संत जोई उपदेशन भी करें तब भी उनही से  
करनी ही चाहिये क्योंकि जो उनही से बचता जाते होती है वे भी शा  
ही है ॥ ११ ॥ जो तत्परतापूर्वक साधुसेवामें अनन्य बुद्धि रखता हुआ  
मेरे भक्तोंका, निर्मल और शान्त विषयमें योगिवीका, मेरी सेवा-पूजा  
अनुराग रखनेवालीका तथा निर्मल कामिप्रेषा तथा ही गद्ग करता है, जो  
उठके करतकाम होता है और मैं आर्जित उठकी दृष्टिसे विषय बन  
गता है, तूहरे किली उपायमें मैं दर्शन नहीं दे सक्या ॥ १२ ॥



भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन  
सत्सङ्गमेव लभते पुरुषो यदा वै ।

अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-  
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥१३॥\*

### शिवोक्तसूक्तिः

परस्त्री मातेव क्वचिदपि न लोभः परधने  
न मर्यादाभङ्गः क्वचिदपि न नीचेष्वभिरतिः ।  
रिपौ शौर्यं धैर्यं विपदि विनयः सम्पदि सदा  
इदं वच्मो भ्रातर्भरत ! नियतं ज्ञास्यसि मुदे ॥१४॥  
लब्धा विद्या राजमान्या ततः किं  
प्राप्ता सम्पद्वैमवाढया ततः किम् ।

बहुत जन्मके पुण्य-पुञ्जसे भाग्योदय होनेपर जब पुरुषको सत्सङ्गकी ही प्राप्ति होती है तभी अज्ञानकृत मोह और मदरूपी अन्धकारका नाश करके विवेकका उदय होता है ॥ १३ ॥

[भगवान् राम कहते हैं—] हे भार्गव भरत ! परस्त्रीको मातृवत् समझना, परधनका कभी लोभ न करना, मर्यादाका कभी भङ्ग न करना, नीचोंकी संगतिमें कभी प्रेम न करना, शत्रुके प्रति दूरता प्रदर्शित करना, विपत्तिमें धैर्य रखना तथा सम्पत्तिमें विनीत होना—ये सब प्रसन्नताके निमित्त हेतु हैं, ऐसा जानो ॥ १४ ॥ जिसने अपने आत्माका साक्षात्कार नहीं किया उसने यदि राजमान्या विद्याका उपार्जन कर लिया तो क्या ! विचित्र वैभवयुक्त

भुक्ता नारी सुन्दराङ्गी तवः किं

येन स्वात्मानैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥१५॥

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा  
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्

प्रोदीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्पुद्यमः कीदृशः ॥१६॥\*

मज्ज विभ्रान्ति त्यज रे भ्रान्तिं निश्चिनु शैवं निजरूपम् ।

हेयादेयातीतं सच्चित्सुखरूपस्त्वं भव शिष्टः ॥१७॥†

कदाहं भो स्वामिन्नियतमनसा त्वां हृदि भज-

नमद्रे संसारे ह्यनवरतदुःखेऽतिविरतः ।

सम्पत्ति प्राप्त कर ली तो क्या ! और सुन्दरी स्त्रीका उपभोग भी कर लिया तो क्या ! ॥ १५ ॥ जबतक कि यह शरीररूपी घर स्वस्थ है, वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं हुआ है, इन्द्रियोंकी शक्ति धीण नहीं हुई है और आयु भी ढली नहीं है, तभीतक विद्वान्को अपने शुभके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये, नहीं तो परम आग लग जानेपर कुर्छो खोदनेका प्रयत्न करनेसे क्या होगा ! ॥ १६ ॥ विभ्राम ले, भ्रम छोड़, ग्रहण-व्यागसे रहित अपने कल्याणमय स्वरूपका निश्चय कर, तू सच्चिदानन्दस्वरूप है। अरे ! तू सत्पुरुष बन ॥ १७ ॥ हे स्वामिन् ! स्थिर चित्तसे तुम्हें हृदयमें स्मरण करता हुआ, निरन्तर दुःखमय और अमङ्गलरूप इस

\* भर्तृहरेर्वैराग्यशतकात् । † स्वामिकृष्णानन्दकृष्णशिशुश्रीवात् ।

लभेयं तां शान्तिं परममुनिमिर्यां बाधिगता  
 दयां कृत्वा मे त्वं वितर परशान्तिं भवहर ॥१८॥†  
 कदाहं हे स्वामिञ्जनिभृतिमयं दुःखनिविडं  
 भवं हित्वा सत्येऽनवरतमुखे स्वात्मवपुषि ।  
 रमे तस्मिन्नित्यं निखिलमुनयो ब्रह्मरसिका  
 रमन्ते यस्मिंस्ते कृतसकलकृत्या यतिवराः ॥१९॥†  
 कदा मे हृत्पत्रे भ्रमर इव पत्रे प्रतिवसन्  
 सदा ध्यानाभ्यासादनिशमुपहृतो विभुरसौ ।  
 स्फुरज्ज्योतीरूपो रविरिव रमासेव्यचरणो  
 हरिप्यत्यज्ञानाज्जनिततिमिरं तूर्णमखिलम् ॥२०॥†

संसारसे अत्यन्त विरक्त होकर महामुनियोंद्वारा प्राप्त की हुई परम  
 शान्तिको मैं कब पाऊँगा ? हे भवभयनाशक ! दया करके आप मुझे  
 वह परम शान्ति दें ॥ १८ ॥ हे स्वामिन् ! जन्म-मरणमय दुःखोंसे  
 परे हुए इस संसारको छोड़कर, जिसमें ब्रह्मामृतके प्रेमी सभी मुनि और  
 तत्कृत्य यतिवर निरत रहते हैं, उस सत्यस्वरूप एकरस आनन्दमय  
 अपने आत्मस्वरूपमें मैं कब नित्य रमण करूँगा ॥ १९ ॥ सूर्यकी तरह  
 दीप्यमान ज्योतिःस्वरूप, लक्ष्मीसे सेवित चरणोंवाले, तथा अनवरत  
 ध्यानाभ्याससे नित्य आवाहन किये हुए वे भगवान् विष्णु मेरे  
 हृदय-कमलमें भ्रमरके समान रहते हुए, अज्ञानसे उत्पन्न  
 सम्पूर्ण हृदयान्धकारका कब शीघ्रतासे नाश करेंगे ? ॥ २० ॥

न रम्यं नारम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि  
 प्रियत्वं यत्र स्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात् ।  
 रथाङ्गाह्वानानां भवति विधुरङ्गारशकटी-  
 पटीराम्भःकुम्भः स भवति चकोरीनयनयोः ॥२१॥  
 धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-  
 मानन्दाश्रुजलं पियन्ति शकुना निःशङ्कमङ्गेशयाः ।  
 अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-  
 म्नीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परिधीयते ॥२२॥  
 जिह्वे लोचन नासिके श्रवण हे त्वक् चापि नो वार्यसे  
 सर्वेभ्यस्तु नमस्कृताञ्जलिरहं सप्रभ्रयं प्रार्थये ।

कोई भी वस्तु स्वभावतः अच्छी या बुरी नहीं है; जहाँ वह प्रिय है वहाँ ही उसको ग्रहण करनेवाले अधिकारीके भेदसे वह अप्रिय भी मान्न होती है, चकवोंके लिये चन्द्रमा जलती हुई अँगीठी है और वही चकोरीके लिये घीतल अण्डसे मरा पहा है ॥ २१ ॥ गिरि-कन्दरामें निवास करनेवाले परमेशके ध्यानमें मग्न हुए, धन्य योगीजनोंके आनन्ददाशुभ्रोंको गोदमें बैठे हुए पर्यागण निःशङ्क होकर पंते हैं, पर हमलोगोंकी आयु ही मनोरथमय महलके सरीरतटोंपर स्थित विदार-विरिनमें आलोड-प्रमोद करते ही झपतीत हो जाती है ॥ २२ ॥ हे जिह्वे, नेत्र, नासिके, कर्ण और त्वषाभो ! मैं तुम्हें रोक्ता नहीं हूँ, परन्तु तुम सभीको हाथ जोड़ प्रणाम करके सविनय प्रार्थना करता हूँ, कि यदि तुम्हागी सम्झति हो लो



युष्माकं यदि सम्मतं तदधुना नात्मानमिच्छाम्यहं  
 होतुं भूमिधुजां निसर्गदहनज्वालाकराले गृहे ॥२३॥\*  
 मातर्माये भगिनि कुमते हे पितर्मोहजाल  
 च्यावर्तध्वं भवतु भवतामेव दीर्घो वियोगः ।  
 सद्यो लक्ष्मीरमणचरणभ्रष्टगङ्गाप्रवाह-  
 ष्यामिश्रायां ह्यदि परमव्रजदृष्टिर्भवामि ॥२४॥\*  
 धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्  
 सेवस्व साधुपुरुषाञ्चिदि कामतृष्णाम् ।  
 अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु भ्रुक्त्वा  
 सेवाफथारसमहो नितरां पिव त्वम् ॥२५॥  
 नन्दन्ति मन्दाः श्रियमप्यनित्यां  
 परं विपीदन्ति विपद्गृहीताः ।

अब मैं राजाओकी स्वाभाविक अपमानाग्रिकी लम्पटोंसे भयङ्कर धरोमें  
 अपनी आहुति नहीं देना चाहता ॥ २३ ॥ अरी माँ माया ! ओ बहिन  
 कुमति ! हे पिता मोह ! अब तुम लोट जाओ, भगवान् करें अब हमसे  
 आपलोगोंका सदाके लिये वियोग हो जाय ! मैं अब दीर्घ ही  
 रमानाथके चरणकमलोंसे निर्गत श्रीगङ्गाजीके प्रवाहमें पड़ी हुई  
 शिलाके ऊपर ( बैठकर ) परब्रह्मका ध्यान करनेवाला हूँ ॥ २४ ॥  
 निरन्तर धर्मका ही अनुशीलन कर, लौकिक धर्मोंको छोड़, साधु पुरुषों-  
 की सेवा कर और कामतृष्णाका सर्वथा त्याग कर तथा तुरन्त ही  
 अन्य पुरुषोंके गुण-दोषोंका चिन्तन छोड़कर भगवत्सेवा और भगवत्कथा-  
 की माधुरीका पान कर ॥ २५ ॥ मन्दमति पुरुष अनित्य धनादिसे  
 आनन्दित होते हैं और विपत्तिग्रस्त होनेपर अत्यन्त विपाद करते हैं, किन्तु

विवेकदृष्टया चरतां नराणां

श्रियो न किञ्चिद् विपदो न किञ्चिद् ॥२६॥

अधीत्य चतुरो धेदान् ध्याकृत्याष्टादश स्मृतीः ।

अदो श्रमस्य वैकल्पमात्मापि कलितो न चेत् ॥२७॥

इतो न किञ्चित्परतो न किञ्चिद्

यतो यतो यामि ततो न किञ्चिद् ।

विचार्य पश्यामि जगत्त्र किञ्चिद्

स्वात्मारभ्योपादधिकं न किञ्चिद् ॥२८॥

पुराणान्ते श्रमशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः ।

सा मतिः सर्वदा चेत् स्यात् को न मृष्येत बन्धनान् ॥२९॥

✓ नास्ति कामदमो ध्याधिनास्ति मोहदमो रिपुः ।

नास्ति क्रोधदमो शक्तिर्नास्ति शानात्परं सुखम् ॥३०॥

विवेकदृष्टिसे चलनेवाले पुरुषोंके दिने न घनादि ही कुछ है और न किम ही ॥ २६ ॥ चारों धेरीकां पदुकर और मझारों स्मृतिदीकी स्वात चरके भी यदि आत्मज्ञान नहीं हुआ तो साग परिभ्रम व्यर्थ ही है ॥ २७ ॥ न इषा ही कुछ है, न उषा ही, अर्धो-अर्धो जगता है बही कुछ भी नहीं विचार चरके देखाता है तो वह जगत् भी कुछ नहीं है, आत्मज्ञानके बोधने क चर और कुछ भी नहीं है ॥ २८ ॥ पुराणभङ्गके पश्चात् कलित मोटनेके बाद और मैथुन करनेके अनन्तर जो ब्रह्म रहती है, वह क सर्वदा बनी रहे तो कौन बन्धनने मुक्त न हो जायगा ? ॥ २९ ॥ काम लज्जान बोरे रोग नहीं, मोहके लज्जान बोरे मृत्यु नहीं, शोषके लज्जान बोरे शान नहीं और शानके लज्जान बोरे सुख नहीं है ॥ ३० ॥

\*\*\*\*\*

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम् ।

न वृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः ॥३१॥\*

न च विद्यासमो बन्धुर्न मुक्तेः परमा गतिः ।

न वैराग्यात् परं भाग्यं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥३२॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥३३॥†

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम् ।

शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥३४॥‡

अस्मिन्महामोहमये कटाहे

सूर्याग्निना रात्रिदिनेन्धनेन ।

शान्तिके समान कोई तप नहीं है, सन्तोषसे बढ़कर कोई सुख नहीं है, वृष्णासे बढ़ी कोई व्याधि नहीं है और दयाके समान कोई धर्म नहीं है ॥ ३१ ॥

विद्याके समान कोई बन्धु नहीं है, मुक्तिके बढ़कर दूसरी गति नहीं है, वैराग्यसे बढ़कर भाग्य और त्यागसे बढ़कर सुख नहीं है ॥ ३२ ॥

कामनाओंकी इच्छा उपभोगसे कमी शान्त नहीं होती, अग्नि पीने आगके समान वह उपभोगद्वारा शीर बढ़ती ही जाती है ॥ ३३ ॥ प्रति-

दिन जीव यमराजके घर जा रहे हैं, तो भी अल्प लोग यहाँ गिर रहना चाहते हैं, इससे बढ़कर क्या आश्चर्य है ॥ ३४ ॥ कालकपी

रमोदया महामोहकपी कटाहमें माग और जनुकपी करदुल्लसे उपक-

मासर्तुर्दर्वीपरिघट्टनेन

भूतानि कालः पचतीति वाचा ॥३५॥

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषयन्त्यजेः ।

क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत् पिवेः ॥३६॥

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते

मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।

तूर्णं धत्तेत नु पतेदनुमृत्सु याव-

न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥३७॥

स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ।

क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥३८॥

पयल करके रात और दिनरूपी इग्धनसे सूर्यरूपी अग्निद्वारा समी जीवों को पका रहा है, यही यथार्थ बात है ॥ ३५ ॥ भाई ! यदि तुझे मुक्ति इच्छा है तो विषयोंको विषके समान त्याग दे तथा क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्यको अमृतके समान ग्रहण कर ॥ ३६ ॥ जने जन्मोंके उपरान्त इस परम पुरुषार्थके साधनरूप नर-देहको, जो अनि होनेपर भी परम दुर्लभ है, पाकर धीर पुरुषको उचित है जबतक वह पुनः मृत्युके बहुलमें न पड़े, तबतक क्षीप्र ही अग्निःश्रेयस- ( मोक्ष ) प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर ले, क्योंकि विषय तो स योनियोंमें प्राप्त होते हैं [ इनके संग्रह करनेमें इस अमूल्य अवसर न खोवे ] ॥ ३७ ॥ [ भगवान् कहते हैं— ] विषेकी पुरुषको चाहिये वह स्त्री और स्त्रीसङ्गियोंका सङ्ग दूरसे ही त्यागकर निर्भय और निष्कान्त स्थानमें बैठकर आलस्यरहित होकर मेरा चिन्तन करे ॥ ३८ ॥

• महाभारते वनपर्वणः । † अष्टावक्रगीतायाः । ‡ श्रीमद्भागवते ११ ।

२५ ॥ २१ । २४ । २५ ।



न तथास्य भवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।

योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥३९॥\*



### शैराग्यारसूक्तिः

दान्तस्य किमरण्येन तथादान्तस्य भारत ।

यत्रैव निवसेदान्तस्तदरण्यं स चाश्रमः ॥४०॥†

गृहे पर्यन्तस्थे द्रविणकणमोषं श्रुतवता

स्ववेश्मन्यारक्षा क्रियत इति मार्गोज्यमुचितः ।

नरान्गेहाद्गेहात् प्रतिदिवसमाकृष्य नयतः

कृतान्तात् किं शङ्का न हि भवति रे जागृत जनाः ॥४१॥‡

किसी अन्यके सङ्गसे इस ( मुमुक्षु ) पुरुषको ऐसा क्लेश और बन्धन नहीं होता, जैसा कि स्त्री अथवा उसके सङ्घियोंके संगसे होता है ॥३९॥

जो संयमी है उसे वनकी क्या आवश्यकता ! और जो असंयमी है उसे वनमें जानेसे लाभ क्या ! संयमी जहाँ भी रहे उसके लिये वही वन है और वही आश्रम है ॥ ४० ॥ पहलोकके घरमें चोरी होनेकी बात सुनकर अपने घरका प्रबन्ध किया जाता है, यह उचित ही है किन्तु घर-घरसे प्रतिदिन मनुष्योंको पकड़कर ले जाते हुए कालमें क्या कुछ भी भय नहीं होना ? अतएव हे मनुष्यों ! अब भी सावधान हो

\* श्रीमद्भागवते ११ । १४ । १० । † महाभारते । ‡ शिल्पनविग्रह

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां

गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।

अकृत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते

निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥४२॥

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ

नेत्रे साधुबिलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ।

अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो

रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहस्रा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥४३॥६

सेवध्वं विद्युघास्तमन्धकरिपुं मा क्लिश्यतान्यश्रुते

यस्मादत्र परत्र च त्रिजगति त्राता स एकः शिवः ।

आओ ॥ ४१ ॥ रागीको वनमें भा दोषोंकी जायति हो जाती है और घरमें रहकर भी पाँचों इन्द्रियोंका संयम किया जाय तो वह तप ही है । जो निर्दोष कर्ममें मग्न होता है उस विरक्त पुरुषके लिये घर भी तपोवन ही है ॥ ४२ ॥ [ एक मृत मानव-शरीरको सानेके लिये उद्यत हुए किसी गीदड़को आकाशवाणीने सावधान किया ] अरे गीदड़ ! इस अति निन्दनीय नीच शरीरको घाँस ही त्याग दे [ क्योंकि ] इसके हाथ दानविवर्जित हैं, कर्ण दाम्बद्रोही हैं, नेत्र साधुबिलोंके दर्शनसे रहित हैं, चरणोंने कभी तीर्थ-गमन नहीं किया, उदर अन्यायार्जित धनसे ही पाला गया है और यह शिर सदा ही गर्वसे ऊँचे उठा रहता था ॥ ४३ ॥ हे विद्वानो ! महादेव-जीकी ही सेवा करो, अन्य शास्त्रोंमें ज्ञेय न उठाओ, क्योंकि यहाँ-यहाँ और तीनों लोकोंमें एकमात्र वे ही रहस्य हैं [ विचार करो कि ] देवान्

आयानं नियतेर्ब्रह्मान् सुविषमं कालान् करालाद्भये  
 कुत्र व्याकरणं कं तर्ककलहः काव्यभ्रमः कापि वा ॥४४॥  
 मेको घावति तं च घावति कृष्णी सर्पं शिर्षी घावति  
 व्याघ्रो घावति केकिनं विधिवशाद् व्याधोऽपि तं घावति ।  
 स्वस्याहारविहारसाधनविधां गमं जना व्याकुलाः  
 कालस्तिष्ठति पृष्ठतः कचघरः केनापि नो दृश्यते ॥४५॥  
 म्यःसिन्धुतीरेऽपविधातवीरे

बहत्समीरे करलम्यनीरे ।

वसन्कुटीरे परिघाय चीरे

करोम्यधीरे न रुचिं शरीरे ॥४६॥

यस्या बीजमहङ्कृतिर्गुरुतरं मूलं ममेतिप्रदो

भोगस्य स्मृतिरङ्कुरः सुतसुताज्ञात्यादयः पल्लवाः ।

विकराल कालसे विषम भय उपस्थित होनेपर कहाँ व्याकरण, कहाँ तर्कशास्त्रका विवाद और कहाँ काव्यरचनामें परिभ्रम करनेका अवसर है ? ॥ ४४ ॥ मेंढक दौड़ता है, उसके पीछे सर्प दौड़ता है, सर्पके पीछे मयूर, मयूरके पीछे सिंह और देवान् सिंहके पीछे व्याघ्र (शिकारी) दौड़ रहा है, इस प्रकार अपने भोजन और विशारकी सामग्रियोंके पीछे सभी व्याकुल हो रहे हैं; पर, पीछे जो चोटी पकड़े हुए काल खड़ा है उसे कोई नहीं देखता ॥ ४५ ॥ जहाँ शीतल वायु बह रही है, अञ्जलिसे ही जल पीनेको मिल जाता है; ऐसे पाप नाश करनेमें धीर गङ्गातीरपर, बख्शोंके दो टुकड़े पहिन कुटियामें निवास करता हुआ मैं इस क्षणमङ्कुर शरीरसे प्रेम नहीं करूँगा ॥ ४६ ॥ जिसका बीज अहङ्कार है, 'यह मेरा है' इस प्रकारका आप्रह ही गुरुतर मूल है, अङ्कुर विषयचिन्तन है, पुत्र, पुत्री, जाति

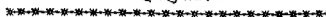
-----

स्कन्धो दारपरिग्रहः परिभवः पुष्पं फलं दुर्गतिः  
 सामे ब्रह्मविभावनापरशुना तृष्णालता लूयताम्  
 निःस्यो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो  
 लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति  
 चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति  
 ब्रह्मा शैवपदं शिवो हरिपदं द्वाशावधिं को गतः  
 रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं

भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः  
 इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेके  
 हा हन्त हन्त नलिनीं गज उजहार ॥

आदि पत्ते हैं, स्त्री-संग्रह स्कन्ध है, अनादर पुष्प है, और फल है, वह मेरी तृष्णालिपिणी लता ब्रह्मविभावनारूपी परशु हो ॥ ४७ ॥ जिसके पास कुछ नहीं है वह सौ रुपये चाहा रुपयेवाला सहस्र, सहस्रवाला लक्ष, लक्षपति पृथिवीका अ पृथ्वीपति चक्रवर्ती होना, चक्रवर्ती इन्द्रपद, इन्द्र ब्रह्मपद, ब्रह्म और शिव विष्णुपदकी इच्छा करते हैं । फिर बताओ, सीमाको किसने पार किया है ? ॥ ४८ ॥ [कमलबनमें मकरन्दका करनेवाला एक भ्रमर जब कमल बन्द होने लगा तो उसमें बन्द तब वह मनसूत्रे गोंठने लगा—] रात बीतेगी, सुन्दर प्रभ सुर्ष उदित होंगे और कमलकी कलियाँ विकसित होंगी [त स्वच्छन्द विचरेंगा] इस प्रकार जब वह कमल-कोशमें बैठा विचर या, खेद है कि इतनेहीमें हाथीने कमलको उखाड़ फेंका





भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-

स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।

कालो न यातो वयमेव याता-

स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥५०॥\*

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं

मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।

शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं

सर्वं वस्तु भयावहं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥५१॥\*

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो

व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ।

हमने भोगोंको नहीं भोगा, भोगोंने ही हमें भोग लिया, हमने तप नहीं किया, स्वयं ही तप्त हो गये, काल व्यतीत नहीं हुआ, हम ही व्यतीत हो गये और मेरी तृष्णा नहीं जीर्ण हुई हम ही जीर्ण हो गये ॥ ५० ॥ भोगोंमें रोगका भय है, ऊँचे कुलमें पतनका भय है, धनमें राजाका, मौनमें दीनताका, बलमें शत्रुका तथा रूपमें वृद्धावस्थाका भय है, और शास्त्रमें वाद-विवादका, गुणमें दुष्ट जनका तथा शरीरमें फालका भय है, इस प्रकार संसारमें मनुष्योंके लिये सभी वस्तुएँ भयपूर्ण हैं, भयसे रहित तो केवल वैराग्य ही है ॥ ५१ ॥ जो दुबल है, काना है, लँगड़ा है, कनकटा है, घुँघुसे हीन है, जिसका सारा अंग पाथोंसे मरा और पीसने योग्य हुआ है, सैकड़ों कीड़ोंसे जिमका शरीर परिपूर्ण है, जो भूखसे ब्याकुल और जराग्रस्त है तथा जिसके गलेमें मिट्टीके

ॐ वैराग्यसूक्ति ॐ

-----

ध्रुवाक्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः  
 शुनीमन्वेति श्वा इतमपि च हन्त्येव मदनः ।  
 गङ्गातीरे द्विमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य  
 ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य  
 किं तैर्मान्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः  
 सम्प्राप्स्यन्ते जरटहरिणाः शृङ्गकण्ठविनोदम्  
 आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला  
 रागप्राह्वती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी  
 मोहावर्चसुदुस्तरातिगहना प्रोचुञ्जचिन्तातटी  
 तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वरः

पद्मेका कण्ठ फँसा हुआ है ऐसा कुत्ता भी कुत्तीके पीछे दौरे  
 ओह ! यह कामदेव मरे हुएको भी मारता ही है ॥ ५२ ॥  
 ऐसे शुभ दिन आयेंगे ! जब भोगप्राप्तीके तटपर हिमालयके  
 ऊपर पद्मासन लगाये हुए, ब्रह्मचिन्तनका अभ्यास करते-करते  
 ( समाधि ) के प्राप्त होनेपर बृहद् मृग निःशङ्क होकर मेरे शरीर  
 हीन सुखजानेका आनन्द लेंगे ॥ ५३ ॥ आशा नामकी एक  
 नदी है, जिसमें मनोरथरूपी जल है, तृष्णारूपी तरंग हैं, राग  
 हैं । संकरूप-विकल्परूपी परती है, और जो धैर्यरूपी तटके बृहद्  
 देनेवाली है तथा जिसकी अति गम्भीर और दुस्तर मोटा  
 है, तथा जिसके चिन्तारूपी ऊँचे ऊँचे करारे हैं, उसके  
 गये हुए विशुद्धचित्त योगीश्वर ही आनन्दित होते हैं

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुमिः स्वीयते गर्भमध्ये  
 कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषये यावने विप्रयोगः ।  
 नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः  
 संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वरूपमप्यस्ति किञ्चिन् ५५\*  
 गात्रं सङ्कुचितं गतिविंगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-  
 र्दष्टिर्नश्यति वर्धते वधिरता वक्त्रं च लालायते ।  
 वाक्यं नाद्रियते च वान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते  
 हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥५६॥\*  
 उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं घ्माता गिरेर्घातवो  
 निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः ।

गर्भमें अति दुर्गन्धिपूर्ण स्थानमें बड़ी कठिनतासे शरीर सिकोड़कर ठहरा जाता है, स्त्रीके वियोगजन्य ज्ञेशसे मिश्रित जिसके विषय हैं उस युवावस्थामें भारी वियोगका कष्ट उठाना पड़ता है तथा जिसमें स्त्रियों भी अवज्ञा करें, वह वृद्धावस्था भी अति दुःखमयी है, अरे मनुष्यो ! यदि संसारमें थोड़ा भी कोई सुख हो तो बताओ ॥ ५५ ॥ शरीर शिथिल हो जाता है, चला जाता नहीं, दाँत गिर जाते हैं, आँखोंसे सूझता नहीं, बहिरापन बढ़ने लगता है, मुखसे लार टपकने लगती है, वान्धवलोग घातका आदर नहीं करते, स्त्री सेवा नहीं करती और पुत्र भी शत्रुता करने लगते हैं, हाय ! बूढ़े मनुष्यको बड़ा ही कष्ट होता है ॥ ५६ ॥ घन-प्राप्तिकी आशङ्कासे मैंने पृथ्वी खोद डाली, पर्वतके घातुओंको फूँका, समुद्रको पार किया, नाना उपायोंसे राजाओंको सन्तुष्ट किया और मन्त्राराधनमें तत्पर रहते

मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः  
 प्राप्तः काण्वराटकोऽपि न मया तृष्णे सकामा भव ॥५७॥  
 आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं  
 व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।  
 दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते  
 पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥५८॥  
 अज्ञानन्दाद्वात्म्यं पतति शलभो दीपदहने  
 स मीनोऽप्यज्ञानाद्द्विडिशयुतमश्नाति पिशितम् ।  
 विज्ञानन्तोऽप्येते वयमिह विषज्जालजटिला-  
 न्न मुञ्चामः कामानदह गहनो मोहमहिमा ॥५९॥

हुए श्मशानमें रात्रियों वितार्यों, किन्तु अभी तक एक कानी कौड़ी  
 नहीं मिली, अरी तृष्णे ! अब तो तू सफल हो ! ॥ ५७ ॥ सूयके उल  
 और अलासे जीवन धीन हो रहा है, विविध कार्योंके भारसे गुदतर प्रत  
 होनेवाले नाना प्रकारके व्यापारोंसे समय जाता माख्म ही नहीं पद  
 जन्म, जरा और मरणकी विपत्तिकी देखकर भी चित्तमें भय नहीं होता  
 संसार मोहमयी प्रमादरूपा मदिरा पीकर उन्मत्त हो गया है ॥ ५८  
 पतङ्ग दीपकके दाहक स्वरूपको न जाननेके कारण ही उस  
 गिरता है, मत्स्य भी अज्ञानवश ही मांसखण्डको निगलता  
 किन्तु हम कामनाओंकी विपत्तिसमूहसे संकीर्ण जानकर भी उ  
 नहीं त्यागते, अहो ! मोहकी महिमा भी बड़ी ही प्रबल है ॥ ५९

आयुः कछोललोलं कतिपयदिवसस्यायिनी यौवनश्री-  
 रर्याः सङ्कल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपुराः ।  
 कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियामिः प्रणीतं  
 ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवमयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥६०॥  
 जीर्णा एव मनोरयाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं  
 इन्ताङ्गेषु गुणाश्च घन्ध्यफलतां याता गुणहीविना ।  
 किं युक्तं सहसाम्युपैति बलवान्कालः कृतान्तोऽक्षमी  
 द्वाज्ञातं स्मरशासनाङ्घ्रियुगलं भुक्त्वास्ति नान्या गतिः ॥६१॥  
 नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नायो यदि  
 स्थित्वा द्रक्ष्यति कृप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ।

आयु तरङ्गकी तरह चञ्चल है, यौवनकी शोभा भी कुछ ही दिन टहरनेवाली  
 है, घन केवल सङ्कल्पमात्र है, भोगसामग्री वर्षाकी विजलीकी तरह  
 चमकती है, प्रियतमाओंका प्रेमालिङ्गन भी चिरस्थायी नहीं, इसलिये  
 संसार-सागरको पार करनेके लिये ब्रह्ममें ही चित्तको लीन करो ॥ ६० ॥  
 सभी मनोरथ मनमें ही जीर्ण हो गये, यौवन बुढ़ापेमें परिणत हो  
 गया, खेद है कि गुणप्राहकोंके बिना गुण भी शरीरके अन्दर ही निष्कल  
 हो गये, क्षमा न करनेवाला बलवान् कालरूपी यम सहसा आ रहा है,  
 अब क्या करना चाहिये ! हाँ अब समझनेमें आया, शिवजीके चरणोंको  
 छोड़कर अन्य गति नहीं है ॥ ६१ ॥ अभी तेरी मुलाकातका  
 समय नहीं है, इस समय गुप्त विचार हो रहा है, और स्वामी  
 अभी सो रहे हैं, यदि उठकर तुम्हें (खड़ा) देख लेंगे  
 तो मालिक नाराज होंगे, इस प्रकार जिनके दरवाजेपर द्वारपाल

-----

चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशित्तु-  
निर्दावारिकनिर्दयोक्त्यपरुपं निस्सीमशर्मप्रदम् ॥६२॥  
रे कन्दर्प करं कदर्धयसि किं कोदण्डटङ्कारितै  
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ।  
बाले स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं  
चेतश्चम्वितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्त्तते ॥६३॥

अहो वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा  
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा द्यपदि वा ।  
तृणे वा खीणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः  
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥६४॥

कहा करते हैं, अरे चित्त ! इनको स्वागकर उस विश्वेश देवके घर चम  
जहाँ न कोई द्वारपाल है और न निर्दय कठोर वचन सुनने पड़ते  
और जो असीम सुख-शान्ति देनेवाला है ॥ ६२ ॥ अरे काम ! अप  
धनुषके टङ्कोरसे हाथोंको क्यों बकाता है ! अरी कोयल ! तू अपने कोम  
कलरवोंसे वृथा क्यों बक-बक कर रही है ! ओ बाले ! तुम्हारे इन अ  
स्निग्ध, चातुर्यपूर्ण, भोले-भाले, मधुर और चञ्चल कटाक्षोंसे भी अब कु  
नहीं हो सकता । अब तो मेरा चित्त चन्द्रदोखर भीरांकरके चरणसरोवर  
ध्यानरूप अमृतका आस्वादन कर चुका है ॥ ६३ ॥ सर्प और पुष्पहार  
बलवान् शत्रु और मुहृदमें, मणि वा मिट्टीके देलेमें, पुष्पशय्या और शिल  
तया तृण और तरुणीमें, समदृष्टि रखते हुए किसी पुनीत कानन  
'शिव ! शिव ! शिव !' ऐसा जपते हुए मेरे दिन व्यतीत हों ॥ ६४ ॥

\*\*\*

मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनंजयः ।

सोऽपि कालवशं प्राप्तः कालो हि दुरतिक्रमः ॥६५

देहेऽस्त्रिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यजस्व

जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।

पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं

वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥६६

आनन्दमूलगुणपल्लवतत्त्वशाखा-

वेदान्तमोक्षफलपुष्परसादिकीर्णम् ।

चेतोविहङ्ग हरितुङ्गतलं विहाय

संसारशुष्कविटपे वद किं करोषि ॥६७

तरन्ति मातङ्गघटातरङ्गं

रणाम्युधिं ये मयि ते न शूराः ।

जिसके भगवान् कृष्ण तो मामा और अर्जुन पिता हैं, वह अभिमन्यु

मृत्युही प्राप्त हुआ, यह है; कोई भी कालको लॉप नहीं सकता ॥ ६५

इस अस्त्रि, मांस और रुधिरके पुञ्ज अपवित्र शरीरका अभिमान छो

खी-पुत्रादिकी भी ममता त्याग, इस जगत्को अरुनिश क्षणभङ्गुर, देख ॐ

वैराग्यरसका रसिक होकर भक्तिनिष्ठ बन ॥ ६६ ॥ जिसकी आनन्द

अद्द है, तीनों गुण पक्षे हैं, धोयीत तस्य शास्त्रार्थ हैं, वेदान्त ही पुष्प

और मोक्षरूपी फल हैं । अरे मनपशी ! उस हरितुङ्गकी विशाल पर्यसर

वृक्षको छोड़कर इस संसाररूपी मूले पेड़पर क्या कर रहा है ॥ ६७

हाथियोंकी घटा-(समूह) रूपी तरङ्गोदाले युद्ध-सागरको जो पार कर जा

ई वे मेरे अज्ञाननेमे शूर नहीं हैं, शूर तो वे ही हैं जो मनरूपी तरङ्गों

शूरास्त एवेह मनस्तरङ्गं

देहेन्द्रियाम्भोधिमिमं तरन्ति ॥६८॥

इमान्यमृतीति विभावितानि

कार्याण्यपर्यन्तमनोरमाणि ।

जनस्य जायाजनरञ्जनेन

जवाज्जरान्तं जरयन्ति चेतः ॥६९॥†

विद्राविते शत्रुजने समाप्ते

समागतायामभितथ लक्ष्म्याम् ।

सेव्यन्त एतानि सुखानि याव-

त्तावत्समायाति कुतोऽपि मृत्युः ॥७०॥†

पुनः पुनर्देवशादुपेत्य

स्वदेहभारेण कृतोपकारः ।

युक्त इस देहेन्द्रियादिरूप सन्दूकको पार करते हैं ॥ ६८ ॥ ये और बे-इस प्रकार सोचे हुए परिणाममें अहितकर कार्य, जिनमें राग उत्पन्न करते हुए, मनुष्यके चित्तको शीघ्र ही खराबीर्ण कर देते हैं ॥ ६९ ॥ शत्रुओंको पराजित करके और सर्वतोमुखी लक्ष्मीको प्राप्त करके, जबतक इन सब सुखोंके भोगनेका समय आता है, अहो ! तबतक मृत्यु अचानक कहींसे आ पहुँचती है ॥ ७० ॥ जिस संसारमें दैवश प्राप्त अपने शरीर और फलपुष्पादि अवयवोंसे धारधार उपकार करनेवाला वृक्ष भी

† योगशास्त्रमहाराजायने ।



पिन्दूयते यत्र तरुः कुठार-

राधागने तत्र हि कः प्रसङ्गः

घण्टुः कुञ्जीभूतं गतिरपि तथा यद्विशरण  
त्रिशोर्णा दन्तालिः श्रवणत्रिकलं श्रोत्रयुगलम्  
शिरः शुक्लं चक्षुस्त्रिमिरपटलैरावृतमहं  
मनो मे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति  
क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः  
क्वचिद्वीणावादः क्वचिदपि च हा हेति रुदितम्  
क्वचिद्रम्या रामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु-  
र्न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः

कुठारोंसे काटा जाता है, ऐसे वृक्ष संसारसे उपकारकी क  
है । ॥ ७१ ॥ शरीर कुबड़ा हो गया, चलते समय छड़ी टेकनी  
दौल दूट गये, दोनों कान भी बहरे हो गये, शिर श्वेत हो  
अन्धकारसमूहसे आवृत हो गये, फिर भी मेरा निर्लज्ज मन विषये  
करता है ॥ ७२ ॥ इस संसारमें कहीं विद्वानोंकी सभा है,  
मादिरा पीनेवालोंका कोलाहल हो रहा है, कहीं वीणाका मधुर स  
कहीं रोनेका हाहाकार हो रहा है, कहीं मुन्दर लियों हैं, तो म  
जर्जरित शरीर देखनेमें आते हैं, नहीं जान पड़ता यह संसार  
है या विषमय ? ॥ ७३ ॥



अकूरम्भरमिषन्दने कपिपतिर्दास्मंज्य गम्नेर्जुनः  
सर्वेशात्मनिवेदने वन्निरभूत्कृष्णातिरेता परम् ॥ २ ॥

ध्यानम्

निगम्य कर्माणि गुणाननुन्या-  
न्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।

यदातिहर्षोत्पुलकायुगद्रदं  
प्रोत्कष्टमुद्गापतिरिति नृत्यति ॥ ३ ॥†

मृष्यन्सुमद्राणि रथाङ्गयाणे-  
जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।

गीतानि नामानि तदर्थकानि  
गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥ ४ ॥†

आत्मसमर्पणमें राजा बलि विशिष्ट हुए ! मगवान् भीष्मकी प्राप्ति ही इन सभीका परम लक्ष्य था ॥२॥ आपके अनुपम गुण और कर्मोंको तथा आपके लीलामय विग्रहके द्वारा किये हुए विचित्र चरित्रोंको सुनकर जब मल अत्यन्त हर्षसे पुलकित हो आँसुओंमें आँसू भर गद्गद एवं उच्च स्वरसे गाता, रोता और नाचने लगता है (तो वही आपकी भक्तिकी अवस्था है) ॥३॥ भी-मगवान् चक्रपाणिके जो लोकमें मंगलमय जन्म और कर्म होते हैं, तथा उनके जो दिव्य नाम कहे गये हैं, उन्हें सुनकर, निःसंकोच-भावसे गाता हुआ असंग होकर विचरण करे ॥ ४

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।  
 न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ ५ ॥\*  
 श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।  
 न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ ६ ॥\*

कीर्त्तनम्

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।  
 कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ७ ॥†  
 नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।  
 मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ ८ ॥‡  
 गीत्वा च मम नामानि विचरेन्मम सन्निधौ ।  
 इति ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तस्य चार्जुन ॥ ९ ॥‡

क्या वृक्ष नहीं जीते हैं, धोंकनी क्या श्वास नहीं लेती, और अन्यान्य  
 प्राण्यपशु (शूकर-कूकर आदि) क्या भोजन और मल-मूत्र नहीं करते हैं ॥५॥  
 अरे ! जिसके कर्णकुहरोमें कभी भगवान् कृष्णचन्द्रके नामने प्रवेश नहीं  
 किया, वह मनुष्य तो कुत्ता, बिल्ली, शूकर, ऊँट और गधोंसे ब्यर्थ ही  
 श्रेष्ठ बतलाया गया नरपशु ही है ॥६॥ मेरा जीवन तो बस एक  
 केवल हरिनाम ही है, इसके अतिरिक्त कलियुगमें और कोई गति है ही  
 नहीं ॥७॥ हे नारद ! मैं न तो वैकुण्ठमें रहता हूँ और न योगियोंके हृदयमें  
 ही रहता हूँ, मैं तो वहीं रहता हूँ, जहाँ प्रेमाकुल होकर मेरे भक्त मेरे नामका  
 कीर्त्तन किया करते हैं ॥८॥ जो मेरा नाम-संकीर्त्तन करता हुआ मेरी सन्निधि-  
 में रहता है, हे अर्जुन ! मैं तुमसे सच कहता हूँ, मैं उसके हाथ बिका रहता हूँ ॥

\* श्रीमद्भागवते २।३।१८-१९।† पाण्डवगीतायाम् ५४।‡ भादिपुराणे ।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥१०॥\*

कृते यद्दध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्दरिकीर्तनात् ॥११॥\*

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।

तदेव शोकार्णवशोपणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते १२\*

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।

तद्दध्वाङ्गतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥\*

हे राजन् ! यह कलियुग यद्यपि सब प्रकार दोषमय है, फिर भी इसमें यह एक महान् गुण है कि केवल कृष्णके कीर्तन करनेसे ही मनुष्य निःसंग होकर परम पदपर पहुँच जाता है ॥ १० ॥ सत्ययुगमें जो फल श्रीविष्णुभगवान्के ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञादिसे और द्वापरमें हरिसेवासे प्राप्त होता है, कलियुगमें वह केवल हरि-नाम-संकीर्तन करनेसे ही मिल जाता है ॥ ११ ॥ पुण्यकीर्ति भगवान्के सुयशका जो गान किया जाता है, वही मनोहर, अति सुन्दर, नित्य नूतन, निरन्तर मनको प्रतुलित करनेवाला तथा मनुष्योंके शोकरूपी समुद्रका शोषण करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ जिस घाणीके द्वारा संसारको पवित्र करनेवाला हरिगुण कभी नहीं गाया जाय, उसमें चाहे विचित्र वर्णचिन्त्यास भी हो, तो भी काकतीर्थ (भयानक वमशान) के तुल्य ही है, राजहंससेवित मानसरोवरसदृश नहीं, क्योंकि निर्मल साधुजन तो वहीं रहते हैं, जहाँ भगवान् अच्युत विराजते हैं ॥ १३ ॥

स वाग्विसर्गो जनतापसंप्लवो  
यस्मिन्प्रतिश्लोकमवद्वयत्यपि ।

नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-

च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥१४॥

सृणादपि सुनीचेन तरारपि सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥१५॥†

कमलनयन वासुदेव विष्णो

धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।

भव शरणमितीरयन्ति ये वै

त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥१६॥

शरणम् ( ध्यानश्च )

भगवत उल्लिखमाङ्घ्रिशिखा-

नखमणिषन्द्रिकया निरस्ततापे ।

परन्तु वह बाणी जिसके मातेक श्लोककी रचना शिषिय ही करीन हो, मनुष्यो-  
के पापोंको प्लव करनेवाली होती है, यदि उसमें भगवान् अनन्तके नाम  
सहस्रहरि मङ्गल हो, क्योंकि साधुजन तो उन्हीको सुनते, गाते और  
बोल्ते हैं ॥१४॥ तिनकेमे भी नीचा होकर, बूझते भी सहनशील होकर,  
दुसरोका मान करते हुए और स्वयं मानरहित होकर सदा हरिका नाम-  
समीर्चन करे ॥१५॥ [समराज करने है—] हे दूतो ! ओं लोग, हे  
कमलनयन ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणिधर ! हे अच्युत ! हे  
शंखचक्रपाणे ! हमारी रक्षा करो, देखा उच्चारण करते है,  
उन निष्ठाप पुरषोको दूरसे ही छोड़ देना ॥१६॥ भवान्  
नखमणिके भगवान् भीविष्णुके चरणोकी भाङ्गिके मलकन हलिकेही

इदि कथमुपसीदताम्पुनः स  
 प्रभवति चन्द्र इयोदितेर्ज्कतापः ॥१७॥  
 ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् ।  
 स्मरन्ति ये स्मरयन्ति हरेर्नाम कला युगे ॥१८॥  
 कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति  
 राश्रीं च कृष्णं पुनरुत्थिता ये ।  
 तेऽभिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णे  
 हविर्यथा मन्त्रदुतं द्रुताशे ॥१९॥<sup>†</sup>  
 ये मानवा विगतरागपरावरजा  
 नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति ।  
 ध्यानेन तेन हतकिल्बिषचेतनास्ते  
 मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति ॥२०॥<sup>‡</sup>

चन्द्रिकासे तापरहित हुए हृदयमें, चन्द्रोदयके समय सूर्यसन्तापके समान दुःख कैसे ठहर सकता है ! ॥ १७ ॥ हे राजन् ! कलियुगमें वे ही भाग्यवान् और कृतार्थ हैं, जो भीहरिका नामस्मरण करते और कराते हैं ॥ १८ ॥ जो कृष्णमें अनुरक्त हुए कृष्णहीका स्मरण करते हैं, और रातमें [ सोकर ] तथा उठनेपर भी कृष्णका ही स्मरण करते हैं, वे शरीर छूटनेपर इस प्रकार भीकृष्णमें सायुज्य प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार मन्त्रपूर्वक हवन की गयी हवि अग्निमें तद्रूप हो जाती है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य बीतराग एवं पर-अपरके शाता होकर मुरख भगवान् नारायणका सर्वदा स्मरण करते हैं, वे उस ध्यानके द्वारा पापोंसे छूटकर पुनः माताके स्तनोंका दूध नहीं पीते [ अर्थात् वे जन्म-मरणसे रहित हो मुक्त हो जाते हैं ] ॥ २० ॥

पादसेवनम्

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-  
निवेशितं तद्गुणरामि यैरिह ।

न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्  
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥२१॥\*

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या  
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्वजुष्टम् ।

यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-

स्तद्वद्वयं च तव पादरजःप्रपन्नाः ॥२२॥\*

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्यनीश ।

पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वान्तपत्रादमृताभिर्बर्षात् २३\*

जिन्होंने एक बार भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंमें, उनके गुणोंमें अनुराग रखनेवाला, अपना मन लगा दिया है, वे निष्पाप हो जानेसे फिर यमराज अथवा पाश लिये हुए यमदूतोंको स्वप्नमें भी नहीं देखते ॥२१॥ [ गोपियोंने कहा—] जिनकी कृपाकटाक्ष अपने ऊपर होनेके लिये अन्य देवता प्रयत्न करते रहते हैं, वे श्रीलक्ष्मीजी आपके हृदयधाममें स्थान पाकर भी तुलसीजीके साथ आपके भक्तोंद्वारा सेवित जिस चरणरजको चाहती हैं उसी चरणरजकी धारणमें आज लक्ष्मीजीकी ही मौति हम भी आयी हैं ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! इस घोर संसार-मार्गमें तापत्रयसे आहत एवं सन्तप्त हुए अपने लिये मैं आपके चरणसुगलकी सुधावर्षिणी छत्रछायाके अतिरिक्त और कोई आभय नहीं देखता हूँ ॥ २३ ॥

\* श्रीमद्भागवते २ । १ । १५; १० । २५ । ३७; ११ । १५ । ५ ।



## अर्घनम्

नरके पच्यमानश्च यमेन परिभाषितः ।  
 किं त्वया नाञ्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥२४॥\*  
 एष निष्कण्टकः पन्था यत्र सम्पूज्यते हरिः ।  
 कुपयं तं विजानीयाद्गोविन्दरहितागमम् ॥२५॥†

## यन्दनम्

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च  
 ज्योतीषि सर्वाणि दिशो द्रुमादीन् ।  
 सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं  
 यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥२६॥‡  
 एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो  
 दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।

नरक-यातना भोगते हुआसे यमने कहा कि 'तुमने क्लेशहारी केशव भगवान्-  
 का पूजन क्यों न किया ?' ॥२४॥ निर्विघ्न मार्ग यही है जिसमें भगवान्की  
 पूजा की जाती है । और भगवान्नामरहित शास्त्रोंको कुपय ही समझना  
 चाहिये ॥ २५ ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, समस्त नक्षत्र,  
 दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ, समुद्र तथा और भी जो कुछ भूतजात  
 हैं; वे सब हरिका ही तो शरीर हैं, अतः सभीको अनन्यभावसे प्रणाम  
 करे ॥ २६ ॥ भगवान् भीकृष्णको किया हुआ एक प्रणाम भी दश  
 अश्वमेधाभिषेकके समान है, उनमें भी दश अश्वमेध करनेवाला

\* श्रुतिपुराणे ८।२१। † महाभारते । ‡ श्रीमद्भागवते ११।२।४१।

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म

कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥२७॥\*

सर्वस्वनियेदनम्

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा

बुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावात् ।

करोति यद्यत्सकलं परस्मै

नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥२८॥†

भक्तिस्तामान्यम्

मृष्वन गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्

नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।

क्रियासु यस्तत्रघरणारविन्दयो-

राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥२९॥†

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥३०॥†

तो फिर जन्म लेता है, किन्तु भीकृष्णको प्रणाम करनेवाला फिर जन्म नहीं लेता ॥ २७ ॥ शरीरसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियसे, बुद्धिसे, आत्मासे, अथवा स्वभावसे जो भी मनुष्य करे वह सब परमगुरुय नारायणको समर्पण कर दे ॥ २८ ॥ आपके मंगलमय नाम और रूपको सुनता, कहता, स्मरण करता और चिन्तन करता हुआ जो आपके चरणोंमें दक्षचित्त होकर क्रियामें प्रवृत्त रहता है, वह फिर संसारमें जन्म नहीं लेता ॥ २९ ॥ (बुद्धीने कहा—) हे जगद्गुरो ! यत्र-तत्र सभी स्थानोंमें हमपर विपत्तियाँ आती ही रहें जिससे उस समय पुनर्जन्मका नाश करनेवाला, आपका दर्शन मिला करे ॥ ३० ॥

\* दशाश्वमेधे दाम्निपर्वणि ४० । २१ ।

† श्रीवैष्णवके ११ । २ । १६; १० । १ । १०; १ । ८ । २५ ॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां

हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।

स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे

दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥३१॥\*

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो

क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।

तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते

नान्यद्यथा स्थूलतुपावघातिनाम् ॥३२॥\*

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्यंभूतगुणो हरिः ॥३३॥\*

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥३४॥\*

वाणी आपके गुणानुवादमें, भवण आपके कथाभवणमें, हाथ आपकी सेवामें, मन चरणकमलोंके स्मरणमें, शिर आपके निवासभूत सारे जगत्-के प्रणाम करनेमें तथा नेत्र आपके चैतन्यविग्रह संतजनोंके दर्शनमें लगे रहें ॥ ३१ ॥ हे विभो ! आपकी कल्याणदायिनी भक्तिको छोड़कर जो लोग केवल बोधके लिये ही कष्ट उठाते हैं, उन्हें थोड़े तुष ( भूली ) चूटनेवालोंके समान केवल क्लेश ही बाकी रहता है, और कुछ नहीं ॥ ३२ ॥ मगयान्के गुण ही ऐसे हैं कि आत्माराम और अतत्र मुनि-जन भी उनमें अहैतुकी भक्ति करते हैं ॥ ३३ ॥ हे उद्भव ! जेता मैं अपनी निष्कपट भक्तिसे प्राप्त होता हूँ, वैता न योगसे, न सांख्यसे, न धर्मसे, न स्वाध्यायसे, न तपसे और न त्यागसे ही मिलता हूँ ॥ ३४ ॥

\* भावद्वयवचन १०१, १०१, ३८; १०१, १४, १४; ११, ७, १०;

कुर्वन्ति शान्तिं विबुधाः प्रहृष्टाः

धेमं प्रकुर्वन्ति पितामहाद्याः ।

स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्रमुख्या

गोविन्दभक्तिं बहतां नराणाम् ॥३५॥†

शुभा ग्रहा भूतपिशाचयुक्ता

ब्रह्मादयो देवगणाः प्रसन्नाः ।

लक्ष्मीः स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च

गोविन्दभक्तिं बहतां नराणाम् ॥३६॥†

गङ्गागयानैमिषपुष्कराणि

काशी प्रयागः कुरुजाङ्गलानि ।

तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्व

गोविन्दभक्तिं बहतां नराणाम् ॥३७॥†

गोविन्दकी भक्ति करनेवाले मनुष्यको देवता भी हर्षित होकर शान्ति देते हैं, ब्रह्मा आदि रक्षा करते हैं, बड़े-बड़े मुनिगण कल्याण प्रदान करते हैं ॥ ३५ ॥ गोविन्दकी भक्ति धारण करनेवाले मनुष्य-पर भूत, पिशाच आदिके सहित सभी ग्रह शुभ रहते हैं, ब्रह्मा आदि देवगण प्रसन्न रहते हैं, उसके घरमें लक्ष्मी स्थिर रहती है ॥ ३६ ॥ गोविन्दकी भक्ति करनेवाले मनुष्यके शरीरमें, गंगा, गया, नैमिषारण्य, पुष्कर, काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र भक्तिपूर्वक निवास करते हैं ॥ ३७ ॥

सकलसुवनमध्ये निर्घनास्त्रेऽपि घन्या

निवमति हृदि गेयां श्रीहरेर्मक्तिरेका ।

हरिरपि निजलोकं सर्यथा तं विहाय

प्रविशति हृदि तेषां भक्तियूत्रोपनद्धः ॥३८॥\*

भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ।

अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तु मे ॥३९॥†

नो मुक्त्वं स्पृहयामि नाथ विमर्षैः फार्यं न सांसारिकैः

किं त्वायोज्य करी पुनः पुनरिदं त्वामीशमभ्यर्षये ।

स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने दुःखे सुखे मन्दिरे

कान्तारे निशि वासरे च सततं भक्तिर्ममास्तु त्वयि ॥४०॥‡

समस्त संसारमें परम निर्घन होकर भी वे घन्य हैं जिनके हृदयमें एक भगवद्भक्तिका वास है, क्योंकि भगवान् हरि भी उनके भक्तिस्त्रसे बँधकर अपने लोकको छोड़कर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ३८ ॥ आपके तत्त्ववेत्ता भक्तजन आपकी भक्ति ही चाहते हैं, अतः मेरी भी सदा आपके चरणोंमें भक्ति बनी रहे ॥ ३९ ॥ हे नाथ ! मुझे न तो मुक्तिकी इच्छा है और न सांसारिक वैभवसे ही कोई प्रयोजन है। हे ईश ! मैं तो हाथ जोड़कर आपसे बारंबार यही माँगता हूँ कि सोने, जागने, खड़ा होने, चलने, सुख, दुःख, घर, बन, रात्रि और दिनमें, सब समय आपमें ही मेरी भक्ति बनी रहे ॥ ४० ॥

\* पद्म० पु० खं० ६। १९१। ७४। † अध्या० रा० १। २। १०-२१।

‡ वाग्मटस्थ ।

नानाचित्रविचित्रवेपशरणा नानामतभ्रामका  
 नानातीर्थनिषेवका जपपरा मौने स्थिता नित्यशः ।  
 सर्वे चोदरसेवकास्त्वमिमता वादे विवादे रता  
 ज्ञानान्मुक्तिरिदं षदन्ति मुनयो मुक्त्यापि सा दुर्लभा ॥४१॥

वरमसिधारा तरुतलवासो वरमिह भिक्षा वरमुपवासः ।  
 वरमपि धोरे नरके पतनं न च हरिभक्तेर्विमुखः सङ्गः ॥४२॥

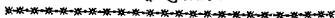
विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे ।

हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥४३॥\*

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का

कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम् ।

नित्य ही अनेक तरहके वेप धारण करनेवाले, अनेक मतोंमें ध्रमण करने-  
 वाले, नाना तीर्थोंकी सेवा करनेवाले, जपपरायण और मौनव्रती—ये सभी  
 उदरपूर्त्तिके निमित्त वादविवादमें लगे हुए जान पड़ते हैं । मुनिजन तो  
 जानते ही मुक्ति बतलाते हैं, और भक्ति तो मुक्तिसे भी दुर्लभ है ॥ ४१ ॥  
 तलवारकी धारके समान कठिन मत करना, इसके तले पृष्ठीपर रहना, भिक्षा  
 माँग लेना, अथवा भूखा रह जाना अच्छा है, तथा घोर नरकमें पड़ना भी  
 अच्छा है; किन्तु भगवद्भक्तिके विमुख रहनेवाली संगति अच्छी नहीं है ॥ ४२ ॥  
 भलीभाँति निश्चित की हुई बात में आपसे कहता हूँ, मेरे वचन अन्यथा नहीं  
 हैं, जो मनुष्य भगवान्का भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसारसागर-  
 को तर जाते हैं ॥ ४३ ॥ व्याधमें क्या सदाचार था ! ध्रुवकी अवस्था ही  
 कितनी थी ! गजराजमें ऐसी कौन विद्या थी ! कुब्जामें ऐसा कहाँका  
 सौन्दर्य था ! सुदामाके पास क्या धन था ! विदुरका कौन-सा उद्य



वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं  
भवत्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥४४॥

भक्तस्य लक्षणं माहात्म्यं च

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येव भागवतोत्तमः ॥४५॥\*

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-

स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।

न चलति भगवत्पदारविन्दा-

छ्वनिमिपार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ॥४६॥\*

विमृजति हृदयं न यस्य साक्षा-

द्वरिवशाभिहितोऽप्यधीघनाशः ।

कुल था ! अथवा यादवपति उग्रसेनमें कर्होंका पुरुषार्थ था ! भगवान् तो भक्तिके प्रिय हैं, वे केवल भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं, गुणोंसे नहीं ॥ ४४ ॥ जो समस्त प्राणियोंमें अपना भगवत्स्वरूप देखता है, और सब प्राणियोंको अपने भगवत्स्वरूपमें देखता है, वही उत्तम भक्त है ॥४५॥ त्रिभुवनकी सगपतिके छोगसे भी जिसके स्मरणमें किश्चित् बाधा नहीं पड़ती और अजितात्मा देवगणोंसे खोजे जानेवाले भगवद्धारणारविन्दोंसे जगका चित्त आधे टाणके लिये भी चञ्चल नहीं होता, वही भगवद्भक्तोंमें उत्तम है ॥४६॥ जो भगवान् विवश होकर उच्चारण किये जानेपर भी प्रत्यक्ष ही पापसमूहको ध्वंस कर देते हैं, वे ही माधात् जिसके हृदयको कभी नहीं छोड़ते,

प्रणयरश्मनया धृताङ्घ्रिपद्मः

स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥४७॥

क्वचिद्बुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-

द्वसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।

मृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं

भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥४८॥३

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं

न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा

वान्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥४९॥३

न वै जनो जातु कथञ्चनात्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।

स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ५०\*

तथा जिसने अपने प्रेमरूपी डोरीसे उनके चरण-कमलीको बाँध रखा है, वही भगवद्भक्तोंमें प्रधान कहा गया है ॥ ४७ ॥ भक्तजन कभी भगवान् अच्युतका चिन्तन करके रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी प्रसन्न होते हैं, कभी अलौकिक अथर्वामें पहुँचकर भगवान्से बातें करते हैं, कभी नाचते, गाते और भगवच्चिन्तन करते हैं, तथा कभी परमेश्वरको पानेसे विभ्रान्त होकर मौन हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ जिन ( भगवान् ) की चरणरजसे प्रसन्न [ मत्त ] न स्वर्गकी, न साम्राज्यकी, न राजपदकी, न पातालके आधिपत्यकी, न योगसिद्धिकी और न मोक्षकी ही इच्छा करते हैं ॥ ४९ ॥ हे मित्र ! मुकुन्दकी सेवा करनेवाला मतुपय अन्य ( सत्कामकर्मी ) पुरुषोंकी तरह आवागमनको प्राप्त नहीं होता; मुकुन्द-चरणारविन्दोंके आभ्यन्तरिक रसको स्मरण करता हुआ यह ( जीव ) फिर उन्हें छोड़नेकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि यह जीव रस ( परमानन्दरस ) का ग्रहण करनेवाला है ॥ ५० ॥

\* श्रीमद्भागवते ११ । २ । ५५; ११ । १ । १२; १० । ११ । २७;

१ । ५ । १९ ॥



निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।  
 अनुग्रहाम्यहं नित्यं पूयेत्यङ्घ्रिरेणुमिः ॥५१॥\*  
 सालोक्यसाष्टिसामीप्यसारूप्यकत्वमप्युत ।  
 दीयमानं न गृह्णन्ति मिना मत्सेवनं जनाः ॥५२॥\*  
 अहं भक्तपराधीनो ह्यक्षतन्त्र इव द्विज ।  
 साधुभिर्प्रस्तहृदयो भक्तैर्मक्तजनप्रियः ॥५३॥\*  
 भवदुःखघरद्वेन पिप्यन्ते सर्वमानवाः ।  
 दुःखमुक्तः सदानन्दः कृष्णभक्तो हि केवलः ॥५४॥†  
 वासुदेवस्य ये भक्ताः शान्तास्तद्गतमानसाः ।  
 तेषां दासस्य दासोऽहं भवे जन्मनि जन्मनि ॥५५॥‡

( जो ) निरपेक्ष, निर्वैर, समदर्शी और शान्त मुनिजन हैं, उनके पीछे-  
 पीछे सदा ही मैं इसलिये फिर करता हूँ कि ( उनकी ) चरणरजते  
 पवित्र हो जाऊँ ॥ ५१ ॥ मेरे भक्त मेरी सेवाके अतिरिक्त तो सालोक्य,  
 सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य अथवा कैवल्य किसी प्रकारकी मुक्ति भी  
 दिये जानेपर ग्रहण नहीं करते ॥ ५२ ॥ [ सुदर्शनचक्रसे व्याकुल हो  
 शरणागत दुर्वासा ऋषिसे विष्णुभगवान् कहते हैं— ] 'हे द्विज!  
 मैं पराधीनके समान भक्तोंके वशमें हूँ । मुझ भक्तवासलका वित्त मेरे  
 साधुभक्तोंने बँध रखा है' ॥ ५३ ॥ संसारके दुःखरूपी चक्कीमें  
 समस्त जीवपीसे जा रहे हैं, केवल नित्यानन्द-स्वरूप एक कृष्णभक्त ही  
 इस दुःखसे बचे हुए हैं ॥ ५४ ॥ जो वासुदेवमें दत्तचित्त हुए उनके  
 शान्त भक्त हैं, जन्म-जन्म मैं उनके दासोंका दास होऊँ ॥ ५५ ॥

\* श्रीमद्भागवते ११ । १४ । १६; ३ । २९ । १३; ५ । ४ । १३ ॥

† श्रीताराकुमारस्य । ‡ पाण्डवगीतायाम् २१ ।

ते मे भक्ता हि हे पार्थ न मे भक्तास्तु मे मताः ।

मद्भक्तस्य तु ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः ॥५६॥\*

सदा मुक्तोऽपि बद्धोऽस्मि भक्तेषु स्नेहरञ्जुभिः ।

अजितोऽपि जितोऽहं तैरवशोऽपि वशीकृतः ॥५७॥\*

### प्रेमसूक्तिः

त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यमेकप्रभेदने ।

प्रेम प्रेमी प्रेमपात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥५८॥

अहो साहजिकं प्रेम दूरादपि विराजते ।

चकोरनयनद्वन्द्वमाहादयति चन्द्रमाः ॥५९॥

हे अर्जुन ! जा कबू मेरे ही भक्त हैं वे मेरे वास्तविक भक्त नहीं । मेरे उत्तम भक्त तो वे ही हैं जो मेरे भक्तोंके भक्त हैं ॥ ५६ ॥ सदा मुक्त हुआ भी मैं भक्तोंमें ( उनकी ) प्रेमरूपी डोरीसे बँधा हुआ हूँ, अजित हुआ भी उनके द्वारा जीता जा चुका हूँ और अवश हुआ भी उनके वशमें हूँ ॥ ५७ ॥

प्रेम, प्रेमी और प्रेमपात्र ये तीन होकर भी एक ही है, ये सदा ही पहचानमें नहीं आते, इन्हें एक रूप ही जानना चाहिये ॥ ५८ ॥ अहो ! जो स्वाभाविक प्रेम होता है, वह दूर होनेपर भी मुगोभित होता है, देखो चन्द्रमा [ कितनी दूरसे ] चकोरके नेत्रोंको आहादित करता है ॥ ५९ ॥

दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे मापणेऽपि वा ।  
हृदयस्य द्रवत्वं यत्तत्प्रेम इति कथ्यते ॥६०॥

प्रेमप्रादुर्भावक्रमः

आर्दा भ्रद्धा ततः सङ्गस्ततोऽथ भजनक्रिया ।  
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥६१॥\*  
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति ।  
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ॥६२॥\*

रागात्मिका भक्तिः

इष्टे स्वारसिको रागः परमाविष्टता भवेत् ।  
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता ॥६३॥\*

अनुभावाः

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता ।  
आशावद्भवसमुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ॥६४॥\*

देखते या छूते, सुनते अपवा बोलते समय हृदयका विफल जाना ही प्रेम कहा जाता है ॥ ६० ॥ पहले भ्रद्धा होती है, फिर संग, तदुपयन्त भजन, उससे अनर्थनिवृत्ति, फिर निष्ठा और उससे रुचि होती है । रुचिसे आसक्ति, उससे भाव और तदनन्तर प्रेमका प्रादुर्भाव होता है । साधकोंके प्रेमके उदय होनेमें यही क्रम है ॥ ६१-६२ ॥ अपने प्रियमें स्वाभाविक प्रेम, पूर्ण आवेश और तन्मयतायुक्त जो भक्ति हो, उसे रागात्मिका भक्ति कहते हैं ॥ ६३ ॥ क्षमा, व्यर्थ समय न खोना, वैराग्य, मानशून्यता, आशावरी उत्कण्ठा, निरन्तर नामसंकीर्तनमें प्रेम, प्रियतमके गुणोंकी चर्चामें

आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ।

इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने ॥६५॥

सात्त्विका भावाः

ते स्वेदस्तम्मरोमाश्वाः स्वरभेदोऽथ वेपथुः ।

वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥६६॥

सर्वेषां भावानुभावानां संकीर्णान्युदाहरणानि

बद्धेनाञ्जलिना नवेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः

कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेनोद्गीर्णवाप्याम्बुना ।

नित्यं त्वचरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-

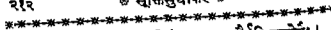
मसार्कं सरसीरुहाक्षं सततं सम्पद्यतां जीवनम् ॥६७॥†

चन्द्रोदये चन्द्रकान्तो यथा सद्यो द्रवीभवेत् ।

कृष्णभक्त्युदये प्रेम्णा तथैवात्मा द्रवीभवेत् ॥६८॥‡

आसक्ति तथा भगवान्के निवासस्थानोंमें प्रीति इत्यादि अनुभाव,  
जिस पुरुषमें भावका अंकुर स्फुटित होता है, उसमें होते हैं  
॥ ६४-६६ ॥ स्वप्न हो जाना, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद  
( गद्गद हो जाना ) कम्प, विवर्णता, अभुपात और सुघ-दुघ  
भूल जाना—ये आठ सात्त्विक भाव हैं ॥ ६६ ॥ है कमलनयन !  
हाथ जोड़कर शिर नवाकर पुलकित शरीरसे गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंमें  
आँसू भरकर आपके युगलचरणोंके ध्यानामृतका आस्वाद लेते  
हुए हमारा जीवन व्यतीत हो ॥ ६७ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर  
जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणि स्वयं द्रवीभूत हो जाती है, उसी प्रकार  
कृष्णभक्तिके उदय होनेपर जिस प्रेमसे पिघल जाता है ॥ ६८ ॥

\* श्रीरूपगोस्वामिनः । † श्रीकुञ्जेश्वरस्य मुकुन्दनालवान् । ‡ श्रीवारा-  
नस्यारस्य ।



तदश्मसारं हृदयं वतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधैर्यः ।  
 न विक्रियेताय यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥७०॥  
 एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या

जातानुरागो द्रुतचित्त उचैः ।  
 हसत्यथो रोदिति रौति गाय-

त्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः ॥७०॥  
 यदां ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्दस-

त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ।  
 मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते

नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रयः ॥७१॥

जिसमें हरिनामके उच्चारणमात्रसे कोई विकार नहीं होता व  
 हृदय नहीं, पत्थर है। जब विकार होता है तो नेत्रोंमें ज  
 और शरीरमें रोमाञ्च हो आता है ॥ ६९ ॥ ऐसा प्र  
 रखनेवाला अपने प्यारेके नामसंकीर्तनसे प्रेमवश द्रुतचित्त होक  
 अचौकिक अवस्थामें पहुँचकर पागलकी भाँति कभी जोरोसे हँसत  
 है, कभी रोता है, कभी गुनगुनाता है, कभी गाता है और कभी नाचत  
 है ॥ ७० ॥ जिस समय ग्रहग्रन्थ ( प्रेतरीदित ) के समान कभी हँसे, कभी  
 रोये, कभी ध्यान करे, कभी प्रणाम करे और बार-बार दीर्घ निःश्वा  
 सेता हुआ निःसंकोच होकर आत्मबुद्धिसे 'हे हरे! हे जगत्पते!  
 नारायण!' कहे [तब भक्तिका उद्रेक हुआ जानो] ॥ ७१ ॥





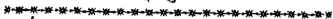
त्रिभुवनमणि नग्नयं विरहे

ॐ प्रेमसूक्ति ॐ

पञ्चत्वं तदुरेतु भूतनिबन्धाः स्वांशान् विशन्तु प्रम  
 धातस्त्वां शिरसा प्रणम्य कुरु सामित्यद्य याचे पुन  
 तद्वापीपु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयात्  
 ज्योम्नि ज्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलम  
 संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्य  
 सङ्गे सैव तथैकस्त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे  
 नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा  
 पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति

हे प्रमो ! मेरा शरीर पञ्चत्वको प्राप्त हो जाय, पर  
 अपने-अपने अंशोंमें मिल जायें, पर हे विधाता ! शिर  
 करके तुमसे बारंबार यही प्रार्थना करता हूँ, कि (मेरा अंश )  
 कृष्णके मीठा-सरोवरमें, तेज उनके दर्पणमें, आकाश उनके  
 भूमि उनके मार्गमें और वायु उनके पंखेमें (मिल जाय )  
 संगम और विरह इन दोनोंमें संगमकी अपेक्षा विरह क  
 क्योंकि संगममें तो अकेला बही (मिथ ही ) रह जाता  
 विरहमें सम्पूर्ण जगत् ही तद्रूप हो जाता है ॥ ७३ ॥  
 नामस्मरण करते हुए मेरे नेत्र अभुधारणसे, मुख गद्ग  
 और शरीर पुलकावलिसे कब पूर्ण हो जायगा ! ।





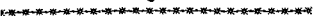
✓ इन्दुः क क च सागरः क च रविः पद्माकरः क स्थितः  
 फार्भ्रवा क मयूरपङ्क्तिरमला कालिः क वा मालती ।  
 मन्दाध्वक्रमराजहंसनिचयः फार्सा क वा मानसं  
 यो यस्याभिमतः स तस्य निकटे दूरेऽपि वा बह्वमः ॥७५॥

### साधुसृक्तिः

चित्ताह्लादि व्यसनविमुखं शोकतापापनोदि  
 यज्ञोत्पादि श्रवणसुखदं न्यायमार्गानुयायि ।  
 तथ्यं पथ्यं व्यपगतमदं सार्थकं मुक्तवादं  
 यो निर्दोषं रचयति वचस्तं बुधाः सन्तमाहुः ॥७६॥\*

कहाँ तो चन्द्रमा है और कहाँ समुद्र ? कहाँ सूर्य है और कहाँ कमलवनकी स्थिति ! कहाँ बादल हैं और कहाँ मयूरोंकी विमल पंक्ति ! कहाँ भौरे रहते हैं और कहाँ मालती ? कहाँ मन्द-मन्दगामी राजहंसोंके छुण्ड हैं और कहाँ मानसरोवर ! [ इन सबमें इतना अन्तर रहते हुए भी परस्पर कितनी प्रीति है ! सच है ] जो जिसको चाहता है, वह उसके पास रहे या दूर, प्रियतम ही है ॥ ७५ ॥

जो पुरुष चित्तको प्रसन्न करनेवाला, व्यसनसे विमुख, शोक और तापको शान्त करनेवाला, पूज्यभाव बढ़ानेवाला, कर्णसुखद, न्यायानुकूल, सत्य, हितकर, मानरहित, अर्धगर्मित, विषादरहित और निर्दोष वचन बोलता है, उसे ही बुधजन संत कहते हैं ॥ ७६ ॥



कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।  
 अपारसंबित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥७७॥  
 शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवह्नौकहितं धरन्तः ।  
 तीर्णाः स्वयं भीममवार्णवं जनानद्देतुनान्यानपि तारयन्तः ॥७८॥

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।  
 मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मन्नागपि ॥७९॥†  
 सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रणताः समदर्शिनः ।  
 निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥८०॥†

जिसका चित्त इस अपार चिदानन्दसिन्धु परब्रह्ममें लीन हो गया उसका कुल पवित्र हो गया, माता कृतार्थ हो गयी और पृथ्वी उससे पुण्यवती हो गयी ॥ ७७ ॥ इस भयंकर संसार-सागरसे स्वयं तरे हुए शान्त और महान् संतजन निःस्वार्थ-बुद्धिसे दूसरे लोगोंको भी तारते हुए [ इस संसारमें ] वसन्तके समान लोकहित करते हुए निवास करते हैं ॥ ७८ ॥ साधुजन मेरे हृदय हैं और मैं साधुओंका हृदय हूँ; वे मेरे सिवा कुछ भी नहीं जानते और मैं भी उनके सिवा और कुछ तनिक भी नहीं जानता ॥ ७९ ॥ संतजन किसी प्रकारकी इच्छा नहीं करते, वे मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं, तथा अति नम्र, समदर्शी, भमताशून्य, अहंकार-हीन, निर्द्वन्द्व एवं सञ्जय न करनेवाले होते हैं ॥ ८० ॥

\* विवेकचूडामणी ३९ ।

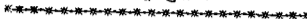
† श्रीमद्भागवते ९।४।६८; ११।२६।२७ ।



## ज्ञानिसूक्तिः

ध्यानजले ज्ञानइंदे सर्वपापमयापहे ।  
 यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥८४॥  
 क्वचिन्मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराजविभवः  
 क्वचिदुभ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः ।  
 क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यपिदित-  
 क्षरत्येवं प्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः ॥८५॥  
 चिन्ताशून्यमदन्यभैक्ष्यमशनं पानं सरिद्वारिषु  
 स्वातन्त्र्येण निरहुश स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने वने ।

अपने मनरूपी तीर्थमें ज्ञानरूपी सरोवरके ध्यानरूपी सर्वपापहारी  
 जलमें जो स्नान करता है वही परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ शरीर वहीं  
 मूढ़के समान दिखायी देता है, वहीं गजा-महाराजाओंके ठाट-चाटसे  
 युक्त दीप्त पदता है तथा वहीं भ्रान्त-ता, वहीं सौम्यमूर्ति और वहीं  
 अजगरवृत्तिले एक ही स्थानपर पड़ा रहनेवाला देखा जाता है । वह  
 वहीं सम्मानित, वहीं अपमानित और वहीं अज्ञातरूपसे रहता है ।  
 इस प्रकार निरन्तर परमानन्दमें मग्न हुआ वह विचरता रहता  
 है ॥ ८५ ॥ शनिपीके लिये चिन्ता और दीनतासे रहित भिक्षा ही  
 भोजन होता है, नदीका जल ही पीनेके लिये होता है, स्वतन्त्रतापूर्वक  
 छाछनरहित स्थिति होती है, स्वस्थान अथवा वनमें निर्मल निद्रा  
 होती है, घोंगे-मुलानेसे रहित दिशाएँ ही वायु होती है, पृथ्वी ही



वस्त्रं क्षालनशोपणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही  
 सञ्चारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥८८  
 तमुं त्यजतु काश्यां वा श्रपचस्य गृहेऽथवा ।  
 ज्ञानसंप्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥८७  
 यस्य कस्य च वर्णस्य ज्ञानं देहे प्रतिष्ठितम् ।  
 तस्य दासस्य दासोऽहं भवे जन्मनि जन्मनि ॥८८  
 स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलैर्दत्ता च सर्वाविनि-  
 र्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च सम्पूजिताः ।  
 संसाराच्च समुद्भृताः स्वयितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ  
 यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्रामुयात् ॥८९॥



शय्या होती है, वेदान्तवीथियोंमें ही वे विचरण करते हैं; इस प्रकार विज्ञान  
 की परब्रह्ममें ही क्रीडा होती है ॥ ८६ ॥ जिसकी कामना दूर हो गयी ।  
 वह चाहे काशीमें शरीर त्यागे या चाण्डालके घरमें, वह तो ज्ञान  
 प्राप्तिके समयसेही मुक्त हो जाता है ॥ ८७ ॥ जिस-किसी भी वर्णके  
 शरीरमें ज्ञानका उदय हुआ हो, मैं जन्म-जन्म उसीके दासोंका दास  
 होऊँ ॥ ८८ ॥ ब्रह्मविचारमें जिसका चित्त एक क्षणके लिये भी स्थिर  
 हो जाय, उसने समस्त तीर्थोंके जलमें स्नान कर लिया, सम्पूर्ण पृथ्वीका  
 दान दे दिया, सहस्रों यज्ञ कर लिये, समस्त देवताओंका पूजन कर  
 लिया, तथा अपने पितरोंको संसारसागरसे पार कर दिया और स्वयं तो  
 वह त्रिलोकीका ही पूजनीय हो गया ॥ ८९ ॥



गुरुसूक्तिः

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं

द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं

भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥९०॥\*

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥९१॥†

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥९२॥†

जो ब्रह्मानन्दस्वरूप, परम सुखदाता, केवल ज्ञानमूर्ति, द्वन्द्वीसे पृथक्, आकाशके समान निर्लेप, तत्त्वमसि आदि महावाक्यका लक्ष्यार्थभूत, एक, नित्य, निर्मल, कूटस्थ, समस्त बुद्धियोंके साक्षी और भावोंसे अतीत हैं उन त्रिगुणसे रहित सद्गुरुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९० ॥ अज्ञानरूपी तिमिररोग ( रतौषी ) से अन्धे हुए मनुष्यकी आँखोंको जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है, उन गुरुदेवको नमस्कार है ॥ ९१ ॥ समस्त चराचररूप ब्रह्माण्डको जिस परमेश्वरने व्याप्त कर रखा है उनके पदका जिन्होंने साक्षात्कार किया है उन गुरुदेवको नमस्कार है ॥ ९२ ॥



गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥९३॥\*

अखण्डानन्दबोधाय शिष्यसन्तापहारिणे ।

सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥९४॥\*



गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु और गुरु ही भगवान् महेश्वर है तथा गुरु ही साक्षात् परब्रह्म है, उन गुरुदेवको नमस्कार है ॥९३॥ अखण्डानन्दभगवत्बोधार्थ, शिष्योंके शन्तापहारी और सच्चिदानन्दरूप गुरुदेवको नमस्कार है ॥ ९४ ॥

ॐ

## दशम उल्लास

— ६ —

### त्रिपिपनृषः

हरिमतिः

हरिरेव जगज्जगद्रेव हरि-

हरिणो जगतां नाद विपननुः ।

हरि यम् मतिः परमार्थमतिः

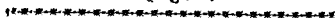
य नमो मरुतागरमुच्यति ॥ १ ॥०

हे त्रिहे एगमाग्ने सर्वदा मयुरसिंघ ।

नासायनात्परसादृषं त्रिब त्रिहे विगन्ताय ॥ २ ॥१

हरि ही कण्ठ है, कण्ठ ही हरि है, हरि ही कण्ठ है त्रिपिपनृष  
की गेह मती है त्रिपिपि है ही हरि है, उल्लासो काण्ठदे है ही है, हर  
दुष्टव कण्ठ कण्ठको ला कण्ठ है ॥ १ ॥ १ कण्ठका कण्ठ कण्ठो कण्ठके  
कण्ठो है कण्ठके त्रिहे ॥ २ ॥ त्रिपिपनृष काण्ठका कण्ठ कण्ठका कण्ठ





- ✓ भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।  
 योऽर्त्ता विश्वम्भरो दंभः स भक्तान् किमुपेक्षते ॥ ३ ॥\*
- शरीरं च नवच्छिद्रं व्याधिग्रस्तं कलेवरम् ।  
 औषधं जाद्वयीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ॥ ४ ॥\*
- लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।  
 येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ५ ॥\*

शिवमहिमा

श्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति  
 प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।  
 रुचीनां वैचित्र्याद्दुक्कुटिलनानापथजुषां  
 नृणामेको गम्पस्त्वमसि पथसामर्णव इव ॥ ६ ॥†

कर ॥ २ ॥ वैष्णवजन भोजनवस्त्रकी चिन्ता व्यर्थ ही करते हैं, जो भगवान् सारे संसारका पेट भरनेवाले हैं, क्या वे अपने भक्तोंकी उपेक्षा कर सकते हैं ? ॥ ३ ॥ यह शरीर नव छिद्रोंसे युक्त और व्याधिग्रस्त है इसके लिये गंगाजल ही औषध और भगवान् नारायण ही वैद्य हैं ॥ ४ ॥ जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामसुन्दर भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उनका ही लाभ है, उनकी ही जय है, भला उनकी पराजय किससे हो सकती है ? ॥ ५ ॥ हे शिव ! वैदिक मत, सांख्य, योग, पशुपत और वैष्णव इत्यादि परस्पर भिन्न मार्गोंमें 'यह बड़ा है, यह हितकारी है' इसप्रकार रुचि-वैचित्र्यसे अनेक प्रकारके संधि या टेढ़े पंथको अपनातेवाले मनुष्योंके लिये आप ( ईश्वर ) ही एकमात्र प्राप्तव्य स्थान हैं, जैसे जलमात्रके लिये समुद्र है ॥ ६ ॥

सतां महत्त्वम्

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः

स्वयं न खादन्ति फलानि पृक्षाः ।

धाराधरो वर्षति नात्महेतोः

परोपकाराय सतां विभूतयः ॥ ७ ॥

✓ सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।

ज्ञान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः पढेते मम बान्धवाः ॥ ८ ॥\*

✓ विरला जानन्ति गुणान् विरलाः कुर्वन्ति निर्धने स्नेहम् ।

विरलाः परकार्यस्ताः परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः ॥ ९ ॥

नदियाँ स्वयं बल नही पीतीं, पृथ स्वयं फल नही खाते तथा मेघ अपने लिये नही बरसता । सज्जनोंकी सम्पत्ति तो परोपकारके लिये ही होती है ॥ ७ ॥

सत्य मेरी माता है, ज्ञान पिता है, धर्म भाई है, दया मित्र है, ज्ञान्ति स्त्री है और क्षमा पुत्र है, ये छः ही मेरे बान्धव हैं ॥ ८ ॥ विरले ही गुणोंको समझते हैं, विरले ही निर्धनोंके प्रेम करते हैं, दूसरोंके कार्यसाधनमें तत्पर और परदुःखके दुःखित होनेवाले भी विरले ही होते हैं ॥ ९ ॥



शमा

घमा खङ्गः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ।  
अवृणे पतितो बद्धिः स्वयमेवोपशाम्यति ॥१०॥

साधुसङ्गः

मार्गे मार्गं जायते साधुसङ्गः  
सङ्गे सङ्गे श्रूयते कृष्णकीर्तिः ।  
कीर्त्ता कीर्त्ता नस्तदाकारवृत्ति-  
वृत्ता वृत्ता सच्चिदानन्दमासः ॥११॥

महत्सैवां द्वारमाद्भुविमुक्ते-  
स्तमोद्वारं योपितां सङ्गिसङ्गम् ।

महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता  
विमन्यवः सुहृदः साधवोऽपि ॥१२॥\*

जिसके शायमें क्षमारूपी तलवार है, उसका दुर्जन क्या कर सकते हैं ?  
तृणरहित स्थानमें गिरी हुई अग्नि स्वयं ही शान्त हो जाती है ॥ १० ॥  
मार्गमें सजनोंका संग प्राप्त है, प्रत्येक सत्संगमें कृष्णका कीर्तन सुना  
जाता है, प्रत्येक कीर्तनमें हमारी तदाकार वृत्ति होती है और  
प्रत्येक वृत्तिमें सच्चिदानन्दका अनुभव होता है ॥ ११ ॥ महान्  
पुरुषोंकी सेवाको मुक्तिका द्वार कहा है और स्त्रीलम्पटोंका  
संग ही नरकका द्वार है; तथा महान् पुरुष वे ही हैं जो  
समानचित्त, शान्तात्मा, क्रोधहीन, हितकारी और साधु हैं ॥ १२ ॥

✓ क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः  
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ।  
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं  
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥१३॥\*

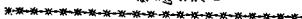
योगी

कृतार्थीं पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत् ।  
जायते योगवान् यत्र दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥१४॥†  
भेदाभेदां सपदि गलितां पुण्यपापे विशीर्णे  
मायामोहौ क्षयसुपगतौ नष्टसन्देहवृत्तेः ।

दूधने अपने पास आये हुए जलको पहले अपने सभी गुण दे डाले,  
जलने भी दूधको जलते देखकर अग्निमें अपनेको मस कर दिया, मित्रपर  
ऐसी आपत्ति देखकर आगमें गिरनेके लिये दूध उछलने लगा, फिर  
जब उसमें जल आ मिला तब शान्त हो गया, सबनोंकी मित्रता ऐसी ही  
होती है ॥ १३ ॥ जहाँ कोई योगी उत्पन्न हो जाता है उसके माता-पिता  
कृतार्थ हो जाते हैं, वह देश और कुल धन्य हो जाता है और उस (योगी)  
को दिया हुआ अक्षय हो जाता है ॥ १४ ॥ सन्दातीत विगुणरहित तत्त्वबोधको  
प्राप्त कर जिसकी सन्देहवृत्ति नष्ट हो गयी है उसके भेद और अभेद तत्काल  
गलित हो जाते हैं, पुण्य और पापोंका नाश हो जाता है, तथा माया और

\* भर्तृहरिः ।

† श्रीमद्भैरवसंपुराणे ।



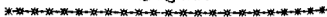
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं  
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१५॥  
 कस्मात्कोऽहं किमपि च भवान् कोऽयमत्र प्रपञ्चः  
 स्वं स्वं वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रकाशम् ।  
 आनन्दाख्यं समरसवने बाह्यमन्त्रैर्विहीने  
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१६॥  
 धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिधिरं गेहिनी  
 सत्यं सत्पुत्र्यं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः ।  
 शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजन-  
 मेते यस्य कुटुम्बिनो वद सत्त्वे कस्माद्भयं योगिनः ॥१७॥

मोक्ष क्षीण हो जाते है, त्रिगुणातीत मार्गमें विचरनेवाले उस योगी  
 लिये क्या विधि और क्या निषेध है ? ॥ १५ ॥ मैं कहाँसे आया  
 कौन हूँ ? और तुम कौन हो ? तथा यह प्रपञ्च क्या है ? इस प्रपञ्च  
 सबको अपने आकाशसदृश, पूर्ण तत्त्वमय आनन्दस्वरूपको पृथक्  
 पृथक् जानना चाहिये । इस बाह्य मन्त्रणाभीसे शून्य समरस वन  
 त्रिगुणातीत मार्गमें विचरनेवाले महापुरुषके लिये क्या विधि और क्या  
 निषेध है ? ॥ १६ ॥ धैर्य त्रिसका पिता है, क्षमा माता है, निर-  
 शान्ति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया भगिनी है तथा मनःसंयम भ्राता है  
 भूमितल ही त्रिगुणी मुक्तोत्तम क्षेत्र है, दिशाएँ ही वस्त्र हैं और  
 ज्ञानामृत ही त्रिगुणी भोजन है, त्रिसके ये सब कुटुम्बी हैं, कहाँ  
 भय ! उस योगीको किसने भय हो सकता है ? ॥ १७ ॥

यदि जयति सुकुन्दस्मेरवक्त्रा  
 स्रवदमलमरन्दानन्दनिष  
 अविरतमिह गीता ज्ञानपीयूषा  
 कृतमय भवतापैरत्र मज्जन्  
 दिशति मतिमपापां मोहविध्वंसद  
 हरति निखिलतापाञ्छान्तिमावि  
 नयति परममोक्षं सच्चिदानन्दमा  
 किमिव न फलमेवा कल्पवल्लीव  
 यदि दधति न गीतामात्मसंजीवनाय  
 विषयविषयधरालीदष्टनष्टात्मबोधाः

यदि भगवान् कृष्णके मन्द सुसुकानयुक्त वदनारविन्दसे निकले  
 रूप आनन्दद्रवसे प्रकट हुई शानामृततरङ्गिणी गीता इस जगत  
 प्रवादित हो रही है तो संसारके ताप क्या कर सकते हैं ! संतजन व  
 हुबकी लगाया करें ॥ १८ ॥ यह गीता मोहका नाश करनेमें सम  
 बुद्धि देती है, आविर्देविक आदि सभी तापोंको हर लेती है, [  
 शान्तिभावका आधान करती है और सच्चिदानन्दरूप परम  
 पहुँचा देती है, मला, यह कल्पलताके समान कौन-सा फल नहीं  
 ॥ १९ ॥ विषयरूपी विषयरोते जैसे जानेके कारण जिनकी सुषु-सुषु  
 हो चुकी है, वे मनुष्य यदि आत्मसंजीवनके लिये गीतारूप औष  
 सेवन नहीं करते तो अमृतके घड़े लेकर सामने आयी हुई अमृत

● वाग्देवतामनाराजवन्दनशास्त्रिनः ।



शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं  
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१५॥  
 कस्मात्कोऽहं किमपि च भवान् कोऽयमत्र प्रपञ्चः  
 स्वं स्वं वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रकाशम् ।  
 आनन्दारख्यं समरसवने बाह्यमन्त्रैर्विहीने  
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१६॥  
 धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी  
 सत्यं सन्नुरयं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः ।  
 शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजन-  
 मेते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥१७॥

माह क्षीण हो जात हं, त्रिगुणातीत मार्गमें विचरनेवाले उस योगीके लिये क्या विधि और क्या निषेध है ? ॥ १५ ॥ मैं कहाँसे आया हूँ ? कौन हूँ ? और तुम कौन हो ? तथा यह प्रपञ्च क्या है ? इस प्रकार सबको अपने आकाशसदृश, पूर्ण तत्त्वमय आनन्दस्वरूपको पृथक्-पृथक् जानना चाहिये । इस बाह्य मन्त्रणाओंसे शून्य समरस वनमें त्रिगुणातीत मार्गपर विचरनेवाले महापुरुषके लिये क्या विधि और क्या निषेध है ? ॥ १६ ॥ धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, निरपेक्ष शान्ति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया भगिनी है तथा मनःसंयम भ्राता है, भूमितल ही जिसकी सुकोमल सेज है, दिशाएँ ही वस्त्र हैं और ज्ञानामृत ही जिसका भोजन है, जिसके ये सब कुटुम्बी हैं, कहीं भय ! उस योगीको किससे भय हो सकता है । ॥ १७ ॥

गीतागौरवम्

यदि जपति सुकुन्दस्मेरवक्त्रारविन्द-  
स्रवदमलमरन्दानन्दनिष्यन्दजन्मा ।

अविरतमिह गीता ज्ञानपीयूषसिन्धुः

कृतमथ भवतापैरत्र मज्जन्तु सन्तः ॥१८॥

दिशति मतिमपापां मोहविध्वंसदक्षां

हरति निखिलतापाञ्छान्तिमाविष्करोति ।

नयति परममोक्षं सच्चिदानन्दभावं

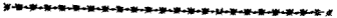
किमिव न फलमेवा कल्पवल्लीव सते ॥१९॥

यदि दधति न गीतामात्मसंजीवनाय

विषयविषधरातीदृष्टनष्टात्मबोधाः ।

यदि भगवान् कृष्णके मन्द सुसुकानयुक्त वदनारविन्दसे निकले हुए मकरन्द-  
रूप आनन्दद्रवसे प्रकट हुई ज्ञानामृततरङ्गिणी गीता इस जगत्में निरन्तर  
प्रवाहित हो रही है तो संसारके ताप क्या कर सकते हैं ! संतजन अब इसीमें  
हुबकी लगाया करें ॥१८॥ यह गीता मोहका नाश करनेमें समर्थ पावन  
बुद्धि देती है, आधिदैविक आदि सभी तापोंको हर लेती है, [हृदयमें]  
शान्तिभावका आधान करती है और सच्चिदानन्दरूप परम मोक्षतक  
पहुँचा देती है, भला, यह कल्पलताके समान कौन-सा फल नहीं देती ?  
॥ १९ ॥ विषयरूपी विषधरोसे डँसे जानेके कारण जिनकी सुष-बुष नष्ट  
हो चुकी है, वे मनुष्य यदि आत्मसंजीवनके लिये गीतारूप औषधका  
सेवन नहीं करते तो अमृतके पड़े लेकर सामने आयी हुई अन्नपूर्णा-





अमृतकलशपूर्णाभिन्नार्णामुपेक्ष्या-

शनविरहकृशानां हा इतं मागधेयम् ॥२०॥\*

इह जगति दयेयं देवदेवस्य गीता

निजशरणमुपेतुं प्राणिनः प्राजुहोति ।

न चिरयत सदैवानाद्यविद्याञ्जलेन

ननु पिहितदृशाञ्ज्या बन्धनोन्मोचनाय ॥२१॥\*

भ्रान्ता भवे कति कति प्रतिलम्ब्य योनीः

भ्रान्ता जनाः किल मुमुक्षुत चेच्छृणुष्वम् ।

गीतामिमां भगवतीं भजतापरास्ति

संसारसिन्धुमसमं न तरी तरीतुम् ॥२२॥\*

देवीकी उपेक्षा करके अलके बिना सूखनेवालोंकी तरह उन बेचारोंका भाग्य ही मारा गया है ॥ २० ॥ इस जगत्में भगवान्की दयारूपिणी यह गीता [ सर्वधर्मान् परित्यज्य आदि वचनोंके द्वारा ] अपनी शरणमें आनेके लिये प्राणियोंको पुकार रही है । सदा ही अनादि अविद्याके आवरणसे ढकी हुई आँसोंवाले ऐ अन्ध ( अज्ञानी ) पुरुषो ! इस समय अपना बन्धन-मोचन करनेके निमित्त देर न लगाओ ॥ २१ ॥ ऐ लोगो ! यदि संसारमें कई-कई योनिओंको पाकर मटकते हुए थक गये हो और अब मुक्त होना चाहते हो तो सुनो, इस भगवती गीताको ही भजो, विषम संसार-सागरको पार करनेके लिये गीताके सिवा दूसरी नौका नहीं है ॥२२॥





॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टाध्याय्ये अर्जुनसंवादे ॥ ३३ ॥  
 अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता  
 युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥ ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो  
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥  
 अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता  
 युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥ ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो  
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥  
 अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता  
 युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥ ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो  
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥  
 अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता  
 युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥ ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो  
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥

॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥

अनायासात्प्राप्तव्यं कुरुक्षेत्रे ॥ ३३ ॥

ये तु प्राप्नुवन्ति निरर्थकं परिश्रमं ते न जानीमहे ॥ ३३ ॥

तेभ्यो मानवप्रायसाः परहितं स्वार्थं निश्चिन्तयेत् ॥

सामान्यास्ति पराधीनममृतः स्वार्थविरोधेन ये ॥

एकं संयुक्तैः पराधीनैः पराधीनैः पराधीनैः पराधीनैः ॥

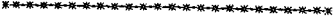
॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहो भवति मे मनो धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः समानात्माः ॥ ३३ ॥

अनायासात्प्राप्तव्यं कुरुक्षेत्रे ॥ ३३ ॥

ये तु प्राप्नुवन्ति निरर्थकं परिश्रमं ते न जानीमहे ॥ ३३ ॥

निष्ठा विवर्तय वनं मया ॥

सज्जनैर्जनविशेषकः ॥









कर्मात्क दस दुःखस्य सद्यस्य प्रसन्नताकां प्रति वर्त्तुं शक्यं ॥५१॥  
 वा गोपालस्य विमुख है उस कुलका, कुटुम्बका, धरका, पुत्रका, आत्मा-  
 का और शरीरका विकार है। विकार है ॥५५॥ मृत्यु, दोगी, पतन, मत्स्य-  
 और वैश्वानर-ये पूर्व जीव पूर्वा (विपत्तौ)से एक-एकसे मारे जाते हैं,  
 फिर जो प्रमादी अकेले ही अपनी पूर्वा इतिवृत्तिसि पूर्वा विपत्तिका  
 भयन करता है वह पूर्वा न मारा जायगा ? ॥५६॥ मनुष्यकी  
 मृत्युक पश्चात् उसका धन पुत्रादि मारा रह जाता है, पशु  
 गोपदम मूख रह जाते हैं, जो धरके द्वारा मरते जाते हैं; और परिव्रज  
 समानात्मक तथा शरीर विहायक साथ देता है, परलोकके मर्त्यादि  
 केवल धर्मकी साथ लेकर जीव अकेला ही जाता है ॥५७॥ जब  
 विद्वत्सि मुक्त दस शरीरमें पाए देता है, उसके निकल जानेमें क्या  
 शक्य है ? लिखितवा भी उसके उल्लेख करते हैं ॥५८॥

प्रतिवर्तुं शक्यं मत्स्यस्य-पितो वा  
 जगति हि यद्वैःसैर्दुर्लभः श्रीविद्यायाः ॥४४॥  
 विषकलं विषकटिन्धं च विषाहं विषके सुतं च विषके ।  
 आत्मानं विषके शरीरं च श्रीगोपालपराशरसूत्रम् ॥४५॥  
 कुटुम्बगतदुःखपदस्यैश्वर्यानां देवाः पञ्चमिदं पञ्च ।  
 एकः प्रमादी स कथं न दृश्यते यः सेवते पञ्चमिदं पञ्च ॥४६॥  
 द्रव्यगणौ युष्मां पदावश्च गौरी नारी शूद्रद्वारि जनः समाने ।  
 द्रष्टव्यतायां परलोकमात्रां धर्माविद्यां गच्छति जीव एकः ॥४७॥  
 नवविद्वदसमाकांशौ शरीरे पवनस्थितिः ।  
 प्रयागस्य किमाश्रयं विषं तत्र स्थिते महिषे ॥४८॥









मयि भोजनं, सत्संगिणि मीरि उपासना—इत्येकं यथासाधयेत् ॥२३॥  
 स्वस्ती मीरि, स्यात्प्राण्य सेवक, अतिथि-सकार, निजं वृत्तवत्,  
 आनन्दमय धर, विद्वान् पुत्र, विद्वान् पुत्र, सत्संगिणी, सत्संगिणी,  
 सत्संगिणी सेवक ॥ २० ॥ धरं गच्छेत्प्राण्य मयं ह्ये, निजं  
 निजं सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे  
 नदीं देवते ॥ १५ ॥ सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं  
 आ मीरि मी, निजं आत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं  
 आ ह्ये, आ मीरि सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे  
 मयि मयि ( २२ ) के मयि सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे

सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥२३॥  
 अतिथिं सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥  
 आत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥२०॥  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥१५॥  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥२०॥  
 सत्संगिणी सेवकं निजं करे, सत्संगिणी सेवकं निजं करे ॥२०॥



सुख मादस्ये ॥ ६२ ॥

समस्तं वक्ष्ये त्वं प्रकरं चतुर्षु विषयेषु भौतार्थेषु चिदर्थेषु  
 आनन्दे च, कर्मानि रस भरे जाय, अस्मिन् विषये च सुशीलित  
 आनन्दे च, कर्मानि रस भरे जाय, अस्मिन् विषये च सुशीलित  
 आनन्दे च, कर्मानि रस भरे जाय, अस्मिन् विषये च सुशीलित  
 आनन्दे च, कर्मानि रस भरे जाय, अस्मिन् विषये च सुशीलित



शोकान्शान्तिनां श्रुतौ चित्तवृत्तौ शोकं विरगाद्यदि ॥ ६३ ॥

द्विधा भवति शोकः शान्तिनां श्रुतौ चित्तवृत्तौ शोकं विरगाद्यदि ॥ ६३ ॥

शोकान्शान्तिनां श्रुतौ चित्तवृत्तौ शोकं विरगाद्यदि ॥ ६३ ॥

शोकान्शान्तिनां श्रुतौ चित्तवृत्तौ शोकं विरगाद्यदि ॥ ६३ ॥

\*\*\*\*\*



- ३० वातः प्रवर्तते बन्धुः प्रवर्तते प्रवर्तते । ( ३३३ )  
 २९ विद्वेषनया बद्धीयते ।  
 २८ वाते वा किं स्यात्प्रवर्तते ।  
 २७ गीताः प्रवर्तमाने गीताः न च विद्वेष न च वातः ।  
 २६ वाते न प्रवर्तमाने कर्तव्यं न स्यात् ।  
 २५ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 २४ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 २३ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 २२ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।

- ( कर्तव्यं कर्तव्यं )  
 २१ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 २० कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १९ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १८ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १७ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १६ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।

- ( कर्तव्यं कर्तव्यं )  
 १५ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १४ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १३ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 १२ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।  
 ( कर्तव्यं कर्तव्यं )  
 ११ कर्तव्यं कर्तव्यं स्यात् ।

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 )

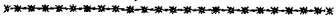
( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 )

( 1983 1983 1983 )

( 1983 1983 1983 )





। अथैव

७० अथः सप्तमविंशत्यधिकः ७०

। अथैव ७१

७२ अथैव ७२

( अथैव ) । अथैव ७३

७४ अथैव ७४

। अथैव ७५

७६ अथैव ७६

। अथैव ७७

७८ अथैव ७८

। अथैव ७९

८० अथैव ८०

। अथैव ८१

८२ अथैव ८२

। अथैव ८३

( अथैव ) । अथैव ८४

( अथैव ) । अथैव ८५

। अथैव ८६

। अथैव ८७

( अथैव ) । अथैव ८८

। अथैव ८९

। अथैव ९०

। अथैव ९१

\*\*\*\*\*

( विभक्ति )  
 ७७ मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ७७  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ७७  
 ७८ मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ७८  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ७८  
 ( कर्मात्मकस्य ) ७९  
 ८० मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ८०  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ८०  
 ( कर्मात्मकस्य ) ८१  
 ८२ मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ८२  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ८२  
 ( कर्मात्मकस्य ) ८३  
 ८४ मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ८४  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ८४  
 ( कर्मात्मकस्य ) ८५  
 ८६ मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ८६  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ८६  
 ( कर्मात्मकस्य ) ८७  
 ८८ मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ८८  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ८८  
 ( कर्मात्मकस्य ) ८९  
 ९० मकारप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञायाः प्रथमायाः ९०  
 । प्रथमायाः प्रथमायाः ९०

१ विधिरहो बलवानिति मे मतिः ।

२ विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि ।

३ विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।

४ विवेकधाराशतर्घातमन्तः सतां न कामः कलुषीकरोति ।

( नैषधीयचरिते )

५ शत्रोरपि गुणा वाच्याः ।

६ शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

( कुमारसम्भवे )

७ शुभस्य शीघ्रम् ।

८ श्रीकृष्णस्य कृपालवो यदि भवेत् कः कं निहन्तुं क्षमः ।

९ सतां हि चेतःशुचितात्मसाक्षिका ।

( नैषधीयचरिते )

१० सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।

( अभिज्ञानशाकुन्तले )

११ समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ।

१२ समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ।

( कुमारसम्भवे )

१३ सर्वं सावधि नावधिः कुलभ्रुवां प्रेम्णः परं केवलम् ।

१४ सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ।

( मर्तहरेः )

१५ सत्यं शिवं सुन्दरम् ।

१६ सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति ।

( भवभूतेः )

१७ सदोभूषा सक्तिः ।

१८ सा विद्या या विमुक्तये ।

१९ साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्पुगे ।



- १३० सानुकूले जगन्नाथे विप्रियः सुप्रियो भवेत् ।  
 १३१ सारं गृह्णन्ति पण्डिताः ।  
 १३२ सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् ।  
 ( किराताजुनीये )  
 १३३ संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।  
 १३४ सङ्कटे हि परीक्ष्यन्ते प्राज्ञाः शूराश्च सङ्गरे ।  
 ( कथासरित्सागरे )  
 १३५ संसारो नास्ति ज्ञानिनः ।  
 १३६ स्तोत्रं कस्य न तुष्टये । ( कुमारसम्भवे )  
 १३७ स्त्रियधरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।  
 १३८ स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा ।  
 १३९ स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते । ( रघुवशे )  
 १४० स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ।  
 १४१ स्वसुखं नास्ति साध्वीनां तासां भर्तृसुखं सुखम् ।  
 ( कथासरित्सागरे )  
 १४२ स्वस्थः को वा न पण्डितः ।  
 १४३ हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः । ( किराताजुनीये )  
 १४४ हृदे गभीरे हृदि चावगाढे शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः  
 ( नैषधीयचरिते )



## उपसंहार

एवं श्रीश्रीरमण भवता यत्समुत्तेजितोऽहं  
 चाञ्चल्ये वा सकलविषये सारनिर्द्धारणे वा ।  
 आत्मप्रज्ञाविभवसदृशस्तत्र यत्तैर्ममैतैः  
 साकं भक्तैरगतिसुगते तुष्टिमेहि त्वमेव ॥१॥  
 ( विष्णुपुरीस्वामिनः )

हे श्रीरमाकान्त ! हे अशरणशरण ! मैं बान्धवापत्य अथवा सर्व विषयों-  
 सार सञ्चय करनेमें जो आपके द्वारा उत्तेजित किया गया हूँ उसमें  
 मेरी बुद्धिवैभवके अनुसार किये हुए मेरे प्रयत्नों [ के फलस्वरूप इस  
 कसुपाकर ] से अपने भक्तजनोंके सहित आप ही सन्तुष्ट हों ।

एष स्यामहमल्पबुद्धिविभवोऽप्येकोऽपि कोऽपि ध्रुवं  
 मध्ये भक्तजनस्य यत्कृतिरियं न स्यादवज्ञास्पदम् ।  
 किंविद्याः शरधाः किमुज्ज्वलकुलाः किंपौरुषं के गुणा-  
 स्तत्किं सुन्दरमादरेण रसिकैर्नापीयते तन्मधु ॥२॥  
 ( विष्णुपुरीस्वामिनः )

हो सकता है कि मैं एक अल्पबुद्धि और तुच्छ व्यक्ति ही होऊँ,  
 मेरी आशा है कि प्रेमी भक्तजनोंमें मेरी इस कृतिकी उपेक्षा न होगी;  
 क्योंकि ( तुच्छ ) मधुमशिकामें कहींकी विद्या है ! कौन-सा उत्तम  
 ल है ! क्या पौरुष है ! और कौन-से गुण हैं ! तो भी उसके द्वारा  
 प्रदीप्त स्वाभाविक मधुर मधुका, क्या रसिकजन आदरपूर्वक आस्वादन  
 ही करते !



श्रीहरिः

सूक्तिसुधाकरे संगृहीतश्लोकानाम-  
कारादिक्रमेणानुक्रमः

श्लोकाः	श्लोकाः	श्लोकाः	श्लोकाः
[ अ ]			
अखण्डमण्डलाकारम्	२१९	अनभ्यासेन वेदानाम्	१३८
अखण्डानन्दबोधाय	२२०	अनभ्यासे विषं विद्या	१५५
अगाधजलसञ्चारी	२३३	अनन्तपारं बहु वेदशास्त्रम्	२३७
अङ्गनामङ्गनामन्तरे माघवः	८३	अनारोग्यमनायुष्यम्	१४०
अचिन्त्यदिव्याद्भुतनित्य०	२२	अनार्यता निष्ठुरता	२३२
अजरामरवत् प्रातः	१५१	अनिच्छन्नप्येषम्	२५
अजातपथा इव	१२	अनित्यानि शरीराणि	१४४
अज्ञानन्दाहात्म्यम्	१८७	अनुमन्ता विशसिता	१४१
अङ्गनानन्दनं वीरम्	५८	अनेकसंशयोच्छेदि	१५१
अतुलितबलधाम	५७	अन्तःस्वभावभोक्ता	११२
अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी	१५६	अन्नदाता मयत्राता	१४९
अथासक्तिसततो भावः	२१०	अपराधसहस्रभाजनम्	२३
अदीनलोलाहसितेश्णोहसत्०	३९	अपमानं पुरस्कृत्य	१६२
अधमैर्षते तावत्	१३७	अपूर्वनानारसमाद्यनिर्भर०	२२
अधीर्य चतुरो वेदान्	१७७	अभिवादनशीलस्य	१३९
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः	१४०	अभिमानं सुरापानम्	३६
		अभूतपूर्वं मम भावि किं वा	१८
		अमर्यादः शुद्धबलमति०	२६
		अम्भोधिः स्मृतम्	३

## उपसंहार

एवं श्रीश्रीरमण भवता यत्समुत्तेजितोऽहं  
 चाञ्चल्ये वा सकलविषये सारनिर्द्धारणे वा ।  
 आत्मप्रज्ञाविभवसदृशस्तत्र यत्तैर्ममैतैः  
 साकं भक्तैरगतिमुगते तुष्टिमेहि त्वमेव ॥१॥

( विष्णुपुरीस्वामिनः )

हे श्रीरमाकान्त ! हे अशरणशरण ! मैं बाल्यवापस्य अथवा सर्व विषयों-  
 का सार सञ्चय करनेमें जो आपके द्वारा उत्तेजित किया गया हूँ उसमें  
 अपने बुद्धिवैभवके अनुसार किये हुए मेरे प्रयत्नों [ के फलस्वरूप इस  
 भक्तिमुष्णकर ] से अपने भक्तजनोंके सहित आप ही सन्तुष्ट हों ।

एष स्यामहमल्पबुद्धिविभवोऽप्येकोऽपि कोऽपि ध्रुवं  
 मध्ये भक्तजनस्य यत्कृतिरियं न स्यादवज्ञास्पदम् ।  
 किंविद्याः शरधाः किमुज्ज्वलकुलाः किंपौरुषं के गुणा-  
 स्तत्किं सुन्दरमादरेण रसिकैर्नापीयते तन्मधु ॥२॥

( विष्णुपुरीस्वामिनः )

हो सकता है कि मैं एक अल्पबुद्धि और तुच्छ व्यक्ति ही होऊँ,  
 तो भी आशा है कि प्रेमी भक्तजनोंमें मेरी इस कृतिकी उपेक्षा न होगी;  
 क्योंकि ( तुच्छ ) मधुमधिकामें कहौंकी विद्या है ! कौन-सा उत्तम  
 कुल है ! क्या पौरुष है ! और कौन-से गुण हैं ! तो भी उसके द्वारा  
 संगृहीत स्वाभाविक मधुर मधुका, क्या रसिकजन आदरपूर्वक आत्मादन  
 नहीं करते !

श्रीहरिः

सूक्तिबुधाकरे संगृहीतश्लोकानाम-  
कारादिक्रमेणानुक्रमः

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
[ अ ]		अनन्यासेन वेदानाम्	१३८
अखण्डमण्डलाकारम्	२१९	अनन्यासे विषयं विद्या	१५५
अखण्डानन्दबोधाय	२२०	अनन्तरारं बहु वेदशास्त्रम्	२३७
अगाधजलसञ्चारी	२३३	अनारोग्यमनायुष्यम्	१४०
अज्ञानामज्ञानामन्तरे माघयः	८३	अनार्यता निष्ठुरता	२३२
अचिन्त्यदिदृश्याद्भुतनिरय०	२२	अनिच्छन्नप्येषम्	२५
अज्ञरामरवन् प्राणः	१५१	अनिरयानि शरीराणि	१४४
अजातपथा इव	१२	अनुमन्ता विशसिता	१४१
अज्ञानन्दाहारम्यम्	१८७	अनेकसंशयोच्छेदि	१५१
अज्ञानानन्दन धीरम्	५८	अन्तःस्वभावभोक्ता	११२
अनुकितबन्धाम	५७	अप्रदाता भयत्राता	१४५
अरयन्लक्षोरः कटुका च वाणी	१५६	अपराधसहस्रभाजनम्	२३
अपासक्तिभक्तो भावः	२१०	अपमानं पुरस्कार्य	१६२
अदीनश्लोकाः इति श्लोकाः	१९	अपूर्वनामारसभावनिर्भर०	२२
अधमेणैषते तावत्	१३७	अभिवादनशीलस्य	१३९
अर्थाय चतुरो वेदान्	१७७	अभिमानं सुरारामम्	३६
अप्यापनं ब्रह्मपत्रः	१४०	अभूतपूर्वं मम भावि किं वा	१८
		अमर्षादः दुःखधर्ममति०	२६
		अम्भीषः स्वपताम्	३



शोभनप्रथमः	१११	अहं भवन्नाम गृह्यते	१
नेदनाहं नाग दे	६४	अध्यायार्थं वर्त्मनिदम्	१३
अदम्युक्त किङ्काम्	११	अज्ञानाभ्यन्तारभयम्	७
गुणानुसुन्द०	१२३	अज्ञानविधिराज्यम्	२१९
शिवमोक्षेः परितरिति	८७	[ आ ]	
त्र हरेर्नाम	३५	आकर्णार्णभेषम्	१०६
संपदे भैनाम्	१४३	आकाशात्पतितं तोयम्	३०
गर्णा न मुहुः	१६५	आचारः परमो धर्मः	१३६
ममलमेका	८९	आचार्यश्च पिता चैव	१३९
पितृशानिमात्	२४	आचार्यारामश्च मुनयः	२०२
कपनाम्बदिदमुने	२३	आत्मानं यदि निन्दन्ति	२३५
आद्यवस्य	११७	आदित्यस्य गणागतेः	१८७
पुत्रो यद्ये यस्य	१४८	आदौ रामतपोवनादिगमनम्	५५
महामोक्षमे कटादे	१७८	आदौ माता गुरोः पत्नी	१५०
ारः कापि मत्र	७१	आदौ भद्रा ततः सप्तः	२१०
वा पापाणः	५४	आनन्दायां मयि	११७
गृह्णि भूतानि	१७८	आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम	३३
वा सत्यमस्तेषम्	१३६	आनन्दमूलगुणपञ्चव०	१९०
ककीयं सानकालकूटम्	९३	आनीता नटवन्मया	६९
माग्यमहो माग्यम्	११३	आपदां कथितः पन्थाः	१५०
पापादायामर०	१०	आपद्रुतं दृष्टि किम्	२३९
विचित्रं तव राम चेषितम्	४८	आसद्भेषाद्भवेन्मृत्युः	१५७
साहजिकं प्रेम	२०९	आशिष्वाणो रघाङ्गम	४३
चा हारे वा	१८९	आश्रायाम्यसनानि	३२
तु नारायणदासदास०	२८	आयुषः क्षण एकोऽपि	१४७
भक्तपराधीनः	२०८	आयुः कलोललोलम्	१८८

श्लोकाः	पृष्ठाः
आर्षा विषण्णाः	२८
आलोड्य सर्वशास्त्राणि	३०
आशा नाम नदी मनोरथ०	१८५
आभितमात्र पुरुषम्	१११
आर्त्तान्नाद्याणाभ्याम्	२११
आमुग्ध बुद्धमनादरणीयम्	४७
आहुध ते नन्दिनाभ	०३

[ इ ]

एतो न किञ्चिदप्यतो न	१७७
एदानीमप्रमत्ताः	१७
एदं शीघ्रं शतमन्त्रैश्चक्रंराम्	५३
एदीक्षादत्तवपामम्	७६
एदु वैर्दक्षीण	७६
एदुः क्व क्व व मातरः	२१४
एमायमुनीनि विभक्तिगानि	१११
एर्षा धनधेनिधियोऽमृतः	७५
एषे स्वर्गलोको वागः	२१०
एष जगति ददेवम्	२३८

[ उ ]

एश्याः न किञ्चिदप्यतो	१८६
एश्याः न किञ्चिदप्यतो	१०
एश्याः न किञ्चिदप्यतो	१०१
एश्याः न किञ्चिदप्यतो	१६५
एश्याः न किञ्चिदप्यतो	१८
एश्याः न किञ्चिदप्यतो	१५३

श्लोकाः	पृष्ठाः
उमिद्रह्यन्वदुःखार्णोऽवापये	१९
उर्य्युपयंश्चक्रुर्वाऽपि	१६
उपकारः परो धर्मः	१६७
उपशान्तानाम्पिदिदः पुराणम्	८०
उपशान्तानाम्पिदिदः पुराणम्	१५

[ फ ]

फलयो दीपंशब्दप्रकाशम्	१३७
-----------------------	-----

[ ब ]

बकाशर वर इष्ट	१३७
बकेनापि सुदुर्लभ	१४५
बकेन इष्टप्रकृत्येन	१४६
बके शत्रुहयाः वार्यं०	२३६
बकोऽपि वैदिकिदमम्	१३६
बकोऽपि वृष्णस्य वृत्तः	२००
बक शार्धं देवर्षीपुत्र०	६०
बकावहनसुवरा	५१
बक सुर्वापि अर्जुनम्	१०४
बकवतः स्वर्गदत्तानाम्दीर्घा	११७
बक निष्ठाऽवतः वाप्याः	१००

[ घ ]

घेयवर्णं हिन्दुस्य सुवचना	१६१
---------------------------	-----

[ ङ ]

ङात्तान्तिवशात्पुत्रवत्तम्	८०
----------------------------	----

[ क ]

णि करोटयः	१२९
तं पदयन्	७
गाराणस्याममरतटिनी०	८
गाराणस्यां विमल०	८
गुनः शङ्करशास्त्रकल्पक०	१९
धृञ्जैः स्त्रीते	३४
प्रेमोद्गारैः	३५
वा साकेते	५५
गीताशोकत्रिद्विखजलदम्	५८
वृन्दारण्ये	६८
सु वृन्दावनकुञ्जमण्डले	१२५
सु वृन्दावनवीथिकास्वहम्	१२५
भो स्वामिन्नियतमनसा	१७३
मे हृत्पत्रे भ्रमरः	१७४
हे स्वामिन्नमृतिमयम्	१७४
कमलमासः	६५
कचिदुक्तः	६८
कौटुम्भगम्	१०७
कनयन वामुदेव विष्णो	१९७
कविन्देन पदारविन्दम्	७७
कृतव्यप्रकुरङ्गबालम्	६
कौशिके रात्रन्	१९६
कृमः कल्पितमेव सूने	१६८
कृतकुरकेलिः	९
कान्तानां निधानम्	५३

कस्मात्कोऽहं किमपि चर्चमवान्	२२६
कस्मै किं कथनीयम्	१२२
कस्योदरे हरविरिञ्चमुखप्रपञ्चः	१५
का चिन्ता मम जीवने यदि	७९
काञ्चीकलापपर्यस्तम्	४०
कामं सन्तु सहस्रशः	८४
काम्योपासनसार्थयन्त्यनुदिनम्	१११
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा	२०१
कालिन्दीपुलिने तमाल०	८९
कालिन्दीकूलकेलिः	९७
कापायप्रदणं कपालमरणम्	२३८
किञ्चैष शक्यतिशयेन	१३
किरातहृणान्प्रपुलिन्द०	४२
किरीटिनं कुण्डलिनम्	४०
किं करोमि क्व गच्छामि	१००
किं पाद्यं पदपङ्कजे समुचितम्	३६
किं विवन्ति मम पदरसम्	६२
किं ब्रमस्त्वां यशोदे	११४
किं वा मादशनिःशरण्य०	६
किं मुमोऽसि किमाकुलोऽसि	५
कुन्दरन्दुदरगौर०	६
कुन्दकुञ्जमणुं पश्य	११५
कुण्डमातङ्गगतकभृङ्ग०	२३६
कुर्वन्ति शान्तिं विदुषाः प्रहृशाः	२०३
कुलं वक्षिषं जननी कृतार्था	२१५

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
हृन्नुणेणामेध्यमध्ये	१८६
हृते यद्दध्यायतो विष्णुम्	१९६
हृतायौ पितरौ तेन	२२५
हृपापात्रं यस्य	१०८
हृशः काणः खड्गः	१८४
हृष्ण त्वदीयपदपङ्कज०	९०
हृष्ण कृष्णेति कृष्णेति	९०
हृष्ण त्वं पठ किम्	९८
हृष्णकथासंश्रवणे	१०३
हृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति	१९८
हृष्णः पशो नवकुवलयम्	११८
हृकीकण्ठाभनीलम्	५२
हृदि वदन्ति घनहीन०	३७
हृदिस्त्वदेहान्तद्वन्द्वयावकाशे	३८
हृदि गीयमाने	१०५
हृदयानि न विभूषयन्ति पुरुषम्	१५९
हृदिलानां स्वरो रूपम्	१४८
हृदित्तिभारः समर्थानाम्	१५४
हृदयैः पुत्रेण जातेन	१४५
हृदयलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ	५१
हृदयकालः कानि मित्राणि	१५६
हृदयैः भियः परमसत्त्व०	१४
हृदिदुष्टः क्वचित्तुष्टः	१६२
हृदिद्विद्रोशी	१९२
हृदिदुदन्त्यन्मुलचिन्तया	२०७

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
क्वचिन्मूढो विद्वान्	२१७
क्वचिद्भूमौ शय्या	२३०
क्वाननं क नयनं क नासिका	७४
क्वार्थं शुद्रमतिर्दासः	१०३

[ ख ]

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च २००

[ ग ]

गङ्गागयानैमिषपुष्कराणि	२०३
गङ्गातीरे दिमगिरिशिला०	१८५
गते गोपीनाथे मधुपुरम्	१२१
गात्रं सद्गुचितं गतिः	१८६
गीत्वा च मम नामानि	१९५
गुडारवालिककलितम्	१०६
गुणवदगुणवद्वा कुर्वता	१६०
गुणिगणगणनारम्भे	१६४
गुणैरुत्तमतां याति	१५६
गुरुरभिर्द्विजातीनाम्	१४८
गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः	२२०
गुरुर्न स स्यात् स्वजनः	२३८
गृहे पर्यन्तस्थे द्रविण०	१८०
गोकोटिदानं ग्रहणेषु	९१
गोपबालमुन्दरीगणावृतम्	६१
गोपाल इति मत्वा त्वाम्	६९
गोपीमात्रं धुणलिपिनयात्	११६
गोविन्दं गोवृत्तानन्दम्	७५

किष्किणनेत्र	१८०
नानावापनमोर्धनं स्वतः २१	२६१
वृक्षे स्वतन्त्रे नवः	३१
वा भूवि वा	३२३
न मज्जिमानाम्	३५
म्याःमादेशदरिदग्गीषव	१५६
ः शिपवादी च	१५६
ः परिद्वन्द्वः	१५०
न प्राङ्ग मिवम्	५९
द्वन्द्वीगतानिः	१५५
तुतं म्भेत्यादम्	८६
दीननपूजनतुतः	१६०
तोर्धे द्विजे मन्त्रे	५८
दृष्ट्या तु दामोऽदम्	१९०
द्वन्द्वीसदपरिरे	६७
म्यां दोर्म्यां ब्रह्मन्तम्	११३
ः प्रायो न भवति गयाम्	१०७
म्यामिन्द्रियाणाम्	२३६
याणि भूमौ पशवश्च गोष्ठे	

[ घ ]

पथाम्यप्रयोगेषु	१५६
तानि जीवितञ्चैव	१५७
नेकः भोजियो राजा	१५७
न्यानां गिरिकन्दरे	१७५
येयं धरणी	११६
मं एव हतो हन्ति	१३७

धर्मो लयागतः पुनो मनुष्या	२१५
धर्मो ब्रह्मन् गणम्	१३१
धर्मो मो वाचो धर्मः	२३९
विदुषुषं विदुषुषं च	२३६
विदुषुषमचिनी तम्	२०
पुषिः दामा दामोऽमो दम्	१३६
येवं मन्त्र विना दामा च जननी	२२६
नानत्रजे ब्रह्मद्वे	२१३
नानाम्यागवादीकृतं	९९
नानं बन्धुत्वं परामर्शम्	१२५
न्यायज्ञं शिष्यादिद्वन्द्वीकृतम्	११९
नेयं मदा परिभवप्रमतीकृतम्	५२

[ न ]

न कश्चिन् कस्यनिम्नितम्	१५६
नकाशान्ते करीन्द्रे	५३
नरानियमितकण्डून्	८२
न च विद्यातमो बन्धुः	१७८
न जाने सम्मुत्थायाते	६५
न जातु कामः कामानाम्	१७८
न तथा मे शिपतमः	१२२
न तथा ह्यघवान् राजन्	१६९
न तथास्य मवेच्छेशः	१८०
न तिष्ठति तु यः पूर्वाम्	१३८
न ते रूपं न चाकारः	३६
नदीं तरामो वसुधाम्	५५

श्लोकः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकः	पृष्ठाङ्काः
न देहं न प्राणान्	२४	न रोषयति मां योषाः	१६९
न धर्मनिष्ठोऽस्मि	१७	नवनीरदसुन्दरनीलवपुम्	६४
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यम्	११	नवनीलमेघचिचिरः	९८
न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमम्	२०७	नवच्छिद्रसमाकीर्णं	२३६
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके	१७	न वै जनो जातु कथञ्चन	२०७
नेतु प्रपन्नः सकृदेव नाथ	२७	न सा सभा यत्र	१६६
नन्दनन्दनपदारविन्दयोः स्यन्द० ६८		न साधयति मां योषाः	२०२
नन्दनन्दनपदारविन्दयोर्मन्द०	७१	न सीदन्ति धमेण	१३७
नन्दन्ति मन्दाः धियम्	१७६	न हायतेनं पलितैः	१३८
न प्रेमसन्धोऽस्ति दरोऽपि	६४	नागो भ्रूति मदेन	१६२
न भोगे न योगे न वा	७०	नाथ धोऽनसदस्तेषु	२९
नमस्ते सते ते जगत्कारणाय	१	नागाच्चित्रविचित्रवेप०	२०५
नमस्तस्मै परेशाय	१०२	नाग्या स्पृहा रघुपते	५०
नमस्तेऽस्तु शङ्गे श्वदङ्ग०	१२८	नापृष्टः कस्यचिद् भूयात्	१४०
नमामि नारायणपादपङ्कजम्	३०	नामुत्र हि सदायार्थम्	१३७
नमामि यमुनासहम्	११०	नाथ ते समयो रहस्यमधुना	१८८
न मृथा परमार्थमेव मे	२३	नारायणो नाम नरो नराणाम्	२७
नमो नमो बाह्मनसातिभूमये	१७	नारायणेति मन्त्रोऽस्ति	३०
नमो ब्रह्मण्यदेवाय	९३	नावेशसे यदि ततः	१३
नमोऽस्तु भीष्मभीष्माय	१०२	नास्ति श्रीणां पृथग्यज्ञः	१४३
नमोऽस्तु यमुने सदा	१३०	नास्ति विद्यासमं वस्तुः	१५०
नमः श्रीद्वारकेश्याय	१०८	नास्ति कामसमो व्याधिः	१७७
न यद्वर्षाभ्रपद इरेवशाः	१९६	नाग्या धर्मं न वसुमिचये	३१
नमन गलदभ्रधारया	२१३	नार्हं वन्दे तव चरणवीर्यद्वन्द्वम्	३१
न रायं नारम्यम्	१७५	नार्हं विप्रो न च नरपतिः	९८
नरके पश्यमानम्	२००	नार्हं वग्मि वैकुण्ठे	१९५

श्लोकाः	पद्याङ्काः	श्लोकाः	पद्याङ्काः
भेको घावतितं च घावतिफणी	१८२	माता च कमला देवी	३७
भेदाभेदौ सपदि गलितौ	२२५	मातापितृम्याम्	१३९
भोगानमुक्ता वयमेव मुक्ताः	१८४	माता यस्य गृहे नास्ति	१४८
भोगे रोगमयं कुले च्युतिमयम्	१८४	मातुलो यस्य गोविन्दः	१९०
भोजनाच्छादने चिन्ताम्	२२२	मातृवत्परदारेषु	१५५
भ्रान्ता भवे कति कति	२२८	मातेव रक्षति पितेव	१६४
भ्राश्यन्मन्दरघूर्णं	१३२	माधुर्यादपि मधुरम्	८०
		मायाहस्तेऽर्पयित्वा	१०८
		मार मा वस मदीयमानसे	८२
		मार्गे मार्गे जायते साधुवङ्गः	२२४
मज्जनमनः फलमिदम्	२८	मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्	१६६
मधुर्मदि महन्मञ्जु	२७	मित्रं स्वच्छतया रिपुम्	१६३
मधुरमधुरमेतन्मङ्गलम्	७५	मुक्तमुनीनां मृग्यम्	१२१
मध्ये गोकुलमण्डलम्	८३	मुक्ताजालकराम्बुत०	१३२
मनस्यन्यद् यच्चस्यन्यत्	१५२	मुक्तिमिच्छति चेत्तात	१७९
मन्दारपुष्पवासित०	१०६	मुखारविन्दनिःसन्द०	१२३
मस्तिन्दया यदि जनः	२३५	मुग्धं श्लिग्धं मधुरमुरली०	८६
मन्ये लक्ष्मि त्वया सार्धम्	२४०	मुरहर रन्धनसमये	१२४
मम नाथ यदस्ति	२४	मूकं करोति वाचालम्	६६
मम न भजनमक्तिः	४५	मूर्खां यत्र न पूज्यन्ते	१४८
मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिम्	४८	मूर्द्धप्रोद्गासिगङ्गे०	५
मदत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः	२२४	मूलं धर्मतरोर्विवेकजल्पेः	६
महामरकतरयामम्	४१	मूलं भुजङ्गैः शिखरं प्रवह्नैः	२३३
मातर्गेदिनि तात मारुत सखे	२	मृदुमायिता प्रसादः	१०४
मातर्गङ्गे तरलतरङ्गे	१२८	मृश्रीका रसिता सिता	७३
मातर्देवि कलिन्दभूषरमुते	१३१		
मातर्माये भगिनि कुमते	१७६		

[ म ]

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
मेघश्यामं पीतकौशेयवासम्	२८	यस्ते ददाति खमस्य	९
मौनान्मूकः प्रवचन०	१६०	यस्य कस्य च वर्णस्य	२१८
[ य ]		यस्या बीजमद्दहकृतिः	१८२
यच्च काममुखं लोके	२३४	यस्यैकनिःस्पृहित०	९४
यत्कीर्तनं वरस्मरणम्	४२	यस्योदयास्तसमये	१२७
यत्पादपङ्कजपराग०	४८	यत्र निर्लिप्तभावेन	४३
यत्पादपङ्कजराजः	४८	यद्देहाच्युत गोविन्द	२९
यथा चतुर्भिः कनकम्	१५५	या चिन्ता भुवि पुत्रपौत्र०	७२
यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यत्	१६	या दोहनेऽवहनने	१२०
यदा किञ्चिच्छोऽहम्	१७०	या पूर्वहरिणा प्रयाणसमये	११७
यदा ग्रहप्रसू इव कश्चित्	२१२	या प्रीतिरिविवेकानाम्	२९
यदि जयति मुकुन्द०	२२७	यावत्स्वस्वामिद कलेवरग्रहम्	१७३
यदि दधति न गीताम्	२२७	यावन्निरञ्जनमज पुरुषम्	७६
यद्दुस्तारं यद्दुरापम्	१३८	यां दृष्ट्वा यमुनाम्	८४
यद्यपि साकारोऽयम्	१०८	युगावितं निभेषेण	९९
यद्यपि सर्वत्र समः	११२	ये मानसा विगतारागपरावरजाः	१९८
यद्यपि गगनं शून्यम्	११२	ये मुक्तावपि निःस्पृहाः	६२
यद्गोमरन्ध्रपरिपूर्तं०	११४	ये ये हताश्रुधरेण	२८
यद्द्रवमलादेशै	१०३	येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले	१०१
यद्वा श्रमावधि यथामति	१३	येषां न विद्या न तपो न दानम्	१५८
यद्वाप्यकीर्तनपरः	३४	योग योगविदां विधूत०	१३१
यन्मूर्ध्नि मे भ्रुतिशिरस्तु	१२	यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यैः	११८
यमुनापुलिने समुत्थिषन्	६२	यं ब्रह्मा षष्णेन्द्रशत्रुमरुतः	३८
यमुनातटनिकट०	१०५	यं मातापितरो क्लेशम्	१३९
यशोदया समा कापि	११४	य वेद वेदविदपि त्रियमिन्द्रियायाः	१२२
		यं शैवाः समुपासते शिष इति	४३



श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
यः कश्चिद्बुद्धिहीनोऽपि	१३३	लामलोषां जयस्तेषाम्	६२२
यः शङ्करोऽपि प्रणयम्	५	लालयेत् पञ्च वर्षाणि	१४५
[ २ ]		लावण्यामृतवन्ध्याम्	६०
रघुवर यदभूस्त्वम्	२६	लीलायताम्याम्	७९
रत्नाकरस्ताव गृहम्	६९	लीलाटोपकटाक्षनिर्भरं	८१
रविरुद्रपितामहविष्णुनुतम्	१३३	लोकाधीशो त्वयीशे	१०९
रसने त्वं रसशेति	५६	लोकानुद्भयन्	१२३
रहूगणैतत्तपसा न याति	१७०	लोकं शोकहतं वीक्ष्य	४४
राजा धर्ममृते द्विजः	१५८	लोभश्चेदगुणेन किम्	२३९
रात्रिर्गामिष्यति भविष्यति	१८३	लोष्टमर्दी तृणच्छेदी	१४९
राधाकरावचितं	११९	[ ३ ]	
राधामुग्धमुखारविन्दं	९५	वज्रादपि कठोराणि	२३०
राधिकां नौमि	११५	वने चरामो वसु चाहरामः	४७
रामनाम जपताम्	५६	वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति	१८९
रासे चञ्चलताम्	९६	वन्दे शारदपूर्णचन्द्रं	४६
रूपयौवनसम्पन्ना	१४५	वन्दे नवधनस्यामम्	७४
रे कन्दर्पं करं कदर्थयसि किम्	१८९	वन्दे मुकुन्दमरविन्दं	८७
रे चित्तं चिन्तय चिरम्	७०	वपुरादिषु योऽपि	२३
रे चेतः कययामि	७६	वपुः कुञ्जीभूतम्	१९२
रे रे चातक सावधानमनसा	१५९	वयं त्वां स्मरामः	२
रे रे मानसभृङ्ग मा कुरु मुषा	१०१	वरमसिधारा तद्वतलवातः	२०५
[ ४ ]		वरं मौनं कार्यम्	१६४
लब्धा विद्या राजमान्या	१७२	वलयाङ्गुलीयकायान्	१०६
लब्धा मुदुल्लभमिदम्	१७९	वशी वदान्यो गुणवान्	१६
ललितान्तानि गीतानि	१६५	वसुदेयमुतं देवम्	६६

श्लोकः	पृष्ठाङ्कः	श्लोकः	पृष्ठाङ्कः
बहिसस्य जलायते	१५८	विष्णुपर्त्री क्षमाम्	४५
वाञ्छा सज्जनसङ्गमे	२३१	विमुञ्जति हृदयं न यस्य साक्षात्	२०६
वाणी गुणानुकथने श्रवणौ	२०२	विहाय पीयूषरसम्	६३
वानरनिकराध्यक्षम्	५९	विहाय कोटण्डशरान्मुहूर्तम्	८१
वामे भागे जनकतनया	५४	वीताखिलविषयेच्छम्	५८
वासुदेवं परित्यज्य	९१	वीतासङ्गाः शयनवसन०	१२०
वासुदेवस्य ये भक्ताः	२०८	वृक्ष क्षीणफलं त्यजन्ति	१६३
वासः काञ्चनपिङ्गरे	२३३	वृथा वृष्टिः समुद्रेषु	१५३
विजेतव्या लङ्का श्वरण०	२२९	वृन्दारण्ये तपनतनया०	६५
विद्या मित्र प्रवासेषु	१४६	वृन्दावृन्दमरन्द०	७४
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्	१५९	वृन्दारण्यान्मधुपुरमिते	११६
विद्यातीर्थे जगति विबुधाः	१६६	वृन्दारण्ये श्वर चरण	१२५
विद्या विवादाय धनं मदाय	२३२	वेदापहारगुरुपातकदैत्यपीडा	१४
विद्राविते शत्रुजने समाप्ते	१९१	वेदानुद्धरते जगन्ति बहूते	९५
विद्वश्चक्षु नृपत्वञ्च	१४४	वेदे रामायणे चैव	३५
विनिश्चितं वदामि ते	२०५	वेदः स्मृतिः सदाचारः	१३६
विपदो नैव विपदः	२७	वशीविभूषितकराश्रव०	९९
विपदः सन्तु नः शश्वत्	२०१	व्याघस्याक्षरणं भ्रुवस्य च वयः	२०५
विपदि धैर्यमथाम्युदये क्षमा	२१६	व्यामोहप्रशमोपधम्	८९
विप्रयोर्विप्रबह्वयोश्च	१५७	प्रतानि यज्ञरउन्दांसि	१६९
विभूषितं भेरुलया	३९		
विरसा ज्ञानन्ति गुणान्	२२३	[ शु ]	
विगजमानोऽम्बलपीतवाससम्	१९	शम्बरवैरिशरातिषम्०	५९
विरक्षणं यथा श्वान्तम्	२३४	शरीरं मुच्यं ततः	७०
शिलासुविक्रान्तपरावरालयम्	१९	शरीरस्य गुणानाञ्च	१४७
विषादस्पृष्टं प्र. ह्यम्	१४१	शरीरं च नवन्तिद्रम्	२२२
		शब्दं दिक्कविभिर्दीप्तम्	१४२

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
अधुच्छेदैकमन्त्रम्	८८
शान्ताकारं भुजगशयनम्	३७
शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तः २१५	
शान्तितुल्यं तपो नास्ति १४९, १७८	
शिशिरकिरणधारी	४
शीर्षां गोकुलमण्डली	१२२
शुक्लाम्बरधरं विष्णुम्	११
शुक्लं ब्रह्मविचारसारपरमाम्	१३४
शुद्धयति हि नान्तरात्मा	१०३
शुभतरकृतयोगात्	१२९
शुभा महा भूतपिशाचयुक्ताः	२०३
शृणु सखि कौतुकमेकम्	६१
शृण्वन् शृणन् संस्मरयंश्च	२०१
शृण्वन्सुमद्राणि रथाङ्गपाणेः	१९४
शृण्वन्नार्दनकया०	८९
शोकस्थानसहस्राणि	१५४
श्यामेति मुन्दरवरेति	११८
श्वसोः कुवलयम्	६०
श्वणं कीर्तनं विष्णोः	१९३
श्रियः कागताः कान्तः	९४
श्रीकृष्णस्य मनोशनादमुरलीम्	९६
श्रीकृष्ण श्याम राधाधव	९७
श्रीकृष्णनामा जयतीह शश्वत्	१०२
श्रीमत्कृष्णे मधुपुरगते	११५
श्रीरामतो मध्यमतोदि यो न	४७
श्रीरूपदाभ्युत्तरजश्वकमे	१९९

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
श्रीवल्लभेति वरदेति	३०
श्रीवत्साङ्गं घनश्यामम्	४०
श्रीविष्णोः श्वणे	१९३
श्रुतयः पलालकल्पाः	१२१
श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे	११३
श्रुतिस्मृत्युदितं घर्मम्	१३५
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः	१३५
श्रुतिर्विमित्रा स्मृतयो विभिन्नाः २२९	
श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मकल०	४४
श्रेयःस्युति भक्तिमुदस्य	२०२
श्वविड्धराहोष्ट्रैः	१९५
श्वसैजदलकाभातम्	४१

[ प ]

पद्मज्ञादिवेदो मुखे	७०
पद् दोषाः पुरुषेणैह	१५३

[ स ]

सकलभुवनमध्ये निर्घनास्तेऽपि २०४	
सकृत्त्वदाकारबिलोकनाशया २४	
सकृन्मनः कृष्णवदारविन्दयोः १९९	
सङ्गमविरहविकल्पे २१३	
सञ्चितरूपम् १२६	
सजलजलदकालम् ६७	
स जीवति गुणा यस्य १४९	
सततमुलभदैव्ये २३५	
सत्यजतं सत्यपरम् १	

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
सत्येन धार्यते पृथ्वी	१५४	साधवो हृदयं मह्यम्	२१५
सत्यं ब्रवीमि मनुजाः	९०	साधुस्त्रीणां दयितविरहे	१६१
सत्यं समस्तजन्तुषु	१०४	साधूनां दर्शनं पुण्यम्	१४९
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात्	१४०	सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः	२४०
सत्यं माता पिता ज्ञानम्	२२३	सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुम्	५१
सत्सङ्गः केशवे भक्तिः	१४९	सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविपद्०	९५
सदा प्रदृष्ट्या भाग्यम्	१४३	सालोवयसार्धिसामीप्य०	२०८
सदाप्रसन्नं मुलभिष्टवाणी	१५७	साक्षात्त्रयैकदेशे	१०७
सदा मुक्तोऽपि बन्धोऽस्ति	२०९	सिन्धुर्विन्दुमहो	७२
सन्तोषत्रिषु कर्त्तव्यः	१५७	गुजोर्णाम्ग्नं सुविचक्षणः सुतः	१६७
सन्तोऽनपेक्षा भवित्ताः	२१५	सुतरामनन्यशरणाः	११२
सन्ध्याबन्दन भद्रमस्तु भवते	८६	सुभिध कृषके नित्यम्	१५१
समाभिता ये वदपल्लवद्रवम्	९२	सुरभीकृतदिग्बलयम्	१०६
समुद्राशरणा भूमिः	१५०	सुरा मत्स्याः पशोर्मांसम्	२३८
सरसिजनिलये सरोजहस्ते	४५	सुल्भाः पुरुषा लोके	१६७
सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः	१४७	सेवयं विबुधासामन्धक०	१८१
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये	४५	सेवापूजनमनविधयः	१३३
सर्वभूतेषु यः पश्येत्	२०६	सोथानभूतं मोक्षस्य	२३४
सर्ववेदमयी गीता	३५	सविधाय दशने तृणं विभो	११८
सर्वे परवशं दुःखम्	१४१	संसारसागरं घोरम्	३६
सर्वाधिपत्यं समरे शभीरम्	४६	स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनाम्	१७९
सर्वे तस्यादृता धर्माः	१३९	खूला सूक्ष्मा	१०३
सर्वेषामेव शौचानाम्	१४२	स्नातं तेन सममतीर्य०	२१८
स वाग्बिसर्गो जनतापसंश्लवः	११७	स्फुरत्स्फुरत्स्वोत्सना०	९
सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलम्	३८	स्फुरत्किरीटाङ्गद०	२०
सहसा विदधीत न क्रियाम्	१६६	स्वयमानन्दमिष्यायेत्	४०

श्लोकाः	श्लोकाः	श्लोकाः	श्लोकाः
भिगतविकसितवक्त्रम्	६६	हे देव हे दयित हे	
रघुसिंहापुराण०	१०४	हे नाथ हे रमानाग	
रथकर्मादलनिर्दिष्टाम्	२८	हेयं दुःस्वमनागतम्	२५
रथगृहे पूज्यते गूर्णः	१६५	हे श्लोकाः शृणुत	
रथैववस्त्रेण सदानुभूतया	२०	हंते हि शब्दे किमु मुख्यश्रुत्या	१३
स्वाभाविकानयभिकाति०	१४		
स्वाभमभर्गानरणम्	१०३	[ ध ]	
स्वःसिन्धुतीरेऽप्यनिघातपीरे	१८२	धमया दयया प्रेम्णा	१५
		धामा सङ्गः करे यस्य	२२
[ ह ]		धान्तिरभ्यर्थकालत्वम्	२१
हतालिलक्षेशमरीः	२१	क्षालयामि तव पादपङ्कजे	५१
हस्तागुणिकाप्य	६९	क्षीरसागरतरङ्गतीकरा०	३१
हस्तस्य भूषणं दानम्	१५२	क्षीरसागरमपहृष्य शङ्कया	६९
हस्तो दानविवर्जितो	१८१	क्षीरेणात्मगतोदकाय	२२५
हरिरेव हरो हर एव	१२६		
हरिरेव यभूष हरः	१२७	[ प्र ]	
हरिरेव जगज्जगदेश	२२१	प्रथी सादृश्यं योगः	२२२
हरेर्नामैव नामैव	१९५	प्राता यत्र न कश्चिदक्षि	७
हे कृष्ण कृष्ण भगवन्	६३	विधाप्येकं सदागम्यम्	२०९
हे गोपालक हे कृपाजलनिधे	७५	विभुवनसरसाभ्याम्	७९
हे जिह्वे रससारशे	२२१	विभुवनविभवेतयेऽप्यकुण्ठ०	२०६







